परमपूज्य १०८ आचार्य

सूरिसागरजी महाराज द्वारा संग्रहीत

—: सद्बोधमार्तंड :

संपादक—

श्रीयुत पं० मुन्नालालजी काव्यतीर्थ इन्दौर.

प्रकाशक—

वर्णी लक्ष्मीचंद जैन, सूर्यसागर संघ.

प्रथमवार १०००] [मूल्य ३)

H48
30445/03

मुद्रक—
श्रीधर वंशीधर पंडित
प्रो० चिंतामणि प्रिंटिंग प्रेस, ८९ यशवंतगंज,
— इन्दौर सिटी. —

प्राक्कथन—

आज परम पूज्य प्रातः स्मरणीय आचार्य श्री १०८ सूर्यसागरजी महाराज द्वारा संकलित व ग्रथित यह सद्बोध मार्तंड नामका १० वां ग्रंथ पाठकोंके कर कमलोंमें स्वाध्यायार्थ समर्पित करते हुए परम हर्ष हो रहा है। महाराज श्री ने इस ग्रंथका सृजन कई ग्रंथोंके आधारसे किया है इस ग्रंथमें खास तौरसे द्रव्यानुयोग और करणानुयोग तथा चरणानुयोग का ही वर्णन किया गया है। हमें पूर्ण आशा है पाठक इस ग्रंथका स्वाध्याय करके कई ग्रंथोंके स्वाध्याय करने सरीखे आनंद को प्राप्त करेंगे।

महाराज श्री जब गृहस्थावस्थामें थे तभीसे आपको शास्त्रोंके स्वाध्याय करनेका वा विद्वानोंसे तत्व चर्चा कर तत्वके निर्णय करनेका बडा शौक था। आप गृहस्थीमें रहते हुए भी परम उदासीन रहा करते थे, इस वाक्यको सार्थक करते थे कि 'गेही पै गृहमें न रचैं ज्यों जलतें भिन्न कमल है' काल लब्धिका निमित्त मिलते ही तथा इन्दौर जैन समाजके शुभोदयसे सं. १९८१ में परम पूज्य आचार्य शांतिसागरजी छाणीजीका चौमासा इन्दौरमें हुआ। महाराज श्रीसूर्यसागरजीको उनकी संगतिसे इकदम वैराग्य उत्पन्न होगया, उसी वक्त आपने अपने योग्य पुत्रों शिवनारायणजी समीरमलजी व पुत्रवधूओंसे घरसे अलग होकर अपने आत्म कल्याण करनेकी भावना व्यक्त की, इनके पुत्र

इनकी परम औदासीन्य वृत्तिसे पहिले ही परिचित थे उन्होंने सहर्ष अनुमोदना दे दी जिससे महाराज श्री ने पूज्य छाणीजीके शरणमें इकदम ऐकलपनेकी दीक्षा ग्रहण की और चौमासा पूर्ण होते ही इन्दौरसे विहार करते हुए संघ के साथ आप हाटपीपल्या पहुंचे, वहां पर आपने आचार्य महाराज शांतिसागर छाणीजी से ही मुनि दीक्षा ले ली, तब से आप बराबर आर्ष रीतिसे अपने पद पर आरूढ रह कर अपना आत्म कल्याण कर रहे हैं।

मुनि, ऐलक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी आदि पदकी शोभा ज्ञान से होती है, विना ज्ञानके इन पदोंकी कोई शोभा नहीं, ज्ञान के विना इनका मान समाजमें नहीं होता और जिस आत्मोद्धारके निमित्त ये पद लिये जाते हैं उस उद्देश्यकी पूर्ति भी नहीं होती है। कभी २ तो ज्ञानशून्य पद धारियोंके द्वारा समाज और धर्मका अपवाद भी होता हुवा देखा जाता है। परंतु हमारे महाराजश्रीने इस अपवादको अपने पाससे कोसों दूर कर रक्खा है। आपका ज्ञान बहुत बढा हुवा है क्यों कि —

दीक्षा लेनेके समयसे लेकर आजतक आपने चारों अनुयोगोंके शास्त्रोंका अच्छा अनुभव किया है। संयमप्रकाश नामका ग्रन्थ जो दश भागोंमें विभक्त होकर निकल रहा है कि ५भाग तो पाठकोंके हाथोंमें पहुंचभी चुके हैं बाकीके

भागभी शीघ्र पहुंचेंगे, आपकी कृतिका बृहत्प्रयास है, उसमें आपने महान आचार्यों द्वारा निर्मित बडे २ ग्रन्थोंका प्रमाण देकर मुनिधर्म और गृहस्थ धर्मका विशद विवेचन किया है, हरएक तत्वजिज्ञासुको यह ग्रन्थ अत्यन्त मननीय है। एवं आत्मसद्बोधभावना, आत्मसाधना और अध्यात्मसंग्रह आदि ग्रन्थ भी अपने नामसे विषयको व्यक्त करनेवाले हैं हरएक आत्म हितैषीके मननीय हैं।

महाराजश्रीकी दृष्टान्त दार्ष्टान्त द्वारा होनेवाली तत्व-विवेचन शैली बहुत ही आकर्षक और रुचिवर्धक है। आप विद्वानोंकी संगतिमें रहकर तत्व निर्णय करते रहनेके बडे अभिलाषी हैं, इसीमें आपने पूर्व वर्ष और इस वर्ष चौमासा यहां ही किया, क्योंकि यहां पर अनेक पद विभूषित जैन समाजके अनभिषिक्त सम्राट सर सेठसा. हुकमचन्दजीके वैराग्यभवन तुकोगंजमें प्रतिदिन सवेरे २ घण्टे तक महान सिद्धान्त व अध्यात्म ग्रन्थोंका विवेचन जैन समाजके परिचित जैन सिद्धान्त के असाधारण विद्वान जैन सिद्धान्त-महोदधि स्याद्वादवारिधि पंडित वंशीधरजी सा. न्यायालंकार करतेहैं उसमें तत्वका खूब ऊहापोह होता है, स्वाध्याय शालामें पंडितजीके सिवा सर सेठसा. व दूसरे कई बडे २ विद्वान तथा उदासीनाश्रमके ब्रह्मचारीवर्ग सम्मिलित होते हैं। प्रतिदिन २घण्टा तो चतुर्थकाल सरीखी प्रवृत्ति दीखती

है। तत्व लाभकी दृष्टिसे ही महाराजश्री इन्दौर में चौमासा कररहेहैं शेष समय आपका ध्यान और स्वाध्यायमें बीतता है। अवकाश मिलने पर आप अपने अनुभव भी लिखते रहते हैं। आपके द्वारा रचित व ग्रथित अभीतक १० ग्रन्थ प्रकाशमें आचुके हैं शेष ग्रन्थ भी शीघ्र प्रकाश में आनेवाले हैं।

इस ग्रन्थमें जो २ विषय हैं वह कितने उपयोगी हैं यह तो पाठक स्वाध्याय करनेसे ही जानेंगे उस विषयमें, तो हमें कुछ कहना नहीं है। हमें सिर्फ इतना ही निवेदन करना है कि इसके संशोधन करनेमें हमने पूरी सावधानी रक्खी है, इतने पर भी मेरी अज्ञानतावश कोई सिद्धान्त विरुद्ध विवेचन होगया हो, तो विज्ञ पाठक उसको सिद्धांतानुकूल सुधारकर पढ़ें। रही शब्दोंमें अक्षरों, मात्रा, स्वर व्यंजनोंकी त्रुटियां, सो उनके होनेमें मेरा भी दृष्टि दोष होसकता है तथा मुद्रणकी असावधानी भी कारण हो सकती हैं।

आशा है यदि दूसरी आवृत्तिका मौका आयेगा तो उसमें पूर्ण सुधार हो जायगा।

आश्विन वदी ३०
सं. २००४.

समाजानुचर—
मुन्नालाल जैन, काव्यतीर्थ, इन्दौर.

प्रकाशकका आभार प्रदर्शन

—:o:—

परम पूज्य महाराजश्रीने यह ग्रंथ मंदसोरमें चौमासा करते हुए लिखा था और वहीं समाप्त किया। एक दिन जैसे ही मैंने वहांकी समाजको इस ग्रंथका परिचय दिया तो उपस्थित जनता ने प्रेरणा की कि ये ग्रंथ छपाकर प्रकाशित करा दिया जाय तो सामान्य जनताको बडा लाभ हो इस पर वहीं छपांने के लिये सहायता की लिष्ट बन गई और निम्न लिखित महानुभावोंने अपनी इच्छानुसार सहायता लिखाई। मैं इन महानुभावोंको कोटिशः धन्यवाद देता हूं जिन्होंने अपनी गाढी कमाई का सदुपयोग जिनवाणीके उद्धारमें किया है।

९५१)	श्रीमान सेठ भोपजी शंभुरामजी	मन्दसौर
१५१)	श्रीमान सेठ रामलालजी बकसी	मन्दसौर
१००)	,, गंभीरमलजी सोनी	इन्दौर
१००)	,, नेमीचंदजी फूलचंदजी	पहाड्या सुसारी
५१)	,, केशवलालजी कीलाभाई हूमड स्नेहलतागंज इंदोर	
५१)	,, पन्नालाल बापूलाल चौधरी बिलाल ,,	,,
५१)	,, बापूलाल चांदमलजी डेरी रि. इन्दौर.	

वसंतीलालजी यशवंतलालजी हूमड नलीया-बाखल इन्दौर

संपतलालजी जयकुमारजी स्नेहलतागंज श्रीमति सेठानी सावके तरफ से

हजारीलालजी नरसिंहपुरा इन्दौर

भागचंदजी अजमेरा भीलवाडा

मांगीलालजी सा. कोण्या स्नेहलतागंज इन्दौर

अरविंदकुमारजी हूमड झालरापाटन मु. असनावर.

सज्जनलालजी अग्रवाल रेवाडीवाला.

॥ नमः सिद्धेभ्यः ॥

श्री दिगम्बर जैनाचार्य पूज्यपाद

१०८ श्री सूर्यसागरजी महाराज द्वारा विरचित

सद्बोधमार्तण्ड

दोहा—

श्री जिनवरको वन्द करि कर्म कलंक नशाय।
सम्यक्त्व धर्म वर्णन करूं ये ही मोक्ष उपाय॥

यह जीव अनादि कालसे नित्य निगोदमें ही वास करता आया है, ऐसा सर्वज्ञदेव भगवान जिनेन्द्रने कहा है। कभी पुण्य कर्मका उदय आ जावे तो फिर यह जीव नित्य निगोदसे निकलकर दूसरी पर्याय प्राप्त कर लेता है।

,प्रश्न—कृपाकर कहिये निगोदसे निकलनेकेलिए कौन२ से निमित्त कारण मिलते हैं ?

उत्तर--निमित्तके कितने ही भेद हैं। जैसे [१] पहिला निमित्त तो नित्यनिगोदकी स्थिति पूरी होना है। [२] दूसरा-संसारके पंच परावर्तनके उदयका होना [३] व्यवहार राशिमें आनेका उदय (४) भव्यत्व भावका परिपाक (संसार परिभ्रमणका अभाव) [५] इतर निगोद रूप अन्य गतियोंका उदय।

प्रश्न—ऐसा क्यों नहीं कह दिया जाता, कि काल-लब्धिके निमित्त मिलने पर निगोदसे निकलना होता है ?

उत्तर—तुम्हारा कहना ठीक है। परन्तु काललब्धि भी कई कारणोंसे सम्बन्ध रखती है । उनमेंसे कई निमित्त तो हम ऊपर बतला चुके हैं। नियम ये है कि बिना कारणके कार्य नहीं हुआ करते हैं। हरएक कार्य के होनेके लिए कारण जरूर होना चाहिये, नित्यनिगोदसे निकलने रूप कार्यकेलिये भी ऊपर बतलाए हुए कारण जरूर होने चाहिये, उनमें काललब्धि भी एक कारण है।

प्रश्न—तो यह जीव नित्यनिगोदसे कैसे निकलता है ?

उत्तर—नित्यनिगोदसे निकलनेका कारण तो ऊपर बतला ही चुके हैं। परन्तु एक दृष्टांत द्वारा उसको खुलासा समझा देते हैं। दृष्टान्तसे ही ठीक २ समझमें आजाता है-

जिस तरह इस लोकमें एक भडभूजा भाडमें चने सेकता है, सेकनेकेलिये वे चने एक बर्तनमें डाल दिये जाते हैं ऊपरसे अत्यन्त गर्म रेता डाली जाती है, रेताके डालनेके कुछ क्षण बाद वे चने भड-भड करने लगते हैं। उस समय कोई २ चना उचटकर उस बर्तनसे बाहर आ गिरता है। इसी प्रकार उस नित्यनिगोदरूप राशिसे छह महिना और आठ समयमें कमसेकम छह सौ आठ जीव तो नियमसे निकलते ही हैं। वह संसारमें गतिसे गत्यन्तरोंमें भ्रमण करते हैं, उनका क्रम और अक्रमरूप दो तरहका व्यवहार हैं, अर्थात् उस नित्यनिगोदके दो भेद हैं [१] सूक्ष्मनित्य-निगोद [२] वादर नित्यनिगोद। सो सूक्ष्म निगोदका निकला हुआ जीव तो पृथ्वी, जल, अग्नि वायु आदि स्थावरोंमें ही जन्म लेता हैं। वादर निगोदका निकला जीव मनुष्य पर्याय तक पहुंच जाता हैं। इसी बातको स्वामी शिवकोटि आचार्य द्वारा बनाये हुए भगवती आराधनाकी अपराजिता टीकामें लिखा है कि निगोदसे निकलकर ९२३ जीव सीधे भरत चक्रवर्ती के पुत्र हुए। उन्होंने समवसरणमें तीन लोक पूज्य भगवान ऋषभदेवका उपदेश सुनकर रत्नत्रयकी आराधनाकी। और सीधे मोक्ष पधारे। ऐसा अक्रमभी होता है। परन्तु सूक्ष्म नित्यनिगोदका जीव मनुष्य गति नहीं पाता।

अब क्रमवर्ती कार्यका क्रम बतलाते हैं- वह नित्य-निगोदका जीव वहांसे [नित्यनिगोदसे] निकलकर जब पंच स्थावरोंमें आकर जन्म लेता है तो उसको उस स्थावर पर्यायमें अनन्त काल पूर्ण करना पडता है, उसकी कुछभी निश्चित अवधि नहीं है। जैसे किसी दरिद्री मनुष्यके पुण्यकर्मका उदय आनेपर उसको अनर्घ निधिकी प्राप्ति हो जाती है। उसी तरह उन पांच स्थावर रूप पर्यायोंको बार २ धारण करनेवाले उस जीवके पुण्यकर्मके उदय आनेपर त्रस पर्यायकी प्राप्ति होती है। उसमें भी बहुतबार तो लट केंचुआ आदि द्वीन्द्रियकी पर्यायको धारण करता रहता है। द्वीन्द्रियमें जन्म करानेवाले पुण्य कर्मके उदयसे भी असंख्यात गुणे पुण्यका उदय होनेपर चींठी, चींटा, खटमल, जूं, आदि तीन्द्रियमें जन्म लेता है। फिर इससे असंख्यात गुणे पुण्यके उदय होनेपर वरे, ततइया, भ्रमर, मक्खी, आदि चतुरिन्द्रियवाले जीवोंमें जन्म लेता है। इससे भी असंख्यात गुणे पुण्य कर्मके उदय आनेपर इन्द्रियोंकी पूर्णता रूप असैनी पंचेन्द्रियमें जन्म लेता है। इससे असंख्यात गुणा पुण्यकर्मके उदय होने पर संज्ञी पंचेन्द्रियमें जन्म लेता है। उसमें भी कभी सबल सिंहादिक पशुरूप पर्याय धारण करता है, तो कभी खरगोश आदि रूप निर्बल पशुपर्याय प्राप्त करता है। कभी

नरकमें जन्म लेता, कभी हीनकुल वाले मनुष्योंमें जन्म लेता, कभी भवनवासी आदि देवपर्याय धारण करता है। अत्यंन्त शुभ कर्मका उदय आवे तो मनुष्य पर्यायमें उच्चकुलमें जन्म पाता है, इस तरहसे एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय तककी पर्यायका पाना बडा दुर्लभ है।

प्रश्न— इन्द्रियां कितनी और कौन २ सी होती हैं?-

उत्तर- इन्द्रियां पांच होती हैं, उनके नाम- स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण हैं।

प्रश्न- इन जीवोंके प्राण, संज्ञा, पर्याप्ति और उपयोग कितने २ और कौनसे होते हैं?-

उत्तर- इन जीवोंके एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय तक नीचे लिखे अनुसार १० प्राण तक होते हैं। एकेन्द्रियके पर्याप्त दशामें चार प्राण होते हैं-स्पर्शनेन्द्रिय, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु।

द्विइंद्रियके—पहिले कहे हुए चार प्राणोंमें रसना इन्द्रिय और वचन बल और बढ जानेसे छह प्राण होते हैं ये भी पर्याप्त दशामें होते हैं।

त्रीन्द्रियके-घ्राणेन्द्रियके बढ जानेसे सात प्राण होते हैं।

चतुरिन्द्रियके-चक्षु इन्द्रियके बढ जानेसे आठप्राणहोते हैं।

असैनी पंचेन्द्रियके--कर्णेन्द्रियके बढ जानेसे नौ प्राण होते हैं।

सैनी पंचेन्द्रियके मनके बढ जानेसे दश प्राण होते हैं।

इस तरह पांचों इन्द्रियवालोंके पर्याप्त दशामें दश प्राणोंका होना बतलाया गया है। अपर्याप्त अवस्थामें कुछ फरक है और वह इस प्रकार है।

एकेन्द्रियके--अपर्याप्त अवस्थामें स्पर्शनेन्द्रिय, काय-बल और आयु ऐसे तीन प्राण होते हैं, श्वासोच्छ्वास नहीं होता।

द्वीन्द्रियके अपर्याप्तावस्थामें चारही प्राण होते हैं क्योंकि विग्रहगतिमें वचन बल और श्वासोच्छ्वास नहीं होते हैं।

त्रीन्द्रियके--पांच प्राण होते हैं—एक घ्राणेन्द्रिय और बढ़ जाती है। चतुरिन्द्रियके छह प्राण, और पंचेन्द्रियके सात प्राण, इस प्रकार अपर्याप्तावस्थामें विग्रहगतिमें प्राणों की संख्या बतलाई गई है।

—★—

संज्ञा प्रकरण—

जिनसे संक्लेशित होकर जीव इस लोकमें, और जिनके विषय सेवन करनेसे दोनों ही भवोंमें, दारुण दुःखको प्राप्त होता है उनको संज्ञा कहते हैं। उनके चार भेद होते हैं—आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा और परीग्रहसंज्ञा।

आहारसंज्ञा– किसी उत्तम रसवाले आहारके देखनेसे अथवा-पहिले भोगे हुए भोजनके याद करनेसे, यद्वा पेटके खाली होनेसे, और असाता वेदनीयके उदय और उदीरणा होनेसे इत्यादि और भी दूसरे २ कारणोंसे आहार करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है।

भयसंज्ञा– अत्यन्त भयंकर पदार्थके देखनेसे, अथवा पहिले देखे हुए भयंकर पदार्थके स्मरणादिसे, यद्वा शक्तिके हीन होनेपर, और अंतरंगमें भयकर्म की उदय उदीर्णा होने पर इत्यादि कारणोंसे भयसंज्ञा होती है।

मैथुनसंज्ञा– स्वादिष्ट और गरिष्ठ रसयुक्त भोजन करनेसे, पहिले भोगे हुए विषयोंका स्मरण आदि करनेसे तथा कुशील सेवन करनेसे, तथा वेदकर्मका उदय उदीर्णा आदिसे, मैथुनसंज्ञा होती है।

परीग्रहसंज्ञा– इत्र, भोजन, उत्तमवस्त्र, स्त्री आदि भोगोपभोगके साधनभूत पदार्थोंके देखनेसे, अथवा पहिले भुक्त पदार्थोंके स्मरण करनेसे, तथा ममत्वरूप परिणामोंके होनेसे, लोभकर्मका उदय उदीर्णा होनेसे, इत्यादि कारणोंसे परीग्रहसंज्ञा उत्पन्न होती है।

अप्रमत्त गुणस्थानमें आहारसंज्ञा नहीं होती, क्योंकि यहां पर उनका कारण सातावेदनीय कर्मका उदय नहीं

है। और बाकीकी तीनसंज्ञा उपचारसे वहां होती हैं। क्योंकि उनका कारणभूत कर्म वहां पर मौजूद है। भावार्थ साता असाता वेदनीय और मनुष्यायु इन तीन प्रकृतियोंकी उदीर्णा प्रमत्त विरत नामक छट्ठे गुणस्थानमें ही होती है। आगे नहीं। इसलिये सातवें गुणस्थानमें आहारसंज्ञा नहीं होती, किन्तु बाकीकी तीन संज्ञाएं उपचारसे होती हैं। वास्तवमें नहीं। क्योंकि उनका कारणभूत कर्म यहां पर है। किन्तु भावना, रतिक्रीडा परिग्रहके स्वीकार आदिमें प्रवृतिरूप उनका कार्य नहीं है। क्योंकि वहां पर ध्यानावस्था ही है। अन्यथा कभी भी ध्यान न हो सकेगा। कर्मोंका क्षय तथा मुक्तिकी प्राप्ति भी नहीं हो सकेगी।

— ++ —

पर्याप्ति अधिकार—

ग्रहण की हुई आहारवर्गणोंको खलरस भागादिरूप परिणमानेकी जीवकी शक्तिके पूर्ण हो जानेको पर्याप्ति कहते हैं। ऐसी पर्याप्ति जिनके पाई जाय उनको पर्याप्त, और जिनके यह शक्ति पूर्ण न हुई हो उन्हें अपयाप्त कहते हैं। जिस प्रकार घट वस्त्र द्रव्य आदि वन चुकने पर पूर्ण और उससे पूर्व अपूर्ण कहे जाते हैं इसही प्रकार पर्याप्ति सहितको पर्याप्त और पर्याप्ति रहितको अपर्याप्त कहते हैं। ऐसी

पर्याप्तियां छह-प्रकार की होती हैं— आहार-शरीर-इन्द्रिय-श्वासोच्छ्वास-भाषा-मन इस प्रकार पर्याप्तिके छह भेद हैं। इनमेंसे एकेन्द्रियके चार पर्याप्ती अर्थात्- आहार-शरीर-इन्द्रिय और स्वासोच्छ्वास ऐसी चार पर्याप्ति होती हैं। द्वीन्द्रियसे असैनी पंचेन्द्रिय तक मनके विना पांच पर्याप्ति होती है। और सैनी पंचेन्द्रियके छह पर्याप्ती होती हैं।

आहारपर्याप्ति एक शरीरको छोडकर नवीन शरीर को कारण भूत जिस नोकर्म वर्गणाको जीव ग्रहण करता है, उसको खल रस भाग रूप परिणमावनेके लिए जीवकी शक्तिके पूर्ण हो जानेको आहार पर्याप्ति कहते हैं।

शरीर पर्याप्ति —खल भागको हड्डी आदि कठोर अवयव रूप, तथा रस भागको खून आदि द्रव अवयव रूप परिणमावनेको कारणभूत जीवकी शक्तिकेपूर्ण होनेको शरीर पर्याप्ति कहते हैं।

इन्द्रियपर्याप्ति—उसही नोकर्म वर्गणाके स्कन्धमें से कुछ वर्गणाओंको अपनी २ इन्द्रियके स्थान पर उस २ द्रव्येन्द्रियके आकार परिणमावनेकी जीवकी शक्तिके पूर्ण हो जानेको इन्द्रिय पर्याप्ति कहते हैं।

श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति आहार वर्गणाके कुछ स्कंधोंको श्वासोच्छ्वास रूप परिणमावनेकी जो जीवकी शक्तिकी पूर्णता उसको श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति कहते हैं।

भाषापर्याप्ति—वचन रूप होनेके योग्य पुद्गल स्कंधोंको वचनरूप परिणमावनेकी जीवकी शक्तिके पूर्ण होनेको भाषा पर्याप्ति कहते हैं।

मनः पर्याप्ति—द्रव्य मनरूप होनेको योग्य पुद्गल-स्कन्धोंको द्रव्य मनकेआकार परिणमावनेकी जीवकी शक्तिके पूर्ण होनेको मनः पर्याप्ति कहते हैं।

इन छहों पर्याप्तियोंमें से एकेन्द्रिय जीवके शुरूकी चार पर्याप्ति होती है। द्विन्द्रियसे असैनी पंचेन्द्रिय तकके जीवोंके मनःपर्याप्तिको छोडकर बाकीकी पांचों पर्याप्तियां होती हैं। और सैनी पंचेन्द्रियके छहों पर्याप्तियां होती हैं।

उपयोगका वर्णन

★

जीवका जो भाव वस्तुको ग्रहण करनेके लिये प्रवृत्त होता है उसको उपयोग कहते हैं। इसके दो भेद होते हैं। एक साकार (सविकल्प) दूसरा निराकार (अविकल्प)। साकारको ज्ञानोपयोग और निराकारको दर्शनोपयोग कहते हैं।

ज्ञानोपयोग आठ प्रकारका होता है—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, और केवलज्ञान ऐसे पांच तो ज्ञान, और कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञान तथा कुअवधिज्ञान ऐसे तीन अज्ञान मिलकर आठ प्रकारका ज्ञानोपयोग होता है। और चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन तथा केवलदर्शन ऐसे चार प्रकारका दर्शन, मिलकर बारह प्रकारका उपयोग होता है। यह उपयोग ही जीवद्रव्यका लक्षण है। साकार उपयोगके जो पांच भेद कहे हैं, उनमें से आदिके चार अर्थात् मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान छद्मस्थ जीवोंके होते हैं। उपयोग चेतनाका एक परिणाम है। तथा एक वस्तुके ग्रहण रूप यह चेतनाका परिणमन छद्मस्थ जीवके अधिक से अधिक अंतर्मुहूर्तकाल तक ही होता है। इस साकार उपयोगमें यही विशेषता है कि वस्तुके विशेष अंशको ग्रहण करता है। ऊपर अनाकार उपयोगके जो चक्षुदर्शनादि चार भेद बतलाये हैं, उनमें आदिके तीन उपयोग छद्मस्थ जीवके होते हैं।

नेत्रके द्वारा जो पदार्थका सामान्यावलोकन होता है उसको चक्षुदर्शन कहते हैं। नेत्रको छोड़कर बाकी इन्द्रियों और मनसे जो सामान्यावलोकन होता है उसको अचक्षुदर्शन कहते हैं।

अवधिज्ञानके पहिले इन्द्रिय और मनकी सहायताके विना आत्ममात्रसे जो रूपी पदार्थ विषयक सामान्यावलोकन होता है उसको अवधिदर्शन कहते हैं। यह दर्शनरूप निराकार उपयोग भी साकार उपयोगकी तरह छद्मस्थ जीवोंके अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त तकही होता है। एकेन्द्रिय जीवके ३ उपयोग होते हैं दर्शनमें अचक्षुदर्शन और ज्ञानमें कुमति और कुश्रुत। दो इन्द्रिय और तीन इन्द्रिय वाले जीवोंके भी यही तीन उपयोग होते हैं।

चतुरिन्द्रिय जीवके चार उपयोग होते हैं—दर्शन दो—चक्षु और अचक्षु। तथा ज्ञान दो कुमतिज्ञान और कुश्रुतज्ञान। सामान्य पंचेन्द्रिय जीवोंके १२ हीं उपयोग होते हैं दर्शन चार— चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन अवधिदर्शन और केवलदर्शन, तथा ऊपरबतलाए हुए आठों ज्ञान। इनमें मिथ्यादृष्टिके मिथ्यात्वके संबंधसे ज्ञान, कुज्ञान कहलाते हैं वही ज्ञान सम्यग्दृष्टिके सुज्ञान कहलाते हैं। पंचेन्द्रिके भेदोंमें——

नरकगतिमें— ३ कुज्ञान, ३ सुज्ञान और केवलदर्शनको छोडकर ३ दर्शन ऐसे नौ उपयोग होते हैं। तिर्यंच गतिमें भी यही ९ प्रकारके उपयोग होते हैं।

मनुष्यगतिमें— आठों ही ज्ञान और चारोंही दर्शन होते हैं। देवगतिमें नरकगतिकी तरह नौ प्रकारके उपयोग होते हैं।

ध्यानका कथन—

★

पदार्थकी एक पर्यायको अवलंबन करके चित्तकी वृत्तिका ठहरना ही ध्यान है। ऐसा ध्यान उत्तम संहनन वालोंके अंतर्मुहूर्त तक ही रहता है। अन्य संहनन वालोंके इतने समय तक ठहरनेकी असंभवता है। तत्वार्थ सूत्रकारने भी ध्यानका यही लक्षण किया है कि— उत्तमसंहननस्यै-काग्रचिंतानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात्" अर्थात् उत्तम संहननके धारक पुरुषके एकाग्रचिंताका जो विरोध है वही ध्यान है। ऐसा ध्यान उत्कृष्ट रूपसे अंतर्मुहुर्त पर्यंत ही हो सकता है। चित्तकी वृत्तिको दूसरी २ क्रियाओंसे रोककर एकमें स्थिर कर देनेको एकाग्रचिंतानिरोध कहते है। यहां एकाग्र कहनेका ये मतलव है कि जहां चित्तकी वृत्ति पदार्थकी नाना पर्यायोंमें धूमे ऐसे वैयग्न्यका अभाव वही एकाग्र है। वैयग्न्यको कभी ध्यान नहीं कहा जा सकता है।

शंका-आपने ऊपर वतलाया कि उत्तम संहनन वालोंके ध्यान एक अंतर्मुहूर्तसे ज्यादा नहीं होता और हम साधु पुरुषोंकी वहुत समय तक ध्यानावस्था देखते हैं सो कैसे होती होगी ?

उत्तर–ध्यान करते समय एक ध्येयको छोडकर दूसरे ध्येयमें उपयोगका थमना होता है। इस प्रकार दूसरे२ ध्येयमें ध्यानकी पंरपरा चली जाती हैं। इस पंरपरामें बहुत समय तक ध्यानका कहना कोई विरोध नहीं रखता है। ध्यान चार प्रकारका होता है– आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान, और शुक्लध्यान। इनमें आर्तध्यान रौद्रध्यान ये दो ध्यान तो अप्रशस्त कहलाते हैं धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान ये दो ध्यान प्रशस्तध्यान कहलाते हैं।

प्रशस्त ध्यान इसलिये कहलाते हैं क्योंकि ये दोनों ध्यान मोक्ष के कारण हैं। और आर्त रौद्र ये दोनों ध्यान अप्रशस्त इसलिये कहलाते हैं, क्योंकि इनके करनेमें नरक और तिर्यंच गतियोंमें अगणित दुःख बहुत काल तक उठाने पडते हैं।

विष, कांटा, शत्रु, शस्त्रादि अप्रिय वस्तुके संयोग हो जाने पर ऐसा चिन्तवन करना कि इनका वियोग किस तरह और कब हो, उसको आर्तध्यान कहते हैं। इसके चार भेद होते हैं। अनिष्ट संयोगज, इष्टवियोगज, वेदनाजनित और निदान। अनिष्ट संयोगजका लक्षण ऊपर बतला ही दिया है।

मनोज्ञ वस्तुके वियोग होने पर बार २ ऐसा चिन्तवन करना कि फिरसे उसका मिलना हमको कैसे हो जाय, इसको इष्ट वियोगज आर्तध्यान कहते हैं।

वेदनाके होने पर बार २ रोगके इलाजका चिन्तवन करना, मनकी स्थिरताका अभाव होना, धैर्य छूट जाना तथा अंगमें विक्षेप, शोक, विलाप, रोना आदिक होना सो वेदनाजनित आर्तध्यान है।

आगे भोगोंके प्राप्त करनेकी इच्छा सो निदान कहलाता है। हमारें सम्पदा हो जाय, कुटुम्ब बड जाय, स्त्री मिल जाय, तथा राज्यकी, ऐश्वर्यकी, महल मकानकी, इन्द्रियोंके विषयोंकी, शत्रुके मारनेकी इच्छा करना सो निदान नामका आर्तध्यान कहलाता है।

हिंसा, झूंठ, चौरी और परिग्रहके करनेमें आनन्द मानना सो रौद्रध्यान कहलाता है। यह भी चार ही प्रकारका होता है। [१] हिंसानंदी [२] मृषानंदी [३] स्तेयानंदी [४] परिग्रहानंदी। हिंसादीमें आनन्द मानना ही प्रत्येक का लक्षण जानना।

धर्मध्यानके भी चार भेद होते हैं— १ आज्ञाविचय २ अपायविचय ३ विपाकविचय और [४] संस्थान विचय।

आज्ञाविचय-उपदेशदाताका अभाव होय और अपनी बुद्धि मंद होय, कर्मका तीव्र उदय होय, पदार्थ सूक्ष्म से सूक्ष्म होनेसे समझमें न आता होय, हेतु दृष्टांत आदिका ज्ञान न

हो ऐसी दशामें प्ररूपित आगमको प्रमाण मानकर गहन पदार्थमें ऐसा निश्चय करना कि तत्व यही है, इसी प्रकार है और नहीं है इस प्रकारके चिंतवनको आज्ञाविचय कहते हैं।

अपायविचय-जिनका मिथ्यात्व कर्मके उदयसे ज्ञान नेत्र ढक गया हो, जिनका आचरण विनय उद्यमादि सब व्यवहार संसारका ही बढ़ाने वाला हो, सर्वज्ञ प्रणीत मार्गसे विमुख होते हुए भी मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छा करने वाले हों, उपदेशदाताके विना सत्यमार्गके न जाननेसे नष्ट हो रहे हों, ऐसोंको देखकर ऐसा चिंतवन करना कि ये प्राणी इस मिथ्यात्व मार्गसे कैसे दूर हों, तथा अनायतन सेवाका भाव कैसे दूर हो? पापके पैदा करनेवाले वचन और पापकी भावनाका अभाव कैसे हो, इस प्रकारके चिंतवनका अपाय विचय कहते हैं।

विपाकविचय-कर्मके फलके अनुभवोंको गुणस्थानोंमें तथा मार्गणास्थानोंमें चिंतवन करना एवं उदीरणा का चिंतवन करना सो विपाकविचय धर्मध्यान है।

संस्थानविचय-लोकके आकारका तथा द्रव्यके स्वभावका तथा द्वादश भावनाका चिंतवन करना सो संस्थान विचय धर्मध्यान हैं।

शुक्लध्यानके चार भेद हैं-[१] पृथक्त्ववितर्क [२]एकत्ववितर्क [३] सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति [४] व्युपरतक्रियानिवृत्ति इनमेंसे पहिले दो शुक्लध्यान तो संपूर्ण श्रुतके ज्ञाता श्रुतकेवलीके होते हैं। बाकीके दोनों शुक्लध्यान केवलीके होते हैं। छद्मस्थके नहीं होते हैं। अब इन चारों ध्यानोंका अवलंवन कहते हैं- प्रथम शुक्लध्यान तीनों योगोंके अवलंवनसे होता है दूसरा शुक्लध्यान तीनों योगोमें से किसी एक योगके अवलंबनसे होता है, तीसरा ध्यान काययोगके अवलंबनसे होता है, तथा चौथा शुक्लध्यान किसी भी योगके अवलंवन से नहीं होता है। आदिके दोनों शुक्लध्यानका आधार परिपूर्ण श्रुतज्ञान है। प्रथम शुक्लध्यानमें वितर्क (श्रुतज्ञान) और वीचार (अर्थव्यञ्जन और योगों का पलटना) होते हैं। दूसरे शुक्लध्यानमें वितर्क तो है, पर वीचार नहीं होता। वितर्कका अर्थ श्रुतज्ञान है। वीचारका अर्थ अर्थ-व्यञ्जन योगकी संक्रांति-पलटना है। अर्थ-माने ध्यान करने लायक द्रव्य या पर्याय, व्यञ्जन नाम शब्दका है। योगनाम मनवचन कायकी क्रिया का है, और संक्रांति नाम पलटनेका है। ध्यानमें द्रव्यका ध्यानकर फिर पर्यायका ध्यान करना, फिर पर्यायको छोड़कर द्रव्यका ध्यान करना, यह तो अर्थ संक्रांति है। श्रुतके एक वचनको अवलंवनकर ध्यान

करना, उसको छोड किसी दूसरे वचन का ध्यान करना, सो व्यञ्जन संक्रांति है। काययोगको त्याग दूसरे योगको ग्रहण करना, उसको भी त्याग किसी दूसरे योगको ग्रहण कर ध्यान करना, सो योग संक्रांति है। इस तरहके परिवर्तनको वीचार कहते हैं। इसतरह कहा हुआ चार प्रकारका शुक्लध्यान और धर्मध्यान और गुप्ति आदि बहुत प्रकारके उपायोंका संसारके नाश करनेकेलिये मुनिश्वर ध्यान करते हैं। अब ध्यानकी शुरुआतमें ऐसा परिकर है- उत्तम संहननवाले शरीरका धारी जब अपने आत्माको ऐसा जाने कि मेरा आत्मा परीषहोंको सहन कर सकता है तब वह ध्यानका प्रारंभ करता हैं, किस तरह करता है सो कहते हैं-

पर्वतकी गुफा कंदरा, दरी, वृक्षोंकी कोटर, नदियोंके तट स्मशान, पुराने बगीचा, शून्य गृहादिमेंसे कोई एक स्थान ध्यान करने लायक होता है। जहां पर सर्प, मृग, पशु, पक्षी, मनुष्यादिके रहने का स्थान न हो, तथा उस स्थानमें उत्पन्न हुए या अन्य स्थानसे आये हुए, द्वीन्द्रियादि जीवोंसे रहित हों, जहां गर्मीकी ऊष्मा न हो, अति शीतकी बाधा न हो, जहां बहुत वायुका संचार न हो, अति वर्षाकी बाधा न हो, बहुत बडा न हो, ऐसा अनुकूल स्पर्श सहित पृथ्वी पर पर्यंकासनसे बैठ कर कठोरता टेढापन रहित शरीरको

सरल करके अपनी गोदमें बाँये हाथके ऊपर दहिने हाथकी हथेली धरकर नेत्रोंको अत्यन्त उघाडे नहीं, और ज्यादा मींचे नहीं, दांतोंसे दांतोंका आगेका भाग मिला रहे, मुख कुछही उठा हुआ हो, मध्य भाग सरल हो, परिणामोंसे मस्तक ओष्ठ गंभीर हों, मुखकी आकृति प्रसन्न हो, टिम-कार रहित स्थिर और सौम्य दृष्टि हो, स्वासका मंद २ संचार हो, निद्रा, आलस्यादिसे रहित हो इत्यादि परिकर सहित साधु है, सो मनकी वृत्तिको नाभिके ऊपर वाह्य हृदयमें तथा मस्तकमें तथा अन्य स्थानोंमें जहां भी पहिले से परिचय कर रक्खा हो, वहां रोककर निश्चल मोक्षका अभिलाषी होता हुआ प्रशस्त ध्यानको ध्याता है । उस ध्यानमें एकाग्र मन होता हुआ उपशम किये हैं राग, द्वेष-मोह जिसने, अच्छी तरह वशमें की है शरीरकी हलन-चलनकी क्रिया जिसने, और मन्द किया है श्वासनिश्वास जिसने, और अच्छी तरह निश्चित्य किया है अभिप्रायको जिसने, ऐसा क्षमावान होता हुआ वाह्य आभ्य-न्तर द्रव्य पर्यायोंका ध्यान करता हुआ, ग्रहण किया है श्रुतज्ञानका सामर्थ्य जिसने, ऐसा अर्थ और अक्षरोंमें तथा काय और वचनमें भिन्न-भिन्न रूपसे परिभ्रमण करता ऐसा ध्यान करनेवाला ध्यानी, वलके उत्साहकी पूर्णता रहित व्यक्तिकी तरह अनिश्चलकी तरह, मनसे जैसे मोटे शस्त्रसे वृक्ष बडी देरमें काटा जाता है उसी तरह मोहनीय

की प्रकृतियोंका उपशम अथवा क्षय करता हुआ साधु पृथक्त्ववितर्क-वीचार नामके ध्यानको ध्याने वाला होता है। इस तरह पृथक्त्ववितर्क वीचारको कहकर अब एकत्ववितर्क वीचारको कहते हैं—

ऊपर कही हुई विधिके अनुसार मूल सहित सम्पूर्ण मोहनीय कर्मको दग्ध करनेसे अनन्तगुणे विशुद्ध योग-विशेषको आश्रय करके ज्ञानावरणकी सहाईभूत बहुतसी प्रकृतियोंके बन्धको रोकता हुआ और स्थितिको घटाता हुआ व क्षय करता हुआ, श्रुतज्ञानके उपयोग सहित होता हुआ अर्थ-व्यञ्जन-योगोंके पलटनसे रहित होकर, अचल हो गया है मन जिसका, ऐसे क्षीण कषाय गुण स्थानको प्राप्त हुआ, वैडूर्य मणिकी तरह कर्म मलके लेपसे रहित होकर ध्यानके द्वारा फिर वापिस नहीं लौटनेवाला ध्यानी एकत्व वितर्क शुक्लध्यानका ध्याता होता है।

इस प्रकार एकत्व वितर्क शुक्ल ध्यान रूपी अग्निके द्वारा जला डाला है घातिया कर्म रूपी ईंधन जिसने, और दैदीप्यमान प्रगट हुआ है केवलज्ञान रूपी सूर्य जिसको, जैसे मेघपटलमें छिपा हुआ सूर्य मेघपटलके दूर होते ही प्रगट (व्यक्त) हो जाता है, और अपनी प्रभासे प्रकाशमान हो जाता है। उसी तरह आवरणी कर्मके दूर होते ही

अपनी प्रभासे प्रकाशमान भगवान तीर्थंकर वा अन्य केवली, लोकेश्वर जो इन्द्रादिक देव उनके द्वारा स्तुत्य व पूजनीक हो जाते हैं। और उत्कृष्टतासे कुछ कम कोटिपूर्वकी आयु प्रमाण आर्य देशोंमें विहार करते हैं। यदि आयु कर्म अन्तर्मुहूर्त बाकी रह जाय, और वेदनीय, नाम, गोत्र, कर्मकी स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त ही होवे, तो सम्पूर्ण वचन मनके योग और बादरकाययोगके अवलम्बन रूप होकर सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति ध्यानके प्राप्त करनेके योग्य हो जाता है। यदि आयु कर्मकी स्थिति अंतर्मुहूर्त की होय और वेदनीय नाम, गोत्रकी स्थिति अधिक हो तो, योगी अपने आत्म प्रदेशोंके चार समयोंमें दण्ड, कपाट. प्रतर, लोकपूरण रूप विस्तार करके और चार ही समयमें संकोच करके चारों कर्मोंकी स्थितिको अंतर्मुहूर्त प्रमाण आयु कर्मकी स्थितिके समान करके पूर्व शरीरके प्रमाण होकर सूक्ष्म क्रियासे प्रतिपातिध्यानको प्राप्त होकर पीछे व्युपरतक्रियानिवर्ति ध्यानका आरम्भ करता है। ऐसे अवसरमें श्वासोच्छ्वासका प्रचार, संपूर्ण मन वचन कायके योग, संपूर्ण प्रदेशोंके हलन चलन रूप क्रियाका निषेध हो जाता है, इसलिये इसको समुच्छिन्नक्रियानिवर्ति ध्यान कहते हैं।

इसप्रकार ४ प्रकारका आर्तध्यान, ४ प्रकारका रौद्रध्यान चार प्रकारका धर्मध्यान और चार प्रकारका शुक्लध्यान सर्व

मिलकर ध्यान १६ प्रकारका होता है। प्रकरण पाकर सोलहों प्रकारके ध्यानका संक्षेपमें स्वरूप लिख दिया गया, ध्यानसे कर्मोंका संवर और निर्जरा दोनों होते हैं।

प्रश्न—कौनसे जीवके कितने और कौन २ ध्यान होते हैं?

उत्तर—एकेन्द्रिय वाले पांच स्थावरोंके अव्यक्तरूप ४ आर्तध्यानके ४ रौद्रध्यानके ऐसे ८ ध्यान होते हैं। इसी तरहके आठों ही अव्यक्त रूप ध्यान द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियके होते हैं। पंचेन्द्रिय जीवों के १६ प्रकार के ही ध्यान होते हैं – पंचेन्द्रिय जीवोंके भेदोंमें—

नारकी जीवोंमें सम्यक्त्वकी अपेक्षा तो ९ ध्यान होते हैं और मिथ्यात्वकी अपेक्षा आर्त और रौद्र ध्यानके ८ भेद होते हैं। परन्तु सम्यक्त्वकी अपेक्षामें धर्मध्यानका पहिला पाया होता है, इस दृष्टिसे ९ ध्यान होते हैं।

तिर्यंचगतिमें—मिथ्यात्वकी अपेक्षा आर्त और रौद्र ध्यानके ८ ध्यान होते हैं। परन्तु सम्यक्त्वकी अपेक्षासे आर्तध्यान ४ रौद्रध्यान ४ और धर्मध्यान ३ ऐसे ११ भेद रूप ध्यान होते हैं।

मनुष्यगतिमें—मिथ्यात्वकी अपेक्षा तो आर्त रौद्रध्यान के ८ ध्यान और सम्यक्त्वकी अपेक्षा सोलहों ध्यान होते हैं।

देवगतिमें—मिथ्यादृष्टिके आर्तके ४ रौद्रके ४ ऐसे ८ही ध्यान होते हैं। परंतु सम्यग्दृष्टिके ८ ध्यानोंके सिवाय धर्मध्यानके आज्ञाविचय और अपायविचय ये दो ध्यान होनेसे दश प्रकारके ध्यान होते हैं।

प्रश्न-इस प्रकार पंच स्थावरोंसे निकला हुवा जीव त्रसपर्यायमें कब तक रहता है ?

उत्तर-पृथ्वी आदि पांच स्थावरोंसे निकला हुआ जीव दो इन्द्रियको आदि लेकर सैनी पंचेन्द्रिय (नरक तिर्यंच मनुष्य और देव) रूप पर्यायमें दो हजार साधिक काल तक रह सकता है। उस साधिक दो हजार कालमें यह जीव मनुष्यकी पर्यायें कुल ४८ ही प्राप्त करता है, अधिक नहीं। कमती से कमती पाताभी और नहीं भी पाता। इन ४८ पर्यायोंके तीन भेद होते हैं (१) मनुष्यकी पर्याय १६ (२) स्त्रीकी पर्याय १६ (३) नपुंसककी पर्याय १६। इनमें से जो मनुष्य अपनी आत्माका कल्याण करना चाहे तो कर सकता है, नहीं तो इस संसारमें इस जीवका कल्याण होना असंभवही है क्योंकि इस विषम पंचमकालमें ऐसा कोई ज्ञानी पुरुष नहीं है, जो ऐसा बतला देवे कि ये तुम्हारी इन सोलह पर्यायोंमें कौन नंबरकी पर्याय है। ध्यान करो-कि स्त्री पर्यायमें तो यह जीव पूर्ण रीतिसे

अपना कल्याण कर ही नहीं सकता, उसी प्रकार नपुंसक पर्यायमें भी अपना कल्याण नहीं कर सकता है। अब रहा मनुष्यभव सो इसको पाकर मनुष्य प्रमादी और कषायके वशीभूत होकर अपने आत्माका कल्याण विचारता ही नहीं, स्त्री पुत्र धन संपतिको मोहके उदयसे अपना मान कर उनमें उलझ जाता है, जिससे अपनी मनुष्य पर्यायको व्यर्थ ही खोदेता है। इस जीवने इस मनुष्य पर्यायको पाकर इन्द्रियोंके विषय सेवन करनेमें ही सच्चा सुख माना है। मिथ्यात्वके उदयसे जो चीजें इन्द्रियोंको अच्छी लगती हैं, उन्हें अपना हितकारक मान उनके अर्जन और रक्षण करनेमें अपनी भलाई मानता है। विषयोंमें जो राग-भाव है, वहीतो बन्धका कारण है, जहां आत्माके साथ बंध होता है, वहीं संसारकी परम्परा शुरू हो जाती है। दर-असलमें देखा जाय तो मनुष्यपर्यायमें पुरुषपर्यायको छोड बाकी योनियोंमें जन्म लेनेसे अपने आत्महितके साधनका सच्चा उपाय होता ही नहीं है। आकुलतापूर्वक इन्द्रियोंके विषय सेवनमें ही प्रवृत्ति रहती है, विवेकपूर्वक विषयोंसे परांमुखता इसी यायमें होती है। अतएव इस पर्यायको सफल बनानेका ही प्रयत्न करना चाहिये। इसीमें अपना भला है।

कभी यह मनुष्यभव योंही निकल जाता है, और बादमें जब पदार्थके सच्चे स्वरूपका ज्ञान होता है तब बहुत पछताना पड़ता है, कि "हाय मैंने कितनी गलती की कि इतना अच्छा संयोग मुझे मिला फिर भी मैंने इसका अच्छा उपयोग नहीं किया अब मैं क्या करुं।" इस प्रकार जब यह जीव घोर पश्चातापकर आर्तरूप परिणाम करता है, जिससे इसको ऐसी पर्यायका संबंध होता है, जहां स्वासके १८ वें हिस्सेमें जन्म और मरण होता रहता है। और एक मुहूर्तमें ६६३३६ जन्म मरण करने पड़ते हैं। एकेन्द्रिय पर्यायमें सूक्ष्म और वादर रूप दो प्रकारके होते हैं और त्रस पर्यायमें सिर्फ वादर ही होते हैं। उनके भवोंका खुलासा इस प्रकार है—

६६१३२- भव तो स्थावर कायमें होते हैं, जिनका हिसाब निम्न लिखित है:-

१२०२४ पृथ्वीकायिक सूक्ष्म ६०१२
और वादर ६०१२।

१२०२४- जलकायिक सूक्ष्म ६०१२
और वादर ६०१२।

१२०२४- अग्निकायिक सूक्ष्म ६०१२
और वादर ६०१२।

१२०२४- वायुकायिक सूक्ष्म ६०१२

और बादर ६०१२।

१२०२४- साधारणवनस्पतिके सूक्ष्म ६०१२
और बादर ६०१२।

६०१२- प्रत्येक वनस्पतिमें बादर काय ही होते हैं।

२०४- त्रस कायमें दो इन्द्रियसे पंचेन्द्रिय तक इस प्रकार होते हैं -

८०- दो इन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके।

६०- तीन इन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके।

४०- चौ इन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके।

२४ पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके।

इस प्रकार ६६३३६ जन्म और मरण यह जीव अनादिकालसे करता आया है। कोई तीव्रतम पुण्यकर्मके उदयसे इसको यह मनुष्य पर्याय मिली है, फिर भी इस जीवने इस कषाय नामक धूर्तके संयोगसे थोडा भी विचार नहीं किया इससे इसकी आगे क्या २ व्यवस्था होने वाली है उसीको बतलाते हैं - जहां ये जीव इस पर्यायसे चूका कि फिर उसी पांच परावर्तनरूप संसारमें फँसा।

प्रश्न- पंच परावर्तन कौन२ हैं और उनका स्वरूप क्या है?

उत्तर- परावर्तन नाम परिभ्रमण का है। वह पांच प्रकार

का होता है (१) द्रव्य परावर्तन (२) क्षेत्र परावर्तन (३) काल परावर्तन (४) भव परावर्तन और (५) भाव परावर्तन। इनका स्वरूप इस प्रकार है -

द्रव्यपरावर्तन —

द्रव्य परावर्तन दो प्रकारका होता है (१) कर्म परावर्तन (२) नोकर्म परावर्तन। इनका ठीक २ कथन तो गोमट्टसारादि महान ग्रंथोंसे जानना चाहिये, यहां तो इनका सामान्य दिग्दर्शन मात्र ही कराया जाता है और वह इस प्रकार है - पहिले नोकर्म परावर्तनको कहते हैं-

पुद्गलोंका ग्रहण चार प्रकारसे होता है (१) अगृहीत मिश्रगृहीत (२) मिश्र अगृहीत गृहीत [३] मिश्र गृहीत अगृहीत [४] गृहीत मिश्र अगृहीत।

औदारिक, वैक्रियिक, आहारक इन तीन शरीरोंमेंसे किसीभी शरीर संबंधी छह पर्याप्तिके योग्य पुद्गलवर्गणाओंको एक जीवने एक समयमें स्निग्ध रूक्ष वर्ण गंधादिसे युक्त

तीव्र, मंद, मध्यम रूपसे यथासंभव ग्रहण किये और द्विती-यादि समयोंमें खिरा दिये, उनका क्रम ऐसा जानना-कि एक जीव एक समयमें अभव्यराशिसे अनंतगुणे और सिद्ध-राशिके अनंतवें भाग ऐसा मध्य अनंत प्रमाण परमाणुका पुंज एक समयप्रबद्ध [कहलाता है उनको] ग्रहण करता है और इतने ही खिरा देता है। उनमें कोई समयप्रबद्ध तो ऐसा है जिसमें ऐसे भी परमाणु हैं, जिनको इस जीवने कभी भी ग्रहण नहीं किया, ऐसे परमाणुओंके पुंजको अगृहीत समयप्रबद्ध कहते हैं। जिसमें ऐसे परिमाणुओंका ही समूह है जो पहिले ग्रहण किये हुए हैं, उन्हें गृहीत समय-प्रबद्ध कहते हैं। और जिस समयप्रबद्धमें दोनों तरहके पर-माणु होते हैं, उन्हें मिश्रसमयप्रबद्ध कहते हैं।

यहां कोई ऐसा प्रश्न करे कि अग्रहीत परमाणु कैसे हैं?—

उसका समाधान इस प्रकार है कि-सर्व जीवराशिके प्रमाणको समयप्रबद्धके परिमाणुके प्रमाणसे गुणा करने पर जो प्रमाण आता है उसको अतीतकालके समयके प्रमाण से गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उससे भी पुद्गलका प्रमाण अनंतगुणा है, क्योंकि जीवराशिसे अनंतगुणा है और जीवराशिसे अनंतवर्गस्थान गुणी पुद्गलराशि होती है।

इससे अनादिकालीन नाना जीवोंकी अपेक्षा भी लोकमें अगृहीत परमाणु विशेष पाये जाते हैं। एक जीवके परिवर्तन कालकी अपेक्षा नवीन परिवर्तनका प्रारंभ हुआ तब तो सभी अगृहीत ही हुए। पीछे जब ग्रहण किये गये, तब गृहीत कहलाये, इस अपेक्षासे भी अगृहीत मिश्रगृहीत यथासंभव जानना। उनका काल द्रव्यपरिवर्तनमें ऐसा जो [नोकर्म पुद्गल परिवर्तनका प्रथम समयसे प्रारंभ करते हैं] पहिले समय अगृहीत ग्रहण हो, फिर दूसरे समय गृहीत व मिश्रग्रहण हो जावे तो गिनती में नहीं आवे, अगृहीत ही ग्रहण होवे तो दूसरी वार गिनतीमें आता है, फिर अगृहीत का ही ग्रहण होवे तो तीसरी वार ग्रहणमें आवे, ऐसे अगृहीत ग्रहण निरन्तर अनन्त वार ही ग्रहण हो जावे तो एक वार मिश्रग्रहण हो, सो दो वार मिश्रग्रहण हुआ। ऐसे अनन्तवार अगृहीत ग्रहण हो वा एक २ वार मिश्रग्रहण होते २ मिश्रग्रहण भी अनन्तवार हो जाय तव फिर अनन्त वार अगृहीत ग्रहणकर एक वार गृहीत ग्रहण करे, फिर अनन्तवार अगृहीत ग्रहण कर एक वार मिश्रग्रहण करे। फिर अनन्तवार अगृहीत ग्रहण कर एक वार मिश्रग्रहण करे। ऐसे दो वार मिश्रग्रहण हुआ। ऐसे अनन्तवार अगृहीत ग्रहण कर एक २ वार मिश्रग्रहण करते २ फिर अनन्तवार मिश्रग्रहण हो जाय तब फिर अनन्तवार अगृहीत

ग्रहणकर एक वार गृहीत ग्रहण होवे। ऐसे दो वार गृहीत ग्रहण हुआ। इस प्रकारके पलटावसे अनन्तवार गृहीत ग्रहण हो चुके, तव पुद्गल परिवर्तनका चतुर्थ भाग होवे। इस तरह निरन्तर मिश्रग्रहण अनन्तवार हो जाय तव एक वार अगृहीत ग्रहण होता है। फिर अनन्तवार मिश्रग्रहण होजावे तव एक वार अगृहीत ग्रहण होता है। ऐसे अनन्त-वार अगृहीत ग्रहण हो चुके। फिर अनन्तवार मिश्रग्रहण कर एक वार गृहीत ग्रहण होवे। ऐसे गृहीत ग्रहण भी अनन्तवार हो जाय, तव पुद्गल परिवर्तनका द्वितीय चतु-र्थांश पूर्ण होता है। फिर निरन्तर मिश्रग्रहण अनन्त वार हो चुके तव गृहीत ग्रहण होवे। फिर निरन्तर अनन्त वार अनन्त वार मिश्रग्रहण हो चुके, तव एक वार गृहीत ग्रहण होता है।

ऐसे अनंतवार गृहीतग्रहण होचुकें तव फिर निरंतर मिश्रग्रहण अनंतवार कर एक वार अगृहीत ग्रहण करे। ऐसे अगृहीत ग्रहण अनंतवार हो जाचुके तव पुद्गलपरिवर्तन का तृतीय चतुर्थांश पूर्ण होता है। फिर निरंतर गृहीतग्रहण अनंतवार होजाय तव एकवार मिश्रग्रहण करै। फिर निरंतर अनंतवार गृहीतग्रहण होजावे तव एकवार मिश्रग्रहण करे ऐसे अनंतवार मिश्रग्रहण होचुके तव निरंतर गृहीतग्रहण

अनंतवार कर एकबार अगृहीतग्रहण करे ऐसे अनंतबार अगृहीतग्रहण होजावे तब पुद्गलपरिवर्तनका चतुर्थांश पूर्ण होवे। फिर लगते ही समयमें नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें ग्रहणकर द्वितीयादि समयोंमें निर्जरा रूप किये ऐसे अनंत नोकर्मके समयप्रबद्ध पुद्गल थे वे ही अथवा उन समानही शुद्ध गृहीत रूप आकर ग्रहण होवे तब ये सब मिला हुवा नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन होता है।

अब कर्मपुद्गल परिवर्तनको कहते हैं—

जो पुद्गल एक समयमें एकजीवने आठ-प्रकारके कर्मस्वभाव रूपसे ग्रहण किये हों, वे समयाधिक आवली कालको उलंघकर द्वितीयादि समयोंमें निर्जीर्ण हो जांय, वे कर्मयोग्य पुद्गल पहिले कहे हुए नोकर्म पुद्गल परिवर्तनकी तरह उसही क्रमसे उसी प्रकारसे उसी जीवके जितने समयमें कर्मरूपसे प्राप्त होवें, उस मिले हुए समयको एक कर्मपुद्गलपरिवर्तन कहते हैं। सब विधि नोकर्म पुद्गल परावर्तनकी तरह जाननी चाहिये। इस तरह संक्षेपमें द्रव्य-परिवर्तनका स्वरूप कहा।

क्षेत्र परावर्तन

क्षेत्रपरावर्तन दो प्रकारका है- [१] स्वक्षेत्रपरावर्तन और [२] परक्षेत्रपरावर्तन ।

कोई जीव अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण सूक्ष्म निगोदियाकी जघन्य अवगाहना लेकर उपजे और अपनी स्वासके १८वें भाग प्रमाण समय तक जीवित रहकर मरजाय। फिर उस देहसे एक प्रदेश अधिक अवगाहना लेकर उपजे अपनी स्थिति प्रमाण जीवित रहकर फिर मर जाय, फिर दो प्रदेश अधिक अवगाहनाको प्राप्त करे। इस प्रकार पहिली देहसे एक एक प्रदेशकी अधिकतासे महामत्स्यकी देहकी अवगाहना पर्यंत संपूर्ण अवगाहनाके भेदोंको करके अनुक्रमसे सब अवगाहनाको समाप्त करे, बीच २ में अनंतवार दूसरी २ अवगाहना धारण करे सो गिनतीमें नहीं आवे। क्योंकि एक प्रदेश अधिक अवगाहना पानेका समय कोई अनंत भवों में आता है। इसलिये एक २ प्रदेशकी अधिकता से अनंतानंत कालमें संपूर्ण अवगाहना पूर्ण करने पर एक स्वक्षेत्र परावर्तन होता है।

अब परक्षेत्र परावर्तन कहते हैं—

सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तककी अवगाहना सब अवगाहनाओंमें जघन्य। होती है सो कोई जीव सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहनाको लेकर उत्पन्न होवे सो इस अवगाहनासे लोकाकाश के मध्यके आठ प्रदेशोंको अपनी देहके मध्यके आठ प्रदेशोंमें करके उपजे। अपनी स्थिति पूरी करके मरण कर जाय, फिर वही जीव उसी प्रकार उसी अवगाहनासे लोकाकाशके आठ प्रदेशोंको अपने शरीरके प्रदेशोंके मध्य करके दूसरी बार तीसरी बार इत्यादि रूपसे घनांगुलके असंख्यात भागके जितने प्रदेश हों, उतनी बार वहां ही उत्पन्न हो-होकर मरण करें और बीचमें अनन्तबार दूसरे क्षेत्रोंमें जन्म लेवे तो इस प्रमाणकी गिनतीमें नहीं आती। पीछे उस क्षेत्रसे एक प्रदेश अधिकमें उपजे ऐसे एक एक प्रदेशकी अधिकतासे तीन सौ त्रियालीस घनराजू प्रमाण समस्त लोकके प्रदेशों को अपने जन्मके क्षेत्रपनेको प्राप्त करे सो परक्षेत्र परावर्तन है।

अब काल परावर्त्तनको कहते हैं-

✶——✶

कोई जीव उत्सर्पिणी कालके प्रथम समयमें जन्म लेकर बादमें अपनी आयु समाप्तकर मरण करे फिर बीसकोडाकोडी सागरमें उत्सर्पिणी काल आवे उसके दूसरे समयमें जन्म लेवे देखा जाय तो दूसरे समयमें ही जन्म लेना बड़ा कठिन है अनंते उत्सर्पिणी कालके बीतजाने पर भी जब उत्सर्पिणी कालके दूसरे समयमें जन्म हो तब गिनतीमें आवे इसी तरह उत्सर्पिणीके तीसरे चौथे पांचवें आदि उत्सर्पिणी अवसर्पिणीके बीस कोडा कोडी सागरके जितने समय हों उतने बार निरंतर जन्म लेकर पूर्ण करे, एवं मरण कर भी पूर्ण करे, इस तरह जन्म और मरणका समुदित काल ही एक काल परावर्तन कहलाता है। भावार्थ-उत्सर्पिणी अवसर्पिणी का ऐसा कोई समय बाकी नहीं है जिसमें इस जीवने अनंतवार जन्म मरण न किया हो।

अब भवपरावर्त्तनको कहते हैं-

कोई जीव नरकगतिकी जघन्यायु १०हजार वर्ष की लेकर जन्मे, फिर मरणकर संसारमें परिभ्रमण कर दूसरी बार भी

दशहजार वर्षकी आयु लेकर जन्म धारण करे जो एक समय दो समय घडी घंटा पहर दिन पक्ष महिना आदि की अधिक आयु पावे तो गिनतीमें नहीं आवे तीसरी वार चौथी वार पांचवीवारको आदि लेकर दशहजार वर्ष के जितने समय होते हैं उतनीवार दशहजार वर्ष प्रमाण ही आयु लेकर जन्मे और मरे पीछे, एक, समय अधिक इत्यादि तेतीस सागरके जितने समय होते हैं, उतने समय तक आयु धारण कर व्यतीत करे सो नरकभवपारिवर्तन है। इसी प्रकार तिर्यंचगतिमें जघन्य आयु धारणकर पीछे एक२ समय अधिक अनुक्रमसे तीन पल्य पर्यंत संपूर्ण स्थिति में जन्म धारणकर पूर्ण करै, सो तिर्यग्भवपरावर्तन जानना। इसी तरह मनुष्यायुकी अंतर्मुहूर्त से लेकर तीन पल्यकी आयु पूर्ण करै ऐसे ही देवगतिमें नरकगतिकी तरह दशहजार वर्ष को आदि लेकर इकतीस सागर पर्यंत आयु पूर्ण करै सो देवभवपरावर्तन है। इकतीस सागरसे अधिक आयुवाले जीव अनुदिश अनुत्तर चौदह विमानोंमें उत्पन्न होते हैं. इन देवोंका परिवर्तन नहीं होता. क्योंकि ये देव नियमसे सम्यग्दृष्टि होते हैं. और सम्यग्दृष्टिका संसारमें परिभ्रमण नहीं होता है। इस तरह चार आयुसंबंधी संपूर्ण परिवर्तन का मिला हुआ काल भवपरावर्तन कहलाता है।

भावपरावर्तन —

योगस्थान अनुभागबंधाध्यवसायस्थान, कषायाध्यवसायस्थान, स्थितिस्थान इन चारोंके परिवर्तनको भावपरावर्तन कहते हैं, । इन चारोंका स्वरूप इस प्रकार है कि जिनसे प्रकृतिबंध प्रदेशबंध होते हैं ऐसे प्रदेश परिस्पंदलक्षण योग के जघन्यादि स्थान सो योग स्थान हैं।

जिन कषाययुक्त परिणामोंसे कर्मोंका अनुभागबंध होता है उनके जघन्यादिकस्थान ही अनुभागाध्यवसायस्थान कहलाते हैं।

जिन कषाय परिणामोंसे स्थितिबंध होता है उनके जघन्यादिस्थानसे यहां कषायध्यवसायस्थान कहे गये हैं।

बंधे हुए कर्मोंकी स्थितिके जघन्यादि स्थान ही स्थितिस्थान कहलाते हैं।

कोई संज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि जीव अपने योग्य सर्वजघन्य ज्ञानावरण कर्मकी स्थिति अंतः कोड़ाकोटी सागर प्रमाण बांधता है क्योंकि संज्ञी पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि जीव अन्त कोटाकोटी सागर प्रमाणसे कम स्थिति नहीं बांधता है। कोटि सागरके ऊपर और कोटाकोटीके भीतर

को अंतः कोटाकोटी सागर कहते हैं। उस जघन्यस्थिति को लेकर एक२ समय अधिकता से तीस कोटाकोटी सागर की उत्कृष्ट स्थितिपर्यंत भेद रूपसे ज्ञानावरणकी स्थिति है। और उस एक २ स्थितिस्थानको असंख्यात लोकप्रमाण कषायाध्यवसाय स्थान कारण हैं। एक२ कषायाध्यवसायस्थान को असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागबंधाध्यवसायस्थान कारण हैं। और एक २ अनुभागबंधाध्यवसाय स्थानको श्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण योगस्थान कारण हैं। अब परावर्तनके आरम्भका क्रम ऐसा कि संज्ञी पर्याप्तक मिथ्यादृष्टिके ज्ञानावरणकी अंतः कोटाकोटी सागर प्रमाण जघन्य स्थितिका बंध होता है। और उस स्थितिको कारण जघन्य ही कषायाध्यवसाय स्थान और उस जघन्य कषायाध्यवसाय स्थान को कारण जघन्य ही अनुभागाध्यवसाय स्थान होते हैं। और जघन्य ही योगस्थान होते हैं। फिर योगस्थान तो पलट कर दूसरा होजाता है और अनुभाग कषाय स्थिति जघन्य ही बंधते हैं फिर योगस्थान तीसरा होजाता है और वे तीनों जघन्य ही रहते हैं। फिर योगस्थान चौथा पांचवां छटा इत्यादिक श्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण पलट जाते हैं और स्थित्यादि तीनों जघन्य ही रहते हैं। इसप्रकार श्रेणीके असंख्यात भाग प्रमाण योगस्थान पलट जाने पर स्थितिस्थान और कषायस्थान

तो जघन्य ही रहते हैं । और अनुभागस्थान दूसरा हो जाता फिर दूजे अनुभागस्थानके योग्य श्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण योगस्थान क्रमसे पलट जाने पर अनुभागस्थान तीसरा होता है फिर इसके बाद योगस्थान श्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण पलट जाने पर अनुभागस्थान चौथा होता है इस क्रमसे एक अनुभागस्थानको श्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण योगस्थान पलटते २ असंख्यात लोक प्रमाण अनुभागबंधाध्यवसाय स्थान होजावें तब एक कपायाध्यवसाय स्थान पलटता है तब स्थिति स्थान तो जघन्य ही रहता और कपायस्थान दूसरा होजाता है। ऐसे अनुभाग स्थान पहिला और योगस्थान पहिला हुआ, फिर श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण योग स्थान पलट जाय तब एक अनुभागस्थान पलटता है। इसतरह असंख्यात लोक प्रमाण अनुभागस्थान पलट जावें तब एक कपायाध्यवसाय स्थान पलटता है। ऐसे असंख्यात लोक प्रमाण कपायाध्यवसाय स्थान भी पलट चुके तब अंतः कोटाकोटि सागर प्रमाण जघन्य स्थिति से एक समय अधिक कर्मकी स्थिति बांधे। ऐसे श्रेणीके असंख्यातवें भाग बार योगस्थान पलट जाय तब एक अनुभागस्थान पलटे और असंख्यात लोकप्रमाण अनुभाग पलटजाय तब एक अनुभागस्थान पलटे और असंख्यात लोकप्रमाण अनुभाग पलट जांय, तब एक कपायस्थान पलटे

और असंख्यात लोकप्रमाण कषायस्थान पलट जाय तब एक समय अधिक स्थिति पलटे ।

इस प्रकार एक एक समयकी अधिकतासे ज्ञानावरण की तीस कोटाकोटी सागरकी स्थिति समाप्त करें फिर दर्शनावरण वेदनीय और अंतराय कर्मकी तीस कोटाकोटी सागरकी और नाम गोत्र कर्मकी बीस कोटाकोटी सागरकी और आयु कर्मकी तेंतीस सागर की तथा प्रबलतर मोहनीय कर्मकी सत्तर कोटाकोटी सागरकी स्थिति पूर्ण करे। फिर १४८ उत्तर प्रकृतियोंकी और असंख्यात लोक प्रामण उत्तरोत्तर प्रकृतियोंकी स्थिति पूर्ण करै तब एक भावपरावर्तन पूर्ण होता है। ऐसे पांच प्रकारके परावर्तन इस जीवने अनंते किये ।

इस प्रकार पांच परावर्तनरूप संसार परिभ्रमणका वर्णन किया।

इस प्रकारके परिवर्तन इस जीवने अनंते किये हैं परन्तु मनुष्यपर्याय पाकर न तो ऐसा ज्ञान हुआ जिससे यह जीव आत्माको आत्मा समझ सके और समझकर अपने कल्याण करनेपर उतर जावे । ऐसी भूल खास इसी जीवकी निजी विभाव परिणतिसे हुई है उसीका ये दोष है ।

प्रश्न— तो क्या इस जीवमें भी कोई तरहकी विभाव-रूप परिणति है ?

उत्तर- हां जरूर, इस जीवमें एक निजी शक्ति है उसका नाम पारिणामिक शक्ति है। उस शक्तिका परिणमन मिथ्यात्वी जीवके साथ विभाव परिणमन रूप होता है, और जब वही जीव मिथ्यात्व कर्मको छोडकर सम्यक्त्वको प्राप्त कर लेता है तब वही परिणमन जो विभाग रूप परिणमता था वही उस रूप परिणमनको छोडकर स्वभाव रूप परिणमन करने लगता है। परंतु ऐसा परिणमन उसी जीवके हुआ करता है जो भव्य प्रकृति वाला होता है। अभव्यके नहीं।

शंका- तो क्या जीवोंमें ऐसीभी कल्पना होती है कि ये भव्य है और ये अभव्य है?

उत्तर- हां जरूर ऐसी कल्पना सिद्धांतमें बतलाई हुई है कि संसारमें अक्षय अनंत आत्माएं हैं निश्चय नयसे वे सब रत्नत्रय स्वरूप हैं। ऐसी शक्ति कोई आत्मामें व्यक्त हो जाती है और कोई आत्मामें वह शक्ति शक्तिरूपही रहती है व्यक्त नहीं होती। यहां स्त्रीका दृष्टांत देकर समझाया जाता है- कि स्त्रियां दो तरहकी योनिवाली होती हैं (१) ऋजुयोनिवाली (२) शंखावर्तयोनिवाली। शंखावर्तयोनिवाली स्त्री पुरुषका संयोग होनेपर गर्भ धारण नहीं कर सकती परंतु ऋजुयोनिवाली स्त्री निमित्त मिलनेपर नियमसे गर्भ धारण करती है। यही बात भव्य और अभव्यमें है।

जिन जीवोंके निजी [स्वभावसे] अनादिकालीन विभाव परिणतिको करने वाले मिथ्यात्व कर्मका उपशम हो जाता है वह जीवही आत्म-स्वभाव रूप अनंत सुखके अनुभव करने लायक अवस्थाको पाकर भव्य जीव कहलाता है, क्योंकि जिसको मिथ्यात्व कर्मका उपशम या क्षय होजाता है उसको नियमसे रत्नत्रयकी प्राप्ति हुए विना रह नहीं सकती, और ऊपर हम बतला ही चुके हैं कि जिसमें रत्नत्रय के व्यक्त होनेकी योग्यता होती है वही भव्य है, इससे उल्टा अभव्य होता है अर्थात् जो अनादि कालीन परिणति को छोडने रूप शक्तिका विकाश नहीं कर सकता वह जीव सिद्धांतमें अभव्य कहा गया है।

इस तरहकी भव्यात्माके आचार्योंने तीन भेद कहे हैं [१] आसन्नभव्य [निकटभव्य] [२] दूरभव्य और [३] दूरातिदूरभव्य।

प्रश्न—इनका खुलासा पूरी तौर से करिये ?

उत्तर—जो तीन प्रकार के भव्य माने गये हैं उनका खुलासा इस प्रकार है।

आसन्नभव्य—जो जीव वर्तमान पर्यायसे लेकर असंख्यात भव तकके समयोंमें अपने आत्माके स्वभाव भाव[केवलज्ञान]को प्राप्त करता है उसे आसन्नभव्य कहते हैं।

दूरभव्य—जो जीव कभी न कभी अपने स्वभावभाव

रत्नत्रयको प्राप्त करेगा अर्थात् आसन्नभव्यकी अपेक्षा जिनके रत्नत्रयकी प्राप्तिका अवसर दूरवर्ती हो उसे दूर भव्य कहते हैं। दूरभव्य का निश्चित समय तो सिद्धान्तमें नहीं बतलाया गया है पर ये निश्चय है कि कभी न कभी मुक्त होवेगा नियम से।

दूरानदूरभव्य—जिस आत्मा में अपने आत्मस्वरूपके प्राप्त करने रूप शक्ति तो है पर ऐसा निमित्त कभी मिलेगा नहीं जिससे स्वस्वरूप रत्नत्रय की व्यक्ति कर सके ऐसे आत्माको दूरानदूर भव्य कहते हैं।

प्रश्न—ऐसा कहनेसे तो दूरानदूर आत्मामें और अभव्य में कोई अन्तर मालूम नहीं होता बल्कि दूरानदूर भव्य को भी अभव्य कह दिया जाय तो कोई आपत्ति नहीं?

उत्तर—यहां ऐसा समझना चाहिये कि जिस प्रकार मेरु पर्वतके नीचकी मिट्टीको खोदकर बाहर निकाला जाय और पानी आदि बाह्यनिमित्त मिलाकर उसका घडा बनाया जाय तो घट बन सकता है। परन्तु ऐसा समय ही नहीं आता कि कोई व्यक्ति प्रयत्न करके मेरु पवतके नीचेकी मिट्टी खोदे, उसको ऊपर लाकर ऐसे निमित्त मिलावे, जिससे घडा बन जाय। उसी तरह दूरानदूर भव्य आत्मा को भी निमित्त मिल जाय तो उसको सम्यग्दर्शनादि स्वरूपकी प्राप्ति हो सकती है। परन्तु उसको ऐसे कर्मका

उदय होता है कि ऐसा निमित्त ही नहीं मिलता जिससे उसको रत्नत्रयकी प्राप्ति हो सकती है। न तो उसका होनहार ऐसा होता है और न वह उस रूप परिणम सकता है और न ऐसा निमित्त ही मिल सकता है। अभव्य ऐसा होता है कि उसको निमित्त मिल भी जाय तो भी अपने कर्मके उदयसे उस निमित्तसे दूर रहता है उस पर विश्वास नहीं करता और न यथार्थ आचरण करनेकी उसकी बुद्धि होती है। वह तो उस रेता के समान है, जिसको पानी कुम्हार दण्ड चक्रका निमित्त मिल भी जाय फिर भी उसमें योग्यता नहीं होती कि वह रेता घट रूप परिणम सके, यही अभव्यकी हालत होती हैं।

प्रश्न– तो फिर उसके लिये ऐसा दृष्टांत देनेसे जीवोंका क्या लाभ हो सकता है ?

उत्तर फायदा तो जरूर होता है, क्योंकि यह उपदेश यथार्थमें केवली भगवानका है। अगर ऐसा वह आत्मा (केवली) नहीं कहते तो लोक यह समझ बैठता कि जिनको केवली भगवान कहा जाता है वे भी यथार्थ पदार्थके स्वरूपको समझते नहीं जिससे कि उन्होंने पदार्थको जैसाका तैसा नहीं कहा। यदि वह यथार्थ जानते तो पदार्थको ठीक २ कहते इस अभिप्रायसे यथार्थ कथन किया है

प्रश्न– इस प्रकारके अनादि मिथ्यादृष्टिजीवका इस पतनरूप संसारमें किस तरह उत्थान हो सकता है सो कहिये!

उत्तर– इस पतनरूप संसारमें जो जीव जिनेंद्र भगवान द्वारा कहे गये सिद्धांतोंके ऊपर निश्चयसे श्रद्धा और व्यवहाररूप श्रद्धानयुक्त होकर व्यवहार करते हैं वह तो व्यवहार सम्यग्यदृष्टि कहलाते हैं। और जो पदार्थ जैसा है उसका उसी रूप श्रद्धान करता सो निश्चय सम्यग्यदृष्टि कहलाता है। उनकी प्रवृत्ति जिस तरहकी हुआ करती है उसका कथन यहां किया जाता है

प्रश्न– आपने यहां निश्चय और व्यवहार सम्यग्दर्शन तो बतलाया परंतु उसका खुलाशा विवेचन नहीं किया जिससे हमें उनके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान हो!

उत्तर– सुनो-सबसे पहिले यहां व्यवहारसम्यग्दर्शनके स्वरूपका कथन किया जाता है– सम्यग्दर्शन की विरोधनी कर्मकी सात प्रकृतियां होती हैं– अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के दर्शन मोहकी एक मिथ्यात्व प्रकृतिका उदय हुआ करता है और जिस वक्त सम्यक्त्व हुए बाद अनंतानुबंधीकी किसी एक प्रकृतिके उदय होने पर सम्यक्त्वके छूट जानेके बाद फिरसे जो मिथ्यात्व होता है तब जिस जीवके होता है वह सादि मिथ्यादृष्टि कहा जाता है। उसके फिर सम्यक्त्वकी विरोधनी तीन प्रकृति हो जाती हैं अर्थात् उस मिथ्यात्वके

तीन टुकडे होजाते हैं जिनके नाम मिथ्यात्व सम्याङ्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्व होता है। ऐसे तीन तो ये और अनंतानुबंधीकी क्रोध, मान, माया, लोभ की चार ऐसी सब मिलकर सात प्रकृतियोंको सम्यक्त्वकी विरोधिनी प्रकृति कहते हैं। जब एक दफे जीव सम्यक्त्व को प्राप्त कर लेता है और फिर उसको विनाश कर देता है और उन तीन प्रकृतियोंकी उद्देलना नहीं करता है तब तो उस सादि मिथ्यादृष्टि जीवके ऊपर कही हुई सात प्रकृतियोंकी सत्ता रहती है। अगर वह उन दर्शन मोहनीयकी तीनों प्रकृतियोंकी उद्देलना कर देता है तब उस सादि मिथ्यादृष्टि जीवके [उस सम्यक्त्व विरोधी जीवकें] पांच ही प्रकृतियोंकी सत्ता रहती है।

प्रश्न–सादि और अनादि मिथ्यादृष्टि जीवमें क्या फरक रहता है?

उत्तर—अनादि मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्व विरोधिनी पांचही प्रकृतियोंका उदय रहता हैं किंतु सादि मिथ्यादृष्टि के जो उद्देलन प्रकृतिवाले हैं उनके पांच प्रकृतियोंका उदय रहता है और जिनके प्रकृतियोंका उद्देलन नहीं होता है ऐसे सादि मिथ्यादृष्टि जीवोंके सात प्रकृतियोंका उदय रहता है।

प्रश्न–आपने ऊपर दो तरहके मिथ्यादृष्टि जीव बतलाये हैं (१) सादि मिथ्यादृष्टि (२) अनादि मिथ्यादृष्टि। अब

सामान्यतया ये दिग्दर्शन कराइये कि उनके सम्यग्दर्शन होता है या नहीं और होता है तो कब और कैसे ?

उत्तर—चारों गतिवाले अनादि या सादि मिथ्यादृष्टि जीव जो सैनी हों, पर्याप्तक गर्भज, मंदकषाय वाले, विशुद्ध परिणाम वाले, साकार ज्ञानोपयोगके धारक, हेयोपादेयका ज्ञान करने वाले होते हैं वे ही पांचवीं करण लब्धिके अनिवृत्तिकरणके अंत समयमें प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करते हैं।

प्रश्न—आपका कहना ठीक है परन्तु मेरा पूछना था कि आपने तो जो ऊपर सादि मिथ्या दृष्टि कहा है उसको मैं नहीं पूछता हूं। मैं तो अनादि मिथ्यादृष्टिको पूछता हूं सो कहिये ?

उत्तर—हां ठीक है। अनादि मिथ्यादृष्टि जीवके लिये ऐसा कथन है कि सबसे पहिले सम्यग्दर्शनको प्राप्त करने वाला जीव कर्मभूमियां ही मनुष्य होता है उसमें बाकी लक्षण ऊपर कहे अनुसार भी होने चाहिए। तात्पर्य यह है कि शुरू २ में प्रारम्भ तो कर्मभूमिका मनुष्य ही करता है पीछे प्रारम्भ किया हुआ कार्य पूर्ण न होकर यदि मरण कर जावे तो वह जीव चारों गतियोंमें जन्म लेकर पूर्ण कर सकता है।

प्रश्न--इस तरहके सम्यक्त्व प्राप्त करनेके परिणामके पहिले और कौन २ विधि हुआ करती है सो भी बतलाना चाहिये ?

उत्तर—इस तरहके सम्यग्दर्शनको पूर्ण करनेके लिये उस अनादि मिथ्यादृष्टि जीवको पांच लब्धियां प्राप्त करनी पडती हैं। पांच लब्धियोंके नाम ये हैं [१] क्षयोपशम लब्धि [२] देशनालब्धि [३] विशुद्धिलब्धि (४) प्रायोग्य लब्धि [५] करणलब्धि। इनमेंसे पहिली चार तो भव्य और अभव्य दोनोंके होती हैं परन्तु करण नामकी पांचवीं लब्धि सम्यक्त्व व चारित्रके सम्मुख होनेवाले भव्यजीवके ही होती हैं। अब पांचों लब्धियोंका स्वरूप बतलाते हैं।

★

क्षयोपशमलब्धि

लब्धि शब्दका अर्थ प्राप्ति है। प्रकृतमें सम्यक्त्व ग्रहण करने के योग्य सामग्रीकी प्राप्ति होना इसको लब्धि कहते हैं। जिस कालमें ज्ञानावरणादिक अप्रशस्त प्रकृतियों के समूह का अनुभाग जो रस देनेकी शक्ति सो प्रति समय अनन्तगुणा घटता क्रमसे उदय होय अर्थात् जो

रस प्रथम समय में दिया हो दूसरे समय में उससे अनन्त गुणा घटता रस देवे तीसरे समय में उससे भी अनन्तगुणा घटता रस देवे ऐसे समय समय प्रति अनन्तगुणा घटता उदय होय ऐसे क्रमको क्षयोपशमलब्धि कहते हैं ।

★

विशुद्धिलब्धि

क्षयोपशम लब्धिके प्रभावसे जीवके सातावेदनीय आदि शुभबन्ध करनेको कारण धर्मानुराग रूप शुभ परिणामोंकी प्राप्ति होनेको विशुद्धिलब्धि कहते हैं ।

देशनालब्धि

षट् द्रव्य नव पदार्थ पंचास्तिकाय आदिके उपदेश करनेवाले आचार्यादिके संगमका लाभ होना तथा उनके उपदेशकी प्राप्तिका होना और उनके उपदेश किये हुए पदार्थके धारण करनेकी प्राप्ति होनेको देशनालब्धि कहते हैं जहां नरकादिकोंमें उपदेश देनेवाले नहीं हैं वहां पूर्वभवमें धारण किये हुए तत्वार्थके संस्कारके बलसे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति जाननी चाहिये ।

प्रायोग्यलब्धि

★

पूर्वोक्त तीन लब्धि संयुक्त जीव सो प्रति समय विशुद्धता से बढता हुआ आयुकर्म बिना बाकी सात प्रकृतियों की [कर्मोंकी] स्थिति अन्तः कोडाकोडि सागर मात्र अवशेष राखे और घातिया कर्मोंका लता दारु रूप और अघातिया कर्मोंका निंब कांजीररूप द्विस्थानगत अनुभाग अवशेष राखे तब प्रायोग्यलब्धि होती है। घातिया कर्मोंका अस्थि शैल रूप और अघातिया कर्मोंका विष हलाहल रूप अनुभाग नहीं होय तब प्रायोग्यलब्धि होती है। और संक्लेशी संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकके संभव ऐसा उत्कृष्ट स्थितिबंध और उत्कृष्ट स्थिति अनुभाग प्रदेशका सत्व, और विशुद्ध क्षपक श्रेणीमें संभव ऐसा जघन्य स्थितिबंध और जघन्य ही स्थिति अनुभाग और प्रदेशका सत्व इनके होते जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्वको ग्रहण नहीं करता है। क्योंकि जघन्य स्थिति बंधादिक करनेवाला जीव तो पहिले ही सम्यग्दृष्टि होता है।

प्रथमोपशम सम्यक्त्वके संमुख हुआ मिथ्यादृष्टिजीव विशुद्धताकी वृद्धिसे बढता हुआ प्रायोग्यलब्धिके प्रथम समयसे

लेकर पूर्वस्थितिके संख्यातवें भागमात्र अंतःकोडाकोडि सागरप्रमाण आयु विना सात कर्मोंका स्थितिबंध करता है। और चौंतीस बंधापसरण करता है। इनका विशेष कथन लब्धिसार ग्रंथसे जानना चाहिये।

★

३४ बंधापसरणका खुलाशा—

★★

१ से लेकर ३४ स्थानोंमें जितनी कर्म प्रकृतियां बतलाई हैं वे सब यहां पर बंध नहीं होतीं उनका क्रम इस प्रकार है—

१ नरकायुका
२ तिर्यंचायुका
३ मनुष्यायुका
४ देवायुका
५ नरकगत्यानुपूर्वी नरकगति
६ साधारण अपर्याप्त
७ पर्याप्त प्रत्येक
८ बादर पर्याप्त साधारण

(९) बादर पर्याप्त प्रत्येक

(१०) द्वीन्द्रिय अपर्याप्त

[११] तीन्द्रिय अपर्याप्त

(१२) चौइन्द्रिय अपर्याप्त

(१३) असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त

(१४) संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त

(१५) सूक्ष्म पर्याप्त, साधारण

[१६] सूक्ष्म पर्याप्त प्रत्येक

[१७] बादर पर्याप्त साधारण

[१८] बादर पर्याप्त प्रत्येक

[१९] द्वीन्द्रिय पर्याप्त

[२०] त्रीन्द्रिय पर्याप्त

[२१] चतुरिन्द्रिय पर्याप्त

(२२) असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त

[२३] तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी उद्योत
२४ २५ २६

[२४] नीचगोत्र
२७

[२५] अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय
२८ २९ ३० ३१

[२६] हुंडकसंस्थान, स्फाटिकसंहनन
३२ ३३

[२७[नपुंसकवेद.
३४

[२८] वामनसंस्थान, कीलकसंहनन,
३५ ३६

[२९] कुब्जकसंस्थान, अर्धनाराचसंहनन
३७ ३८

(३०) स्त्रीवेद
३९

(३१) स्वातिसंस्थान, नाराचसंहनन,
४० ४१

[३२] न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान, वज्रनाराच संहनन
४२ ४३

(३३) मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, औदारिकशरीर
४४ ४५ ४६

औदारिकआंगोपांग, वज्रऋपभनाराच सं.
४७ ४८

(३४) अस्थिर, अशुभ, अयस्कीर्ति, अरति, शोक,
४९ ५० ५१ ५२ ५३

असातावेदनीय

इस प्रकार ये ३४ बंधापसरणमें इन ५४ प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती है। सो भव्यजीव हो या अभव्यजीव हो दोनोंका यहां तक सामान्य कार्य होता है । इसका विशेष स्वरूप समझना हो तो लब्धिसार नामक ग्रन्थसे समझना चाहिए। तथा प्रकृतियोंकी बंधव्युच्छिति समझना होय तो गोमट्टसार कर्मकांडका स्थान समुत्कीर्तन नामा अधिकारसे विशेष जानना चाहिए। क्योंकि प्रकृतियोंका बन्ध उदय उदीरणा वगैरहका वहां ठीक तरहसे खुलाशा किया गया है। यहां पर संक्षेप कथन बाल बुद्धियोंको समझाने के लिये किया गया है। यहां तक प्रायोग्यलब्धिका कथन है। अब करण लब्धिको कहते हैं—

करणलब्धि

पांचवीं करणलब्धिका काल अंतर्मुहूर्त है। करण नाम परिणामका है और लब्धि नाम प्राप्तिका है। अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण ऐसे तीन तरहके परिणाम कषायोंकी मंदताके चढ़ते परिणाम हैं। इनका खुलाशा इस प्रकार है—

—०ऽ–अपूर्व करण–००—

★

अधः करण परिणामोंसे अपूर्वकरणके परिणाम असंख्यात लोक गुणित हैं। वह नाना जीवोंकी अपेक्षा व एक जीवकी अपेक्षा एक समयमें एक ही परिणाम होता है। एक जीवकी अपेक्षासे तो जितने अपूर्व करणके अन्तर्मुहूर्त कालके समय है, उतने ही परिणाम हैं। ये अपूर्व करणके परिणामभी समय २ सदृश चयकर बढते हुए हैं। परन्तु निचले समयोंके परिणामोंके समान नहीं हैं। यहां प्रथम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धतासे द्वितीय समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्त गुणी विशुद्ध है। इस प्रकारके अनुपम परिणामोंको अपूर्वकरण कहते हैं। इस प्रकारकी विशुद्धतासे इन परिणामोंको सर्पकी चालकी उपमा दी हुई है। यहां पर अनुकृष्टि रचना नहीं होती है। अपूर्व करणके पहिले समयके गुण संक्रमण कर मिथ्यात्वके द्रव्यको सम्यक्त्व मोहनीय या मिश्रमोहनीय रूप परिणमा लेता है। उस कालमें अनन्त समय पर्यंत [१] गुणश्रेणी निर्जरा, [२] गुणसंक्रमण (३] स्थितिखंडन [४] अनुभागखंडन ये चार आवश्यक होते हैं।

प्रश्न—इन चार प्रकारके आवश्यकोंका अलग-अलग स्वरूप समझाइये ?

उत्तर—स्थिति बंधापसरणका काल और स्थितिकाण्डकोत्करणका काल ये दोनों समान अन्तर्मुहूर्त मात्र हैं। यहां पूर्व बांधा था ऐसा सत्तामें कर्म परमाणुरूप द्रव्य उसमेंसे काढकर द्रव्य गुणश्रेणीमें दिया, उस गुण श्रेणीके कालमें प्रति समय असंख्यात गुणे अनुक्रम कर पंक्तिबद्ध निर्जराका होना सो गुणश्रेणी निर्जरा है।

(२) समय समय प्रति गुणाकारके अनुक्रमसे प्रकृतिके परमाणु पलटकर अन्य प्रकृतिरूप परिणम जावे सो गुणसंक्रमण कहलाता है।

(३) पूर्वमें जो कर्मप्रकृति बांधी थी उसकी स्थितिको घटाना, स्थिति कम करना सो स्थिति खंडन है।

(४) पहिले बांधे हुए अशुभ प्रकृतियों के अनुभागको घटाना सो अनुभागखंडन है।

इसप्रकार ये चारों कार्य अपूर्वकरण परिणामके समयमें होते हैं। यहां इतना और समझ लेना कि अशुभ प्रकृतियोंके रसका तो घटना और शुभप्रकृतियोंका बंधना इसप्रकार परिणामोंमें विशुद्धता बढती ही जाती है।

अनिवृत्तिकरणका स्वरूप

**

जैसे अपूर्वकरणमें चार आवश्यक होते हैं उसीप्रकार अनिवृत्तिकरणमें भी चार आवश्यक होते हैं। विशेषता इतनी है कि यहां समान समयवर्ती नाना जीवोंके सदृश परिणाम ही होते हैं। अनिवृत्तिकरणके अन्तर्मुहूर्तके जितने समय होते हैं उतने ही परिणाम होते हैं। इस दृष्टिसे हर एक समय में एक ही परिणाम होता है।

यहां पर जो चार आवश्यक बताये गये हैं वे और ही परिणाम लिए होते हैं, जिससे जीव अनिवृत्तिकरणके अन्त समयमें दर्शनमोहनीय और अनन्तानुबन्धी चतुष्क के प्रकृति-प्रदेश-स्थिति और अनुभागके उदय होनेकी अयोग्यता रूप उपशम होनेसे तत्वार्थका श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शनको प्राप्तकर औपशमिक सम्यग्दृष्टि होजाता है।

यहां इतना और समझना कि जो मिथ्यात्वका सत्ता में द्रव्य था उस उपशमी द्रव्य को स्थितिकांडक वा अनुभागकांडक घातके बिना, गुणसंक्रमणके निमित्तसे, तीन प्रकार मिथ्यात्व, सम्यङ्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति-

मोहनीय रूप परिणमाता है। इस प्रकार उपशम सम्यग्दृष्टि होता है।

शंका— ऊपर जितने आवश्यक व करण बतलाये हैं, इन बातोंका मिथ्यादृष्टि जीव ज्ञाता तो है नहीं, फिर वह इन आवश्यकों या करणोंको किस तरह करता है?

उत्तर— जब आत्माके उस मिथ्यात्व प्रकृतिका अनोदय रूप सम्यग्दर्शनका उदय आता है, उस समय वह कालही सब कुछ कर लेता है। क्योंकि आत्मा तो एक ऐसा द्रव्य है जो अनंत गुणोंका पिंडरूप है। उन शक्तियोंमें से जो पारिणामिक शक्तिके स्वभाव रूप शक्तिकी जाग्रति होजाती है उससे उन आवश्यकोंको करनेके लिये मिथ्यादृष्टि जीव समर्थ होजाता है। इसमें शंका करनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती है। आत्मा तो केवल ज्ञानस्वरूप है।

शंका—ऊपर आपने जो उपशम सम्यग्दर्शन कहा, सो ठीक, परंतु हमारे यहां तो आचार्योंने सम्यग्दर्शनके कितने ही भेद बतलाये हैं? जैसे—

१— तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्।
२— सच्चे देवशास्त्रगुरुश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्।

३- आत्मश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ।
४- जीवादिनवपदार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्
५- उपशमसम्यग्दर्शनम् ।
६- क्षयोपशमसम्यग्दर्शनम् ।
७- क्षायिकसम्यग्दर्शनम् ।
८- सरागसम्यग्दर्शनम् ।
९- वीतरागसम्यग्दर्शनम् ।
१०- निसर्गसम्यग्दर्शनम् ।
११- अधिगमजसम्यग्दर्शनम् ।
१२- आज्ञामार्गादिसम्यग्दर्शनम् ।

इनके सिवाय और भी कितने ही सम्यग्दर्शनके भेद बतलाये हैं, हम कौनसे सम्यग्दर्शनका श्रद्धान करें सो कहो ?

समाधान— आपका कहना ठीक है, क्योंकि ऊपर आपने जितने भी सम्यग्दर्शन कहे हैं, वे नामादि निक्षेपोंमें समाविष्ट होसकते हैं। वैसे देखा जाय तो उन सबमें कुछ भी भाव भेद नहीं है। सच्चा सम्यग्दर्शन तो विपरीताभिनिवेश रहित जो श्रद्धान करना है वह है। हां, कर्मोंकी उपशमादि दशासे उपशम सम्यग्दर्शनादि भेद होसकते हैं।

शंका:— तो फिर इनका अलग-अलग स्वरूप समझाइये ?

उत्तर—मुख्य रूपसे सम्यग्दर्शन तीन प्रकारका बतलाया है। उपशम सम्यग्दर्शन, क्षयोपशम सम्यग्दर्शन, और क्षायिकशम्यग्दर्शन।

[१] उपशमसग्यग्दर्शन—दर्शन मोहनीयकी तीन प्रकृति - मिथ्यात्व-सम्यङ्मिथ्यात्व-सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व। चारित्रमोहनीयमें अनन्तानुवन्धीकी चार प्रकृति–क्रोध–मान–माया और लोभ सब मिलकर सात प्रकृति हुई, इन सातों प्रकृतियोंकी निज शक्तिके उदयका अभाव होजाना याने दब जाना, रस नहीं देना सत्तामें मौजूद रहना, इसको उपशम या उपशम सम्यग्दर्शन कहते हैं। जैसे–कीचड सहित पानी होता है, उसमें कतक फल डालनेसे कीचड नीचे बैठ जाती है, और ऊपर पानी स्वच्छ रह जाता है। इसी तरह कर्मोंके दब जानेसे जो परिणामोंकी निर्मलता हो जाती है उसीको उपशम सम्यग्दर्शन कहते हैं। इसका अन्तर्मुहूर्त काल होता है। काल बीतने बाद जो पहिले बतलाया गया है कि अपूर्वकरणके अन्त समय पर दर्शन मोहके तीन भाग कर दिये जाते हैं। उनमेंसे एक प्रकृतिका उदय नियम से आता है। तात्पर्य यह है कि ऊपर जो सात प्रकृतियां बतलाई गई हैं, उनके उपशम होनेसे उपशम सम्यक्त्व होता है, और सात प्रकृतियोंमेंसे छह प्रकृतियोंके उपशम और एक सम्यक्त्व प्रकृतिके उदय होनेसे जो सम्यक्त्व

होता है, उसे वेदक सम्यक्त्व या क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन कहते हैं। सम्यक्त्वविरोधिनी प्रकृति दो तरहकी होती है। (१) सर्वघाती (२) देशघाती। इनमें अनंतानुबंधी ४ और मिथ्यात्व तथा सम्यग्मिथ्यात्व ये प्रकृतियां सर्वघाति प्रकृतियां हैं और सम्यक्त्व प्रकृति नामकी देशघाती है। उसमें सर्वघाती प्रकृतिके वर्तमान निषेकका विना फल दिये खिर जाने रूप उदयाभावी क्षय और आगामी उदयमें आने योग्य निषेकोंका सत्तारूप उपशम और देशघाती प्रकृतिका उदय होनेसे क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है। और सातों प्रकृतियोंके क्षय होनेसे क्षायिक सम्यक्त्व होता है।

शंका—क्षायोपशमिक सम्यक्त्वमें न तो क्षय है और न उपशम है फिर इसको क्षायोपशमिक कैसे कहा?

प्रत्युत्तर—यहां पर क्षय और उपशम उसको कहा है कि विना फल दिये कर्मका खिरजाना ही क्षय कहलाता है और आगामी निषेकोंका उदय नहीं आना, वहीं ठहर जाना ही उपशम कहा जाता है। परन्तु यह जीव सम्यक्त्व प्रकृतिका अनुभवन करता है, इसीसे इसका नाम वेदक सम्यग्दर्शन भी है। क्षयोपशम और वेदक सम्यग्दर्शनमें अर्थभेद नहीं है। शब्द भेद जरूर है। ऐसा गोमट्टसारमें

वर्णन है। क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शनकी मर्यादा ६६ सागर की मानी गई है। इस सम्यग्दर्शनमें चल, मल और अगाढ दोष उत्पन्न होते रहते हैं, परन्तु विपरीत नहीं होता।

[१] चलदोष--जैसे एक ही प्रकारका जल अनेक प्रकारकी लहरोंके रूपमें परिणम जाता है उसी प्रकार जिस सम्यग्दर्शन में सम्पूर्ण तीर्थंकरों या अर्हंतोंमें समान अनन्त शक्ति होने पर भी श्रीशांतिनाथ ही शांतिके कर्ता हैं, दूसरा नहीं, और श्री पार्श्वनाथजी रक्षा करनेके लिए समर्थ हैं, इस प्रकारका आत्मामें संकल्प होता है सो चल दोष कहलाता है।

(२) मलदोष- जैसे मलके निमित्तसे शुद्ध भी सुवर्ण मलीन कहलाता है उसी प्रकार सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयसे भावोंमें मलीनता होती है, पूर्ण निर्मलता नहीं रहती, उसको मलदोष कहते हैं।

[३] अगाढ दोष—जिस प्रकार वृद्ध पुरुषके हाथमें ठहरी हुईभी लाठी कांपती रहती है उसी तरह जिस सम्यग्दर्शनके होते हुए अपनेही द्वारा बनवाये हुए मंदिर वेदी आदिमें ऐसा संकल्प करना कि ये मंदिर मेरा है, ये दूसरेका है, अथवा ये मन्दिर हमारी तडका है, हमतो इसी मन्दिरमें

पूजन करेंगे, इस मन्दिरमें भी फलानी वेदीमें ही पूजन करेंगे। ये मूर्ति हमारी नहीं है, हमने इसकी प्रतिष्ठा नहीं कराई, हमने तो उस मूर्तिकी प्रतिष्ठा कराई है, इसलिये हम तो इसी मूर्तिकी पूजा करेंगे, दूसरेकी नहीं, इस व्यवहारको अगाढ दोषयुक्त सम्यग्दर्शन कहते हैं।

शंका— क्षायिक सम्यग्दर्शन कौनसे सम्यग्दर्शन होने पर होता है? और इसका प्रारंभक कौन होता है सो अच्छी तरह समझाइये?

उत्तर— क्षायिक सम्यग्दर्शनका विधान तो कितने ही प्रकारसे सिद्धान्तमें बतलाया है। दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारंभी जीव कर्मभूमिमें जन्मा हुआ मनुष्य ही होता है। भोगभूमिया मनुष्य या देव नारकी तिर्यंचके क्षायिक सम्यक्त्वका प्रारम्भ कभी भी नहीं होता है। वह भी केवली तीर्थंकर, श्रुतकेवली या सामान्य केवलीके पादमूलमें ही होता है। केवलीश्रुत केवलीके पादमूलके संयोग विना किसी तरह उस जातिकी विशुद्धता प्राप्त नहीं कर सकता है। जिससे क्षायिकसम्यक्त्व होता है। यहां अधःकरणके प्रथम समयसे लगाकर जितने समय तक मिथ्यात्व या मिश्रमिथ्यात्व मोहकर्मके द्रव्यको सम्यक्त्वप्रकृतिरूप संक्रमण करता है तब तकके समयको (अन्तर्मुहूर्त कालपर्यंत) दर्शन मोहनीयकी क्षपणाका प्रारंभ कहा जाता है। उस

प्रारंभ कालके अनन्तर समयवर्ती समयसे लगाकर क्षायिक सम्यक्त्वके ग्रहणके प्रथम समयमें पहिले निष्ठापक होता है। प्रारंभ करने वाला कर्मभूमिका मनुष्य ही होना चाहिये। तथा सौधर्मादिक कल्पोंमें व धम्मा नामा नरकमें भी निष्ठापक होसकता है। कभी किसी जीव ने पहिले ही आयुकर्मका बंध कर लिया हो तो ऐसा कृत-कृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि मरकर चारों गतियोंमें उत्पन्न होता है और अपनी की हुई क्षपणाको पूर्ण करता है।

*

सातों प्रकृतियोंकी क्षपणा इस प्रकार है-

*

कोई वेदक सम्यग्दृष्टि मनुष्य [१] असंयत [२] देश-संयत (३) प्रमत्त वा (४) अप्रमत्त इन चारों गुणस्थानोंमें से कोई से गुणस्थानको धारण करनेवाला पूर्व में कही हुई तीन प्रकारके करणकी विधिके अनुसार फिरसे विधि करके अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया लोभका द्रव्य उदयावलीमें आये हुएको छोडकर सत्तामें रहने वाले संपूर्ण द्रव्यके निषेकोंका विसंयोजन करता है फिर अनिवृत्तिकरणके अंत

समयमें संपूर्ण अनंतानुवंधीके द्रव्यको द्वादश कषाय तथा नव नोकषाय रूप परिणमा देता है। ऐसा अनंतानुवंधीका विसंयोजन ही अनंतानुवंधीका क्षय कहलाता है।[अनंतानुवंधी का क्षय होना कहीं भी सिद्धांतमें नहीं वतलाया है।] इस प्रकारके कार्यमें गुणश्रेणी निर्जरा व स्थितिकांडघातादिक बहुत प्रकार होते हैं।

शंका—सत्ताके द्रव्यका तो विसंयोजन वतलाया है लेकिन उदयके द्रव्यका क्या हुआ?

उत्तर—उदयका द्रव्य तो अपना रस देकर खिर जाता है सत्तामें नहीं रहता है।

प्रश्न—इसके पीछे क्या होता है?

उत्तर—अनंतानुवंधी चतुष्टयका विसंयोजन कर लेनेके बाद अंतर्मुहुर्त तक विश्राम लेता है। उसके पीछे अनिवृत्ति करणके कालमें मिथ्यात्व, मिश्रमिथ्यात्व और सम्यक्त्व-प्रकृति मिथ्यात्वका क्रमसे क्षय करता है। इन तीनों करणोंके निमित्तसे जिन जिन कर्मोंकी स्थिति अनुभागके घातका विधान है उसकी विशेषता लब्धिसार ग्रन्थमें विशेष रूपसे बतलाई गई है सो वहांसे समझना चाहिए। इस प्रकार सम्यक्त्वकी विरोधिनी सात प्रकृतियोंका विधान समझना।

शंका—तीनों सम्यक्त्वका कथन तो किया परन्तु यह भी बतलाना चाहिए कि उपशम सम्यग्दर्शनसे क्षयोपशम सम्यक्त्व या मिश्रगुणस्थान, सासादन या मिथ्यात्व गुणस्थान कैसे होता है ?

उत्तर—जब कोई कृतकृत्य मिथ्यादृष्टि जीव अनिवृत्ति करणको करता है तब सत्तामें रहने वाले मिथ्यात्वकर्मके तीन टुकडे कर डालता है। [१] मिथ्यात्व (२) मिश्र-मिथ्यात्व (३) सम्यक्त्व प्रकृति। फिर इस जीवके उन तीनों प्रकृतियोंमेंसे कोई एक प्रकृतिका उदय आता है। क्योंकि उपशम सम्यग्दर्शनका काल केवल अन्तर्मुहूर्त ही तो होता है। इतनेमें कहीं सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्वका उदय आजावे तो वेदक सम्यक्त्व होजाता है। इसका कथन हम ऊपर करही आये हैं।

रहा मिश्र प्रकृतिका उदय सो यदि मिश्र प्रकृतिका उदय आजावे तो मिश्रगुणस्थान होजाता है। जिससे तत्व का श्रद्धान और अश्रद्धान दोनों एक साथ होते हैं।

शङ्का—हां और न दोनों कार्य एक साथ कैसे हो सकते हैं ? जैसे हां और न दोनों एक साथ नहीं होसकते उसी तरह सम्यक्त्व और मिथ्यात्व दोनों एक साथ कैसे हो सकते हैं ?

उत्तर—आपका कहना ठीक है, यदि विरोधी प्रकृति का उदय होता, तो दोनों एक साथ नहीं होसकते परंतु ये दोनों कार्य विरोधी नहीं हैं, जैसे खट्टे और मीठे दही और गुडको मिलाकर खाया जायगा तो न तो दहीका ही स्वाद आवेगा और न मीठेका ही स्वाद आवेगा, किन्तु दोनोंका मिला हुआ एक तीसरी जातिका स्वाद आवेगा। उसी प्रकार मिश्र प्रकृतिके उदय आने पर जीवकी परिणति न तो सम्यक्त्वरूप ही कही जाती है और न मिथ्यात्व रूप ही, किंतु दोनों परिणातियोंसे भिन्न एक तीसरी ही जातिकी परिणति होती है। जिसको मिश्र परिणति कहते हैं। बादमें मिथ्यात्वका उदय आजावे तो मिथ्यादृष्टि – विपरीत श्रद्धानी हो जाता है जिससे उसको अनेकांतरूप वस्तुका सत्य श्रद्धान नहीं होता। जैसे कि पित्तज्वर वालेको दुग्ध या मिष्टरस कडुआ मालूम होता है उसी तरह मिथ्यादृष्टि जीवको रत्नत्रय रूप, या दशलक्षणरूप या स्व परकी दयारूप धर्म नहीं रुचता है।

उस उपशम सम्यग्दर्शनके अंतर्मुहूर्त कालमें कमसे कम एक समय और ज्यादा से ज्यादा छह आवली काल अवशेप रह जाता है तब अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभमें से किसी एक का उदय आने पर सम्यक्त्व

की विराधना सहित जीव सासादन नामा दूसरे गुणस्थानवर्ती होता है।

ऊपर जितना समय बतलाया गया है उतना पूरा करके नियमसे मिथ्यादृष्टि हो जाता है इस तरह से सिद्धांत में उपशम सम्यग्दर्शनसे चार मार्ग बतलाये गये हैं।

शङ्का—मिथ्यादृष्टिके ऊपर जानेके भी चार मार्ग बतलाये गये हैं उन्हें भी बतलाना चाहिये कि वे किस तरहसे होते हैं?

उत्तर—मिथ्यादृष्टि जीवके दो भेद होते हैं, (१) अनादि मिथ्यादृष्टि (२) सादि मिथ्यादृष्टि। सो अनादि मिथ्यादृष्टि जीवकें मिथ्यात्वकी एक ही मिथ्यात्व नामकी प्रकृति सत्तामें रहती है। जब वही जीव समय पाकर करण परिणामोंसे मिथ्यात्वके तीन टुकडे कर डालता है-मिथ्यात्व, सम्यङ्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व। तब मिथ्यात्वके तीन भेद होजानेपर सादि मिथ्यादृष्टि जीव दो तरहके होजाते हैं। (१) उद्वेलनी (२) अनुद्वेलनी। उद्वेलिनी कें तो उस मिथ्यात्वकी फिर उद्वेलना होती है और उसमें जो मिथ्यात्वके तीन टुकडे उसने किये थे उनको एक कर लेता है। इससे उसके सादि मिथ्यादृष्टि जीव होने पर भी एक प्रकृतिकी ही सत्ता रहती है। इसका कथन तो हम ऊपर कर ही आये हैं। दूसरा सादि मिथ्यादृष्टिजीव

अनुद्वेलनी जीव है, उसकी सत्तामें मिथ्यात्वकी तीनों ही प्रकृतियां होती हैं। इसीसे सिद्धांतमें ऊपर चढनेके चार मार्ग वतलाये हैं, वे इस तरहसे—कोई ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव जिसकें अनंतानुवंधीकी शुक्ल लेश्याका उदय आया हो, उस हालतमें उसने या तो महाव्रतके पालनरूप मुनिव्रतको धारण कर लिया हो, या श्रावकके अणुव्रत धारण कर लिये हों। समय पाकर वही मिथ्यादृष्टि जीव जव पीछे फिर सम्यग्दर्शन उत्पन्न कर लेता है, तव उसकी सत्तामें मिथ्यात्वकी तीनों ही प्रकृतियां रहती हैं। यह जींव जव अव्रती रहकर सम्यग्दृष्टि होता है तव उसकें चतुर्थ गुणस्थान होता है। कदाचित उस जीवकें मिश्र प्रकृतिका उदय आजावे तो उसके तीसरा मिश्रगुणस्थान होजाता है। यदि सम्यत्क्के साथ अणुव्रतका धारी होजावे तो उसके देशव्रत नामका पांचवां गुणस्थान होजाता है। यह तीसरा मार्ग हुआ। अथवा वही मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानुवंधीकी शुक्ल लेश्याके उदयमें मुनिव्रत धारण कर लेवे तो उसके सप्तम गुणस्थान हो जाता है। इस प्रकार सिद्धान्तमें मिथ्यादृष्टिके चढनेके चार मार्ग वतलाये गये हैं।

शंका—सिद्धांतमें सम्यग्दर्शनके और भी दश भेद वतलाये गये हैं वे कौन २ हैं?

उत्तर–सिद्धांतमें सम्यग्दर्शनके दश भेद इसतरह बतलाये गये हैं (१)आज्ञासम्यक्त्व(२) मार्ग (३)उपदेश (४)सूत्र (५) बीज (६) संक्षेप (७) विस्तार (८) अर्थ (९) अवगाढ (१०) परमावगाढ। इनका लक्षण नीचे लिखे अनुसार हैं—

[१] आज्ञासम्यक्त्व–शास्त्र को जाने बिना केवल "वीतराग देवकी ऐसी ही आज्ञा है" इसप्रकारकी रुचि करना इसको आज्ञासम्यक्त्व कहते हैं।

[२] मार्गसम्यक्त्व–सम्यक्त्व विनाशक मोह कर्मकी शांति होजानेपर शास्त्राभ्यासके बिना ही बाह्य आभ्यंतर परिग्रहके बिना ही वीतराग मार्गको कल्याणकारी मानना इसी प्रकारकी रुचि या प्रतीति करना सो मार्गसम्यग्दर्शन है।

(३) उपदेशसम्यक्त्व–आगम रूप समुद्रका अगाधज्ञान जिनके हृदयमें प्रसार पाचुका है ऐसे आचार्योंने जो तीर्थंकरादि श्रेष्ठ पुरुषोंका आचार कहा है उसको सुननेसे जो श्रद्धा होती है उसको उपदेशसम्यक्त्व कहते हैं।

(४) सूत्रसम्यक्त्व–मुनि या श्रावकके आचरण विधिको दिखाने वाले सूत्रोंको सुनकर उनका श्रद्धान करना सो सूत्रसम्यक्त्व कहलाता है।

(५) बीजसम्यक्त्व–गणितके ज्ञान करानेके लिये गणित शास्त्रके अनुसार जो नियम बतलाये गये हैं उनमेंसे

कुछ नियमोंके जाननेसे मोहनीय कर्मकी सातिशय उपशांति होजानेसे करणानुयोगके गहन पदार्थोंको भी जिसने समझकर सम्यक्त्व प्राप्त किया हो उसको बीज सम्यक्त्व कहते हैं।

[६] संक्षेपसम्यक्त्व–जीवादि पदार्थोंका संक्षेपमें ज्ञान होनेपर भी जो तत्वोंमें यथार्थ रुचि उत्पन्न हो उसको संक्षेपसम्यक्त्व कहते हैं।

[७] विस्तारसम्यक्त्व–संपूर्ण द्वादशांगके सुननेसे जो रुचि उत्पन्न हुई हो उसको विस्तार सम्यक्त्व कहते हैं।

[८] अर्थसम्यक्त्व–किसी पदार्थके देखने या अनुभव करनेसे या कोई दृष्टांतादिके सुननेसे जो रुचि उत्पन्न होती है उसको अर्थसम्यक्त्व कहते हैं।

[९] अवगाढ सम्यक्त्व–ग्यारह अंग व अंगवाह्य रूप संपूर्ण श्रुतज्ञानका अनुभव होनेपर श्रुतकेवलीकी अवस्था प्राप्त होजाने बाद जो रुचि या श्रद्धा उत्पन्न होती है उसको अवगाढ सम्यक्त्व कहते हैं।

(१०) परमावगाढसम्यक्त्व–जिन आत्माओंने त्रिकालवर्ती समस्त गुण पर्यायोंसहित रूपी अरूपी पदार्थोंको यथार्थ जाननेवाले केवलज्ञानके द्वारा संपूर्ण पदार्थोंकी गुणसहित भूत-भविष्यत-वर्तमानसंबंधी पर्यायों सहित पदार्थोंको

यथार्थ जानकर उनमें गाढ रुचि होना उसको परमावगाढ सम्यक्त्व कहते हैं।

शङ्का—यहां पर जो परमावगाढ सम्यग्दर्शन बतलाया है, सो क्या चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीवके सम्यग्दर्शनमें और केवली भगवानके सम्यक्त्वमें फरक है? यदि कुछ फेरफार हो तो कहो?

उत्तर—चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीवके सम्यग्दर्शनमें और केवली भगवानके सम्यग्दर्शनमें तो साक्षात् फरक है ही, अगर फरक न होता तो चतुर्थ गुणस्थान और तेरहवें गुणस्थानमें योजना एकसी होती।

शंका- हे स्वामिन् कृपा कर उपशमसम्यक्त्व, क्षयोपशमसम्यक्त्व और क्षायिकसम्यक्त्वका स्वरूप समझाइये?

उत्तर—चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीवका जो सम्यग्दर्शन है वह मोटे रूपका होता है। परंतु तेरहवें गुणस्थानवर्ती जाज्वल्यमाने केवलज्ञान रूप आत्माका सम्यग्दर्शन, जो द्रव्यमें त्रिकालवर्ती अनंत पर्यायोंके अविभाग प्रतिच्छेदोंके अंशोंके ऊपर भी अटल श्रद्धान, ऐसा श्रद्धान जो छद्मस्थ के कहने योग्य नहीं होता है वैसा सम्यग्दर्शन श्रुतकेवलीके भी नहीं, जैसा केवलीके होता है। इसलिये उसको परमावगाढ

कहा है। रहा उपशम, क्षयोपशम या क्षायिक सो इन सबमें सम्यक्त्वपनेसे तो कोई भेद है नहीं। परंतु उपशममें और क्षायिकमें स्थितिका भेद है। क्षायोपशमिकमें सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयका दोष लगता है।

शंका-ऊपर उपशम और क्षयोपशम सम्यत्वकी मर्यादा तो कही पर क्षायिककी मर्यादा नहीं बतलाई उसको भी बतलाना चाहिये ?

उत्तर-क्षायिक सम्यग्दर्शनका माहात्म्य-इसके प्राप्त होने पर या तो जीव उसी भवमें मोक्षको पालेता है या सम्यक्त्व प्राप्तिके पहिले मिथ्यात्व दशामें परभवकी आयु बांध ली हो तो निम्न प्रकारसे सिद्धपद पा सकता है, वही बतलाते हैं—

(१) देवायु बांधी होवे तो तीसरे भवमें-पहिला तो वही मनुष्य भव दूसरा देवभव तीसरा देवकी आयु पूर्ण कर फिर मनुष्य भवको प्राप्तकर मुनिपद धारण कर कर्म काट मोक्षको पाजाता है।

जो कभी मनुष्य या तिर्यंच भवकी आयु बांधी होवे तो चौथे भवमें, जैसे-वह जीव जिसने सम्यक्त्व पैदा किया है मरकर भोगभूमिमें जन्म धारण करेगा सो पहिला भव तो मनुष्यका, दूसरा भव भोगभूमिका, भोगभूमियां नियम से देव ही होता है सो तीसरा भव देवका, देवकी आयु पूर्ण

कर फिर मनुष्य होवेगा और मनुष्य भवमें मुनिपद धारण कर कर्मोंको काटकर मोक्ष प्राप्त करेगा, ऐसे चार भव हुए।

क्षायिक सम्यक्त्वके समयकी मर्यादा–याने क्षायिक सम्यक्त्व आत्मामें प्रकट होजाय तो कितने समय तक रहे?

ऐसी मर्यादा शास्त्रोंमें दो कोड पूर्व और तेतीससागर में अन्तर्मुहूर्त सहित आठ वर्ष कम इसकी मर्यादा कही गई है। क्योंकि इस जीवने मिथ्यात्व समयमें आयु बांधी होय तो ऊपरके माफिक स्थिति होती है, नहीं तो एक अन्तर्मुहूर्तमें ही केवलज्ञानको उपजाकर मोक्षपद प्राप्त कर लेता है।

शंका–इसप्रकारके सम्यग्दर्शनके और भी कोई भेद प्रभेद होते हैं?

उत्तर–जरूर होते हैं। निर्दोष सम्यग्दर्शनमें तीन मूढता, आठ मद रहित, आठ अंग सहित, श्रद्धान होना चाहिये, यही बात स्वामी समन्तभद्रजीने रत्नकरण्डश्रावकाचार में कही है यथा-

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम्।
त्रिमूढापोढमष्टांगं सम्यग्दर्शनमस्मयम्॥

अर्थात्-सच्चे देव शास्त्र गुरुकी तीन मूढता रहित आठ अंग सहित सच्चे दिल से श्रद्धान करनेको सम्यग्दर्शन

कहते हैं। ऐसा सम्यग्दर्शन व्यवहार सम्यग्दर्शन कहलाता है।

प्रश्न-तीन मूढता, आठ मद और आठ अंग कौन २ हैं और उनका स्वरूप क्या है सो भी अच्छी तरह समझा दीजिये क्योंकि विना दोष और गुणोंको जाने उनके त्याग और ग्रहण की बुद्धि नहीं होती ?

उत्तर-इन सबका खुलासा निम्न लिखित रूपसे होता है-सबसे पहिले तीन मूढताओंका स्वरूप समझाते हैं-मूढता तीन होती हैं-लोकमूढता, देवमूढता और पाखण्डिमूढता।

लोकमूढता-धर्म मानकर गंगा, जमना नर्मदा आदि नदियोंमें व समुद्रोंमें स्नान करना, बालू रेतीका ढेरकरना, पत्थरोंका ढेरकरना, लकडियोंका ढेरकरना, पर्वतसे गिरना, सती होनेके लिये अग्निमें जलकर मरना, काशी करवटकरना आदि सब लोकमूढता है।

देवमूढता-आशावान होकर लौकिक इच्छाओंकी पूर्ति करनेके लिये राग द्वेषसे मलीन देवोंकी पूजा सेवा करना क्षेत्रपाल, पद्मावती आदिकी मान्यता करना सो सब देवमूढता है।

पाखंडिमूढता—आरंभ और परिग्रहसे युक्त, हिंसा कारक आचरण करने वाले, संसारके चक्रमें घूमने वाले, इन्द्रियोंको वशमें न कर सकनेसे इन्द्रियोंके विषयोंमें

लवलीन रहने वाले, गांजा तंबाकूचर्स-भांग आदिके सेवनको धर्म वतलाने वाले, खाद्याखाद्यका विवेक न रखने वाले ऐसे साधु संतोंकी सेवा टहल करना गुरु मूढता या पाखंडि मूढता है।

मद आठ प्रकार के होते हैं - ज्ञानमद, पूजामद, कुल-मद, जातिमद, बलमद, ऋद्धिमद, तपमद, और शरीरमद इन आठोंके आश्रयसे जो घमंड करना है सो ही मद है ये आठों प्रकारके मद सम्यग्दृष्टिके नहीं होते हैं। इनमें से जिनकें एक भी मद होता है वे सम्यग्दृष्टि हो नहीं सकते। सम्यग्दृष्टि तो ज्ञानादिके होनेपर इस प्रकारका चिंतवन करता है कि -

ज्ञानमद—हे आत्मन् जो तूने इन्द्रियों द्वारा ज्ञान उत्पन्न किया है उसका क्या गर्व करता है ? यह ज्ञान तो ज्ञाना-वरणी कर्मके क्षयोपशमके अधीन है विनाशीक है, क्योंकि इन्द्रियोंके आधीन है ये कब नाश हो जायगा इसका प्रमाण नहीं। इन्द्रियोंके नाश होते ही ज्ञान नाश होजाता है, तथा वातपित्तकफादिककी घटती बढ़तीमें विपरीतताको धारन करने वाला होजाता है, कईवार तूं एकेन्द्रिय हुआ, वहां अत्यंत अज्ञानी रहा, कितने ही वार हिताहितके विवेकसे रहित विकलत्रय हुआ, कितने ही वार कुत्ता, सुअर, व्याघ्र, सर्प आदिकी योनिमें विपरीत ज्ञानी होकर तूने संसारके

चक्कर काटे, निगोदमें अक्षरके अनंतवें भाग भी ज्ञान रहित हुवा, तेरेसे बड़े २ ज्ञानी हुए हैं, होरहे हैं, जिनके आगे तेरी क्या हस्ती है, इस तरहका चिंतवन सम्यग्दृष्टि करता है।

क्षयोपशमके अनुसार सामान्य जनतासे कुछ विशेष जानकारी पैदाकर उसका घमंड करना, तथा अपनी दृष्टि में दूसरोंको तुच्छ अज्ञानी समझना सो ज्ञानमद है।

पूजामद–ज्ञानी विचार करता है कि हे आत्मन्–ये राज्य ऐश्वर्य आत्माके स्वभाव नहीं है, पुण्य कर्मसे उत्पन्न हैं और विनाशीक हैं। दुर्गतिके कारण हैं, मेरा ऐश्वर्य तो अनंत चतुष्टय रूप अक्षय अविनाशी अखंड सुखमय है। ये ऐश्वर्य आदिक तो कर्म कृत महाउपाधिरूप आत्माको दूषितकर दुर्गतिमें पहुंचाने वाले हैं, स्वरूपको भुलाने वाले हैं। ये आत्माके रूप कदापि नहीं हो सक लह के मूल कारण, वैर बढ़ाने वाले, क्षणभंगुर, परमात्मस्वरूपकी विस्मृति कराने वाले, महासंताप पैदा करने वाले, दुखरूप हैं। अनेक जीवों के घातक हैं। बड़े भारी आरंभ और परिग्रहको कराकर नरकोंमें पहुंचाने वाले हैं ऐसे राज्य संपदादि से मैं कितने दिन तक पूज्य रहूंगा, आदर पाऊंगा, इस प्रकारका चिंतवन सम्यग्दृष्टि करता है। इससे विपरीत आचरण करना सो पूजामद कहते हैं।

कुलमद–संसारमें पिताके वंशको कुल कहते हैं। सम्यग्दृष्टि विचार करता है–मेरा आत्मा किसीसे उत्पन्न किया हुआ नहीं है, इसलिये ज्ञान स्वभावी मेरा तो कोई कुल ही नहीं है। मेरा कुल तो ज्ञाता दृष्टा स्वभाव है। अनादि कालीन कर्मसे पराधीन मैंने जो इस पर्यायमें उत्तम कुल पाया है, सो इसका गर्व करना बड़ा अनर्थ है, इस पर्यायसे पहिले मैं अनंतवार नारकी हुआ, अनंतवार सिंह व्याघ्र सर्पादिक हुआ, मनुष्य योनिमें अनेकवार म्लेच्छ चांडाल भील आदि हीन कुलोंमें उत्पन्न हुआ, अनेक दरिद्रकुलोंमें मैंने जन्म लिया, कोई पुण्यकर्मके उदयसे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यके कुलमें जन्म पाया, ऐसे कर्मकी कृपासे प्राप्त कुलमें जन्म लेकर गर्व करना बडा अनर्थ है, अज्ञान है, क्योंकि इस कुलमें मेरा और कितने समय तक निवास रहेगा? इत्यादि रूप के विचार सम्यग्दृष्टि ज्ञानी के होते हैं इनसे विपरीत विचारकरना लोक प्रतिष्ठित अपने पिताके कुलमें जन्म लेकर गर्व करना कुलमद है।

जातिमद मातीके पक्षको जाति कहते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव जातिका गर्व नहीं करता है, वह तो ऐसा विचार करता है कि यह आत्मा अनेकवार तो नीचजातिमें उत्पन्न हुआ, तब कहीं बडी मुश्किलसे एकवार उच्चजातिमें उत्पन्न हुआ, अनेक वार नीच जाति में उत्पन्न होनेपर एकवार उच्चजाति

में जन्म प्राप्त करता है। ऐसे नीचजाति अनन्तवार पाई और उच्चजाति भी अनन्तवार पाई। अब इस समय उच्च जाति पाकर क्या गर्व करते हो। अनेकवार निगोदमें जन्मा तथा कूकरी, शूकरी, चाण्डालिनी, भीलिनी, चमारी, दासी, वेश्यादि नीचजातिके गर्भमें अनेकवार जन्मा। नीचजाति में उत्पन्न हुए मनुष्यका तिरस्कार कैसा करते हैं? उच्चजाति की माताके गर्भमें जन्म लेकर क्या घमण्ड करते हो। जाति तो पुण्य पापका फल है, सो अपना रस देकर खिरजायगा इस उच्चजातिमें कितने दिनोंका ठहरना है? इसलिये जाति कुलको विनाशीक और कर्मके आधीन जानकर उत्तम शील पालनेमें, क्षमा धारण करनेमें, स्वाध्यायमें, दानमें, परोपकारमें, अपनीप्रवृत्ति करो जातिका मद करके अपने भवितव्यको मत बिगाडो इत्यादि रूप विचार करके जातिमदको नहीं करता, अपनी जातिकी उच्चताका अभिमान करना ही जातिमद है।

बलमद—सम्यग्दृष्टि बलका भी गर्व नहीं करता है। सम्यग्दृष्टि तो ऐसा विचार करता है, मैं अनन्त बलका धारी हूं लेकिन कर्मरूपी प्रबल वैरी ने मेरे बलको नाशकर बलरहित एकेन्द्रिय विकलत्रयादिकमें संपूर्ण बलको आच्छादनकर बलरहित मेरी ऐसी दशा की है, जिससे कि जगत की ठोकरोंसे कुचला गया, चींथा गया हूं, अब वीर्यांतराय कर्म के क्षयोपशम से मनुष्य शरीर में आहारके आश्रयसे

कुछ बल प्रगट हुआ है, इस देहके आश्रित परोवीन्न-बलसे जो मैं तपश्चरणके द्वारा कर्मोंका नाश करूं तो बलका पाना सफल हो, यदि इस बलके लाभसे मैं व्रत, उपवास, शील, संयम, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग करूं तथा कर्मोंके उदयसे होने वाली परीषहोंको सहन कर उनसे चलायमान न होऊं, रोग दरिद्रतादि कर्मोंके प्रहारसे कायर नहीं होऊं, दीनताको प्राप्त नहीं होऊं, तभी मेरा बल पाना सफल है। बलवान होकर निर्बलोंको सताऊं, उनकी धन धरती आदि छीनूं तथा दीनोंका अपमान तिरस्कार करूं तो दुष्ट तिर्यंचोंकी तरह मेरा बल प्राप्त करना हुआ, उसका फल अनन्तकाल तक नरक निगोदादिके दुःख भोगना ही है। इसलिये बल के मद समान मेरी आत्माका घातक दूसरा नहीं है। ऐसा विचारकर सम्यग्दृष्टि बलका मद नहीं करता, किन्तु बलको पाकर उसका घमण्ड करना सो बलमद है।

ऋद्धिमद-धन सम्पत्ति पानेका गर्व करना ऋद्धिमद है। सम्यग्दृष्टि तो धनादिकके परिग्रहको महान भार मानता है। वह विचार करता है कि ऐसा समय कब आवेगा जब परिग्रहके भारको छोडकर मेरे आत्मिक धनकी सम्हाल मैं करूंगा, ये धनरूपी परिग्रहका भार महा बंधन है। राग,

द्वेष, भय, संताप, शोक, संक्लेश, वैर, हानिका कारण है। मद उत्पन्न करनेवाला है। महान आरंभादिकका कारण है। दुखरूप दुर्गतिका कारण है। परन्तु क्या किया जाय। जैसे कफमें पडी मक्खी अपनेको उससे अलग करनेको असमर्थ है उसी तरह मैं भी इस धन कुटुम्बादिके फंदेमें से निकलना चाहता हूं उसमें आसक्त रहने से व रागादिका प्रबल उदय होनेसे तथा निर्वाह होनेकी कठिनताके देखनेसे कम्पायमान हूं। इत्यादि रूपका विचार सम्यग्दृष्टि करता है। जो धन संपदादि पाकर घमण्ड करना, दूसरोंको तिरस्कारकी दृष्टि से देखना अपमान करना ये सब ऋद्धिमद कहलाता है।

तपमद–तप करने का घमण्ड करना तपमद कहलाता है। सम्यग्दृष्टि तप करके उसका मद नहीं करता है क्योंकि मद करने से तो तप ही नष्ट होजाता है। जो तपके प्रभाव से आठ कर्म रूपी वैरीको नाशकर परमात्मा बन गये वे धन्य हैं। मैं संसारी इन्द्रियके विषयोंमें लवलीन होकर उनको रोकनेमें असमर्थ हूं। कामका विजय नहीं किया, निद्रा, आलस्य, प्रमादको नहीं जीता, इच्छाओंको नहीं रोका, पर्यायसे लालसा घटी नहीं, जीवित रहनेकी वांछा मिटी नहीं, मरनेका भय दूर हुआ नहीं। स्तवन करनेमें, निंदामें, लाभमें, अलाभमें समभाव हुआ नहीं, ऐसीदशामें

तप काहेका ? तप तो वह है जिससे कर्म वैरीको जीतकर शुद्ध आत्मामें लय हुआ जाय। धन्य हैं वे जिनके वीत-रागता प्रगट हुई हो ऐसे विचार करने वाला सम्यग्दृष्टिके तपका मद कैसे हो सकता है ?

शरीरमद—शरीरके हृष्टपुष्ट होनेके साथ सुन्दर होनेका गर्वकरना शरीरमद कहलाता है। सम्यग्दृष्टि शरीरके रूप का मद नहीं करता। क्योंकि सम्यग्दृष्टि तो अपने रूपको ज्ञानमय ही मानता है। जिस ज्ञानमें संपूर्ण वस्तुओंको जैसा का तैसा अवलोकन करते हैं। सम्यग्दृष्टि तो ऐसा विचार करता है कि ये चमड़ेसे बने हुए शरीरका रूप हमारा रूप नहीं है। शरीरका रूप तो क्षण २ में नष्ट होता है। एक दिन भी अन्न जल न मिले, तो अत्यन्त विकृत हो जाता है। बुढ़ापा आने पर तो बहुत ही बुरा दीखने लगता है। रोग और दरिद्रता आने पर तो देखने योग्य तथा छूने योग्य भी नहीं रहता, ऐसे रूपका मद ज्ञानी कैसे कर सकता है। एक क्षणमें अन्धा, लूला, लंगड़ा, काणा, कुबडा, टेढे मुख-वाला, लम्बी गर्दनवाला, लम्बोदर आदि भयङ्कर रूप वाला होजाता है। इसलिए रूपका गर्व करना बडा ही अनर्थ है इत्यादि रूपका विचार सम्यग्दृष्टि करता है। और शरीरका मद नहीं करता है।

इस प्रकार सम्यग्दर्शनके नाश करने वाले आठ मदोंको बिलकुल भी आश्रय नहीं देना चाहिये ।

आठ अङ्गोंका स्वरूप निम्न लिखित है

★★

सम्यक्त्वके आठ अङ्ग होते है (१) निःशंकितांग (२) निःकांक्षितांग (३) निर्विचिकित्सितांग (४) अमूढदृष्टि (५) उपगूहनांग (६) स्थितिकरणांग [७] वात्सल्यांग (८) प्रभावनांग ।

(१) निःशंकितांग—संसारमें जब अनेक प्रकारके गदा चक्र त्रिशूलादिक आयुध रखने वाले और स्त्रियोंमें अति आसक्त क्रोधी, मानी, मायाचारी, लोभी अपने कर्तव्य दिखाने के इच्छुकोंको देव कहते हैं । हिंसा और काम क्रोधादिमें धर्मको बतलानेवाले शास्त्रोंको आगम कहते हैं । तथा पाखण्डी लोभी, कामी, अभिमानी, साधुओंको गुरु कहते हैं । सो कभी हो नहीं सकता ऐसा जिसके दृढ श्रद्धान होता है । मूर्खोंकी खोटी २ युक्तियोंसे जिसका चित्त चलायमान नहीं होता

है। खोटे देवोंके विकार करनेसे, मंत्र तंत्रादि से, परिणाम विकारी नहीं होते. जैसा तलवारका जल वायुसे चलायमान नहीं होता है, उसी तरह जिसके परिणाम सच्चे देव गुरु धर्म के स्वरूपसे मिथ्यादृष्टियोंके वचन रूप वायुसे संशयको प्राप्त न होवे, उसही को निःशंकित गुण कहते हैं।

इस लोक परलोक संबंधी भोगोंके चाहनाका अभाव रूप परिणाम सो निःकांक्षित अंग है।

शंका—जो अविरत सम्यग्दृष्टि हैं उनके भी भोगोंमें धनमें वांछा रहती है फिर निःकांक्षितगुण उनके कैसेरहता है।

उत्तर—सम्यग्दृष्टिके भोगोंकी वांछा है परन्तु सम्यग्दृष्टि जीव भोगोको हितकारक जान कर कभी नहीं चाहता है, उसको तो इन्द्रलोकके भी भोग महान दुःख रूप दीखते हैं। परंतु चारित्र मोहके प्रबल उदयसे कषायजन्य रागभाव मंद नहीं होता, इसीसे इन्द्रियोंसे उत्पन्न दाहके सहनेमें असमर्थ रहताहै। इससे भोग भोगनेमें वर्तमान कालका दुःख शांत होजाता है, बश इतनी ही चाह रहती है। जैसे कोई रोगी कडवी औषधिको वडी चाहसे पीता है, क्योंकि वर्तमानका दुख उससे सहा नहीं जाता परंतु अंतरंगमें ऐसा विचार करता है, जो कभी मेरी छूट इस औषधिसे हो जाय. परंतु अंतरंगमें औषधिसे अत्यंत अरुचि रखता है। उसी तरह यहां भी जानना चाहिये।

उसी तरह मिथ्यादृष्टियोंके ज्ञान ध्यान तपको देखकर उनमें चाहना नहीं रखना भी निःकांक्षित गुण है।

मनुष्यकी पर्याय रूप देह सप्त धातुमय तथा मल मूत्रादि रूप है, स्वभावसे ही अपवित्र है, यह शरीर तो रत्नत्रयके प्रकट होनेसे पवित्र माना जाता है, इसलिये रोग सहित तथा वृद्धता, एवं तपसे क्षीण व मलीन शरीरको देखकर उससे ग्लानि नहीं करना बल्कि गुणोंमें प्रीति करना सो निर्विचिकित्सा नामक अंग है। यहां इतना विशेष जानना चाहिये कि सम्यग्दृष्टि जीव वस्तुके स्वरूपको यथार्थ जानता है, इससे पुद्गलके नाना स्वभावोंको जानकर मलमूत्र रुधिर राध मांस कफ सहित तथा दरिद्र रोगादि सहित मनुष्य तिर्यंचोंके शरीरादिकी मलीनता दुर्गंधादिक को देखकर व सुनकर ग्लानि नहीं करता है। कर्मके उदयसे अनेक भूख प्यास रोग दरिद्रादिसे दुखित होना, पराधीन बंदीगृहादिमें पडना, नीच कुलोंमें उत्पन्न होना, नीच काम करके मलीन भोजन करना, महान मलीन कपड़े पहिनना खोटे अंग उपांगादिका प्राप्त करना होता है, सम्यग्दृष्टि इनमें ग्लानी धारण कर अपने मनको नहीं बिगडने देता है। तथा कषायोंके वश होकर निंद्य आचरण करते देख अपने परिणाम नहीं बिगडने देता, सो निर्विचिकित्सा है।

अमूढ़दृष्टि—संसारी जीव मिथ्यात्वके प्रभावसे रागी द्वेपी देवोंके पूजनके प्रभावको देखकर प्रशंसा करते हैं। उन देवोंके निमित्त होने वाली बली आदिकी प्रशंसा करते हैं, कुदानको अच्छा मानते हैं, एवं यज्ञ होमादिक को तथा मंत्र तंत्र मारण उच्चाटनादि कार्योंको देखकर उनकी प्रशंसा करते हैं, कुआ वावडी खुदाना, बाग बगीचा लगवाना, आदिकी प्रशंसा करते हैं। पेट पालनेके लिये दुनियांके रिझानेके लिए, पूज्य पुरुषोंके भेप बनाकर उनके चरित्रका प्रदर्शन कर अपनी जीविकाके चलाने वालोंको देखकर उनको मनसे अच्छा मानना, गेरुसे रंगे हुए वस्त्र तथा रक्तपट एवं श्वेत-वस्त्रादिको धारण करने वाले कुलिंगियोंको देखकर उनके मार्गकी प्रशंसा करना, खोटे तीर्थोंकी तथा रागी द्वेपी वक्र परिणामी शस्त्रधारी देवोंको पूज्य मानना जोगिनी यक्ष क्षेत्रपाल आदिको धनके दाता माना, क्षेत्रपालादिको जिनशासनके रक्षक मानकर उनकी अर्चन पूजन करना आदि मूढदृष्टि हैं, सम्यग्दृष्टि ऐसी मूढदृष्टिको नहीं करता है। मिथ्यादृष्टि-योंके द्वारा होनेवाली तमाम ऊपर बतलाई हुई क्रियाओंको देखकर प्रभावित नहीं होता। मन, वचन, कायसे उनकी प्रशंसा नहीं करता उनसे सहमत नहीं होता, यही अमूढदृष्टि अंग है।

उपगूहनांग— भगवान जिनेन्द्रके द्वारा कहा हुआ दशलक्षण धर्म, रत्नत्रय धर्म व अहिंसा धर्म अनादि निधन है, संसारके तमाम प्राणियोंका उपकार करने वाला है, सब तरहके दोषोंसे रहित है इससे किसी का अकल्याण होता नहीं है कोई इसमें बाधा दे नहीं सकता ये तो स्वयं शुद्ध हैं ऐसे धर्मकी कोई अज्ञानी के चूकनेसे व वृद्धोंकी शक्तिहीनतासे निंदा होती होय तो उसको आच्छादन करना सो उपगूहनांग है। विशेषार्थ- दूसरे मिथ्यादृष्टि लोग सुनेंगे तो वे निंदा करेंगे, एक किसी अज्ञानीकी चूक सुनेंगे तो सब धर्मात्माओंको दोष लगावेंगे और ऐसा कहेंगे कि-"जिन धर्ममें जितने भी ज्ञानी, तपस्वी, त्यागी व्रती हैं वे सब पाखंडी हैं" एकके दोषको देखकर सब धर्म और धर्मात्मा दूषित होजांयगे इसलिये धर्मात्मा पुरुष किसी द्वारा लगे हुए दोषको इधर उधर प्रगट न कर उसको ढक देते हैं, जैसे माता अपने पुत्रमें प्रीति रखती है और पुत्रके द्वारा कोई दोष बन जानेपर उसको ढक देती हैं। उसी तरह धर्मात्माका कर्त्तव्य है कि धर्मात्माके द्वारा उसकी अज्ञानतासे कोई मार्ग विरुद्ध दोष लग जावे, तो उसको ढक देवे अर्थात् उस दोपको दुनियांमें न कहता फिरे उसीको समझा देवे इसको उपगूहनांग कहते हैं।

स्थितिकरणांग—कोई पुरुष सम्यग्दर्शन सहित सच्चा श्रद्धानी होय, तथा चारित्रका पालन करनेवाला व्रत-संयमसहित होय, परन्तु प्रबल कषायके उदयसे, खोटी संगतिसे, रोगकी तीव्र वेदनासे, दरिद्रतासे, मिथ्यादृष्टियोंके मिथ्यात्व पोषक उपदेशके सुननेसे, मिथ्यादृष्टियोंके चमत्कार बतलाने वाले मंत्र-तंत्रादिको देखनेसे, सच्चे श्रद्धान अथवा आचरणसे चलायमान होरहा हो, तो धर्मात्मा व जाति हितैषी साधर्मी भाइयोंका कर्तव्य है कि तन-मन धन खर्च करके भी उसको उसी मार्गमें स्थिर कर देवें इसका नाम स्थितिकरणांग है। विशेष— कर्मके उदयसे- रागद्वेष, रोग पीडा, उपसर्ग परीषह, इनसे परिणाम बिगड़ जाते हैं, ऐसी दशामें कोई धर्मात्मा धर्मसे छूट रहा हो तो उसको धर्मका उपदेश देकर ज्ञान और वैराग्यको बढ़ाकर धर्मसे अलग नहीं होने देना, औषधि आहार पानके संयोगसे, शरीरकी सेवा करनेसे, हम तो आपके हैं आप हमारे हैं आपकी सेवा करनेसे हम कदापि नहीं हटेंगे ऐसे आत्मसमर्पणसे जैसे बने उसीतरहसे डिगने न देवे, धर्ममें ही स्थापित कर देवे सो स्थितिकरण अंग है।

वात्सल्यांग— जिनेन्द्रदेवके द्वारा बतलाये हुए धर्ममें तथा धर्मके धारक धर्मात्माओंमें, धर्मके कारणोंमें नित्य प्रेम रखना, उस तरह से प्रेम रखना जैसे गाय अपने

वछडेसे प्रेम रखती है। अर्थात् जंगलसे आने वाली गाय जैसे हींस २ कर अपने वछडेमें प्रेम वतलाती है उसी तरह रत्नत्रयके धारकोंके समूहमें रहने वाले मुनि अर्जिका श्रावक श्राविकाओंमें तथा अव्रत सम्यग्दृष्टियोंमें सत्यार्थभाव सहित कपट रहित यथायोग प्रतिपत्ति अर्थात् विनय करना, कैसे करना? सो वताते हैं-उन्हें देखते ही उठकर खडे होना, सामने जाना, वंदना करना, उनके गुणोंका गान करना, अंजुलि करना, आज्ञा धारण करना, पूजा प्रशंसा करना, उनको आसन पर ऊंचे वैठाना, आप नीचे वैठना, जैसे कोई दरिद्रीको वडी भारी निधिके मिलनेसे हर्ष होता है उसी तरह धर्मात्माके मिलनेसे हर्ष मानना, यथा समय आहार, पान वस्तिका उपकरण देकर व वैयावृत कर आनंद माननादि वात्सल्यांग है।

प्रभावनांग-अनादिकालसे संसारीजीव वीतराग सर्वज्ञदेव द्वारा प्रकाशित धर्मको नहीं जानताहै इसीसे ऐसाभी ज्ञान नहीं है कि मैं कौन हूं, मेरा क्या स्वरूप है, इस जन्मसे पहिले मैं क्या था, कैसा था, यहां मुझे किसने उत्पन्न किया, रात गई दिन आया इस क्रमसे मेरी आयु वीत रही है ऐसी हालतमें मुझे क्या करना चाहिये? मेरा हित किसमें है। मेरा आराध्य कौन है? जीवेंको नाना प्रकारके सुख दुख

कैसे मिलते हैं। देव गुरु शास्त्र व धर्मका स्वरूप क्या है ? मरण जीवन क्या है ?

भक्ष्याभक्ष्यका क्या स्वरूप है? मेरा कौनहै? मैं कौन हूं ? इत्यादि विचार रहित मोहकर्मकृत अंधकारसे आच्छादित होरहे हैं उनके अज्ञानरूपी अंधकारको स्याद्वादरूप परमागमके प्रकाशसे दूर कर अपने और पराये स्वरूपका प्रकाश करना, सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रसे आत्माके प्रभावको प्रगट करना, दान, तप, शील, संयम, निर्लोभता, विनय, प्रियवचन, जिनेंद्रपूजन, गुणप्रकाशनसे जिनधर्मका प्रकाश करना जिनके उत्तम दानको, घोर तप, निर्वांछकपनेको देख कर मिथ्यादृष्टि भी प्रशंसा करें और कहें "ऐसा तप जैनियोंसे ही बनता है, ओहो जैनियोंका व्रत वडा कठिन है। प्राण भले ही चले जांय पर वे व्रत भंग नहीं होने देते, जैनियों की अहिंसा बडी महत्व रखती है प्राण जाते भी जो उसको भंग नहीं होने देते जिनके असत्यका त्याग, चोरीका त्याग परस्त्रीका त्याग, परिग्रह प्रमाण करके संपूर्ण अनीतियोंसे दूर रहते हैं। अभक्ष्य भक्षण नहीं करते। प्रमाणीक दिनमें देख शोध कर भोजन करते, इन जिनधर्मियोंका बडा धर्म है, जो वडे ही विनय शील हैं प्रिय हित मधुर वचनों द्वारा सबको आनंद देते हैं,जो अत्यंत क्षमावान हैं, अपने इष्ट देवको

बड़ी भक्ति करने वाले हैं। शास्त्राज्ञाके बड़े ही दृढ श्रद्धानी हैं, जिनका ज्ञान और आचरण बडा ही निर्मल है। वैरभाव रहित होकर सबसे मैत्रीभाव रखते हैं! ऐसा आश्चर्य जनक धर्म इनहीका है ऐसी प्रशंसा जिनधर्म की जिनके निमित्त से मिथ्याधर्मियोंमें भी प्रगट होती है। इस प्रकार जैन धर्मकी प्रभावना करना प्रभावना अंग है। इस प्रकार सम्यक्त्वके आठ अंगोंका संक्षेपमें वर्णन किया, इन आठों अंगोंका समुदाय ही सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्दर्शनकी निर्मलताके लिये छह अनायतनोंका भी त्याग करना चाहिये। अनायतनका अर्थ है जिनसे धर्म पैदा न होता हो। वे अनायतन छह प्रकारके हैं– मिथ्यादेव, मिथ्याशास्त्र, मिथ्यागुरु और इनके सेवक ऐसे छह इनका आदर सत्कार करना, विनय करना, इनमें धर्मात्मापनेका श्रद्धान करना अनायतन है। अनायतन सेवनसे घोर संसारका कारण मिथ्यात्वका बंध होता है। इनके सेवनसे सम्यक्त्वका घात होता है।

एवं सम्यग्दर्शनकी निर्मलताके लिये तीन प्रकारकी मूढताओंका भी त्याग होना चाहिये। (१) लोकमूढता (२) देवमूढता (३) गुरुमूढता। इनका सामान्य स्वरूप ऊपर कहा गया है, प्रकरणवश फिर कहा जाता है।

लोकमूढता—गंगादि नदियोंमें स्नान कर धर्म मानना, समुद्रमें स्नान करना, पर्वतसे गिरना, अग्निमें प्रवेश करना स्नानमें पवित्रता मानना, श्राद्धतर्पणादिको धर्म मानना, संक्रांतिका दान करना, ग्रहणका सूतक मान कर स्नान करना, बालूरेताका ढेर कर इनमें देवताकी कल्पना करना आदि लोकमूढता कहलाती है।

देवमूढ़ता— ग्रह, भूत, पिशाच, जोगिनी, यक्ष, यक्षिणी, क्षेत्रपाल, सूर्य, चंद्रमा, शनैश्चर आदिकी इच्छाओं की पूर्तिके लिये सेवा करना, पूजना, वंदना, दान देना सो देवतामूढ़ता है।

गुरूमूढ़ता— जो आरंभ परिग्रहके धारी हैं, हिंसादि पापोंके करने वाले, इन्द्रियोंके विषयोंमें अनुराग करने वाले, अभिमानी, अज्ञानी, अपनी पूजा सत्कार करानेकी इच्छा रखने वाले, खोटे २ भेष रखने वाले शास्त्र विरुद्ध आचरण करने वाले साधुको आदर सत्कार देना, धर्मात्मा समझ उनकी सेवा टहल करना सो गुरुमूढ़ता या पाखंडि मूढ़ता है।

शंका—सम्यग्दृष्टिको किसी प्रकारका भय होता है या नहीं ?

उत्तर—भय सात प्रकारके बतलाये गये हैं (१) इहलोक भय (२) परलोकभय, [३] मरणभय (४) वेदनाभय (५)

अनरक्षाभय (६) अगुप्तिभय (७) अकस्मातभय। इनमें से सम्यग्दृष्टिको कोई प्रकारका भय नहीं होता है।

इहलोकभय—क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य, सुवर्ण आदि दश प्रकारके परिग्रहके वियोग होनेका भय रखना इहलोकभय कहलाता है।

परलोकभय—पापोंके सेवन करने से परलोकमें कुगतियोंमें जन्म लेना पडता है, उनमें जन्म लेने से जीवोंको महान दुःख भोगने पडते हैं, उसका भय होना परलोक भय कहलाता है।

मरणभय—दश प्रकारके प्राणोंका वियोग होजाना मरण कहलाता है, उसका भय रखना मरणभय कहलाता है।

वेदनाभय—रोगादिके होनेसे उत्पन्न वेदनाका भय होना वेदनाभय कहलाता है।

अनरक्षाभय—हमारा कोई रक्षक नहीं है इस प्रकार का चिंतवन करना अनरक्षाभय कहलाता है।

अगुप्तिभय—चोर या दुश्मनके आजाने पर मैं कैसे बचूंगा इस प्रकारके भय होनेको अगुप्ति भय कहते हैं।

अकस्मातभय--एकाएक कोई तरह की विपत्ति आकर न खडी होजाय ! ऐसा भय रखनेको अकस्मातभय कहते हैं।

शंका--सम्यक्त्व होनेके लिये और क्या क्या होना चाहिये ?

उत्तर--सम्यक्त्वके होनेके लिये सम्यग्दर्शनके ५ भूषण होने चाहिये पर सम्यक्त्वके नाशक ५ कारण और सम्क्त्व को दूषित करने वाले ५ अतिचार नहीं होने चाहिये।

★

सम्यग्दर्शनके पांच भूषण—

★★

(१) जैन धर्मकी प्रभावना करनेका अभिप्रायका होना।

(२) हेय (त्यागने योग्य) उपादेय (ग्रहण करने योग्य) तत्वका विवेक होना।

(३) धैर्य धारण करते हुए क्रोधसे बचना।

(४) सम्यग्दर्शनके प्राप्त होने पर या उनकी वृद्धि होने पर हर्षित होना।

(५) तत्वविचारमें तल्लीनता का होना।

सम्यक्त्वके नाशक पांच कारण—

(१) ज्ञान होनेका अभिमान करना।
(२) बुद्धिकी हीनताका होना जिससे तत्वश्रद्धानमें विपरीतता हो सके।
(३) ऐसे वचन बोलना जिनसे निर्दयता जाहिर हो।
[४] क्रोध रूप परिणामोंका रखना।
[५] प्रमाद सहित आचरण करना।

★★

सम्यग्दर्शनके पांच अतिचार—

१ लोककी हंसाईका भय–अर्थात् सम्यक्त्व रूप प्रवृत्ति करनेमें लोगोंकी हंसीका भय रखना।
२ इन्द्रियोंके विषयोंके भोगनेमें अनुराग रखना और आगामी कालमें भोगोंके प्राप्त होनेकी चिन्ता रखना।
३ कुदेवोंकी भक्ति करना।
४ कुशास्त्रोंकी भक्ति करना।
५ कुगुरुओंके आचरणकी प्रशंसा करना।

शंका—सम्यग्दर्शनके अंगोंके होनेमें कोई कमी रह जाय तो उससे क्या हानि होती है ?–

उत्तर—जिस प्रकार सर्पके काटने पर उसके विषको दूर करनेकी शक्ति रखने वाले मंत्रके उच्चारण करते समय कोई अक्षर कम बोला जाय, तो वह मंत्र अपने कार्य को सफल करनेमें असमर्थ होता है। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन के एक अंगके न होने पर वह सम्यग्दर्शन संसारकी परिपाटीके नाश करने रूप कार्यके करनेमें असमर्थ होता है।

भावार्थ— मोक्षमार्गमें प्रवृत्ति करने वाले भव्य जीवोंको चाहिये कि सम्यग्दर्शनके आठों अंगोंका ठीक २ पालन करें, विना आठों अंगोंको ठीक २ पालन किये सम्यग्दर्शन संसारकी परिपाटीके नाश करने रूप कार्यको यथावत नहीं कर सकता है और बिना सम्यग्दर्शन हुए कोई कितनी ही कठिन से कठिन तपस्या क्यों न करे, मोक्षमार्ग सध ही नहीं सकता। कहा भी है कि—

खेत बहुत जोते हु बीज बिन रहत धान्यसे रीता।
सिद्धि न लहत कोटि तपहू तें वृथा कलेश सहीता॥

इसलिये अंग सहित ही सम्यग्दर्शन मोक्षमार्गमें कर्ण धारका काम कर सकता है अन्यथा व्यर्थ ही क्लेश उठाना है।

शंका--अभी तक आपने सम्यग्दर्शनके जो लक्षण कहे हैं वे व्यवहार सम्यग्दर्शनके लक्षण हैं या निश्चय सम्यग्दर्शन के लक्षण हैं !

उत्तर—अभी तक सम्यग्दर्शनके जितने लक्षण कहे गये हैं, वे सब व्यवहार सम्यग्दर्शनके ही लक्षण हैं निश्चय सम्यग्दर्शनके नहीं।

शंका--तो निश्चय सम्यग्दर्शनका क्या लक्षण है ?

उत्तर--निश्चय सम्यग्दर्शनका स्वरूप सिद्धांतोंमें जिस प्रकार बतलाया है, सो सुनो ? सम्यग्दर्शनके दो भेद होते हैं (१) सराग सम्यग्दर्शन (२) वीतराग सम्यग्दर्शन।

जो सम्यग्दर्शन राग सहित होता है उसे सराग सम्यग्दर्शन कहते हैं, और ऐसा सम्यक्दर्शन दशम गुणस्थान तक होता है। इसको भी व्यवहार सम्यग्दर्शन कहते हैं।

प्रश्न--यदि सम्यग्दर्शनमें रागांस होता है तो वह बंध का ही कारण ठहरा।

उत्तर—हां आपका कहना ठीक है कि जबतक सम्यग्दर्शन के साथ रागांस रहता है तब तक वह बंध का ही कारण ठहरता है, सो ही पुरुषार्थ सिद्धयुपायमें कहा है —

येनांशेन सुदृष्टिस्तेनांशेनास्य बंधनं नास्ति।
येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बंधनं भवति॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन के होने पर भी जितने अंशमें राग भाव नहीं होता है वहां तक कर्म का बंध नहीं होता, किंतु जितने अंशमें रागरूप प्रवृत्ति होती है उतने अंशमें बंध जरूर होता है।

प्रश्न—यदि सम्यग्दर्शन ही बंधका कारण होता है, तो जीवका मोक्ष जाना किस निमित्तसे हो सकता है? जब कि सम्यग्दर्शनको सिद्धांत में मोक्षका कारण बतलाया गया है?

उत्तर—आपका कहना ठीक है, सुनो—जब तक सम्यग्दर्शन में जघन्यता (रागसहित प्रवृत्ति) है तभी तक वह कर्मबंध का कारण रहता है, वही सम्यग्दर्शन जब वीतरागताको धारण कर लेता है, तब स्थिति और अनुभाग बंधके नाशका कारण हो जाता है, अर्थात् वीतरागताके होते ही बंध न होकर मोक्षमार्गता ही बनती है। दृष्टांत-यहां ऐसा समझना चाहिये कि किसी धनाढ्य सेठके एक पुत्र हुआ. अभी वह बाल्यावस्थामें है. तो उसके पालन पोषनमें खर्चा लगता है. उसकी पढ़ाई में भी खर्चा लगता है जवान होने पर उसकी शादी विवाह भी करना पड़ती है. उसमें भी खर्चा करना पड़ता है। ऐसी हालतमें जहां तक वह युवावस्थामें नहीं पहुंच जाता, खर्चा ही खर्चा लगता रहता है जब वह युवा होजाता है. तब व्यापारादि कार्य द्वारा कमाई

करने लगता है, और धनसे घर भर देता है। उसी तरह यह सरागसम्यग्दर्शन चारित्रमोहका बंध जरूर करता है। जैसे ही यह सम्यग्दर्शन वीतरागता धारण कर लेता है तभी से जितने भी कर्म बंध किये थे उन सबका नाश कर डालता है। और अपना स्वभाव भाव जो मोक्ष उसे प्राप्त कर लेता है। जिस प्रकार कि सेठके इस छोटे बालककी हर तरह की व्यवस्था करनेमें खर्च होने से खजाना खाली होजाता है और जवान होनेपर वही बालक कमाई वगैरह करके रिक्त खजाने को फिर से भर देता है। इस प्रकार सरागसम्यग्दर्शनका कथन किया। अब वीतराग सम्यग्दर्शनका कथन शुरू करते हैं सो सुनो।

जब सराग सम्यग्दर्शन सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानको छोडकर आगे बढता है तब उसके दो भेद हो जाते हैं। (१) उपशम वीतराग सम्यग्दर्शन (२) क्षायिक वीतराग सम्यग्दर्शन।

जब तक छट्टे गुणस्थानवर्ती मुनि व्यवहार क्रियामें रहता है, जैसे-आहार विहार, तब तक उस मुनिके कितने ही बार सप्तम गुणस्थान और कितनेही बार छट्टा गुणस्थान हुआ करता है। इस प्रकार सप्तम गुणस्थानके दो भेद होते

हैं (१) एक स्वस्थान अप्रमत्त (२) सातिशय अप्रमत्त । जिसमें स्वस्थान अप्रमत्तका तो ऊपर स्वरूप कहा जा चुका है, रहा सातिशय अप्रमत्त- सो जब यह जीव श्रेणी चढनेके संमुख होता है तबही सातिशय अप्रमत्त होता है। उस श्रेणी के भी दो भेद होते हैं (१) उपशमश्रेणी (२) क्षपकश्रेणी। इन दोनों श्रेणियोंका कर्तव्य भी भिन्न २ तरीकेका होता है और वह इस तरहसे कि- जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि होता है वह तो दोनों प्रकारकी श्रेणी माड लेता है, परंतु जो उपशम सम्यग्दृष्टि होता है, वह उपशमश्रेणीही माडता है क्षायिक नहीं।

प्रश्न—उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणीमें किन २ बातोंमें फरक होता है ?—

उत्तर—उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणीमें इतना भेद होता है कि–जो जीव अंतर्मुहूर्त बाद ही घातिया कर्मोंका नाशकर केवलज्ञान प्राप्त कर सकने वाला क्षायिक सम्यग्दृष्टि है वही क्षपकश्रेणीका आरोही हो सकता है। तथा किसी जीवके क्षायिक सम्यक्त्व तो है परंतु अभी उसको मोक्ष जानेका समय नहीं आया है, या उसके देव पर्यायका उदय आने वाला है या अंतर्मुहूर्तसे थोडा कुछ ज्यादा समय हो, तो वह जीव उपशमश्रेणी माड कर वहां से उतर आता है

यदि ज्यादा समय हो तो मरणकरे देव होकर फिर मनुष्य भव पाकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। या उस उपशमश्रेणीसे गिरकर फिरसे क्षायिक (क्षपक) श्रेणी पर आरोहण कर घातिया कर्मोंको खिपाकर केवलज्ञान पैदा (व्यक्त) करता है। इस प्रकार क्षायिक सम्यग्दृष्टिके क्षपकश्रेणीका या उपशमश्रेणीका विधान हुआ करता है।

अथ उपशम श्रेणीका वर्णन करते हैं—

उपशम श्रेणीका विधान—क्षयोपशम सम्यग्दर्शनवाला जीव सातिशय अप्रमत्तके अंत समयमें जो सम्यक्त्व-विरोधिनी सात प्रकृतियां हैं उनका क्षयोपशमसे उपशम कर शेष बचीं हुई चारित्र मोहकी इक्कीसप्रकृतियोंका भी यह जीव श्रेणीके आरोहण समयमें क्षपन कर उनका उपशमही कर देता है। यह जीव इस प्रकारकी प्रक्रियाको करता हुआ क्रमसे अष्टम, नवम व सूक्ष्मसांपराय नामा दशम गुणस्थानमें जाकर मोहनीयकी संपूर्ण प्रकृतियोंका पूर्ण रूपेण प्रशस्त उपशम कर देता है। इस प्रशस्त उपशम के निमित्तसे अंतर्मुहूर्त तक ग्यारहवें उपशांत मोह

गुण स्थानमें जाकर उपशमी यथाख्याती बन जाता है। बीचमें जो २ गुणस्थान बतलाये जैसे- सातवां, आठवां, नवमां और दशवां, इनमें जो २ क्रियाएं बतलाई गई हैं, उन सबको यह जीव उपशम रूपसे ही करता है। उन कार्योंका विधान जब तक यह जीव पीछा नहीं उतरता है तब तक बंद रहता है। जैसे इस साधुने उस उपशम यथाख्यातका अंतर्मुहूर्त काल पूर्ण होते ही जिस प्रकार चढ़ते समय सूक्ष्मलोभको दबाया था, उसी रूपसे उस सूक्ष्म लोभके उदय होते ही ग्यारहवां गुणस्थान छूटकर क्रमसे दशवां, नौवां, आठवां गुणस्थान प्राप्त करता है, और चढ़ते समय जिस २ गुणस्थानमें जिन २ प्रकृतियोंका अप्रशस्त उपशम करता है, उन २ के उदयका पुनः अनुभव करने लगता है ऐसा करते हुए यह जीव पीछा प्रमत्तविरत गुणस्थानमें आजाता है। यदि इसको मरण करना हो तो सासादन गुणस्थानमें जाकर मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त कर लेता है। अगर ऐसा नहीं करे तो उस उपशमसे फिर क्षयोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त कर सकता है। इस विषयका विशेष कथन लब्धिसारसे जानना चाहिये।

प्रश्न-प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन व द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन जो सिद्धांतमें बतलाए हैं सो किनके कब कैसे व्यक्त होते हैं सो कहो? —

उत्तर— प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन तो अनादि व सादि मिथ्यादृष्टि दोनोंके होते है। द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन मुनिके ही होता है, वह भी उस मुनिके होता है, जो सातवें गुणस्थानमेंसे श्रेणी चढनेके संमुख होता हुआ, क्षयोपशम सम्यक्त्वसे उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करता है और उपशम श्रेणीका आरोहण करता है। ऐसे सम्यग्दर्शनका नाम ही द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन है।

प्रश्न—आपने इतना लंबा चौडा सम्यग्दर्शनका व्याख्यान किया सो तो ठीक है, परंतु यह समझमें नहीं आया कि इस प्रकारके सम्यग्दर्शनसे इस जीवको क्या फायदा होता है ?

उत्तर—इस प्रकारके सम्यग्दर्शनसे पूर्वमें बांधे हुए कर्मोंकी निर्जरा होती रहती है।

प्रश्न—कर्मोंकी निर्जरा तो तपसे हुआ करती है, क्योंकि सिद्धान्तमें ऐसा ही वर्णन है कि "तपसा निर्जरा" फिर समझमें नहीं आया कि आपने सम्यग्दर्शनसे निर्जरा कैसे बतलाई ?

उत्तर— हे भव्य ! निर्जरा होनेके कई कारण होते हैं। सो सुनो - निर्जरा दो प्रकारकी होती हैं (१) सविपाक निर्जरा (२) अविपाक निर्जरा।

प्रश्न--कृपाकर इन दोनों प्रकारकी निर्जराका स्वरूप अच्छी तरह समझाइये जिससे कि यह जीव अपने भले बुरेका ठीक २ ज्ञान कर सके ?

उत्तर— इन दोनोंका प्रथक् २ स्वरूप निम्नलिखित है।

oooo

सविपाकनिर्जरा—

पहिले जो कर्म बांधे थे वे सत्तामें मौजूद रहते हैं- उनकी स्थितिके अनुसार जब आबाधा निकल जाती है तब वे कर्म उदयमें आने लगते हैं, और अपना रस देना शुरू कर देते हैं, तथा रसके अनुकूल ही आत्मामें राग द्वेषकी परिणति होने लगती है। जिससे पुन नवीन कर्मोंका आस्रव व बन्ध होने लगता है, और रस देने वाले कर्म अपनी अवधि पूर्ण कर खिरजाते हैं। इसीका नाम सविपाकनिर्जरा है। यह निर्जरा हाथीके स्नानकी तरह अथवा रहटके घड़ों की तरह होती है-जैसे हाथी पहिले तो स्नान करता है, बादमें अपनी ही सूंडसे सारे शरीर पर धूलि डाललेता है। अथवा जैसे रहटके घड़े ऊपर आते २ खाली होजाते और

नीचे जाने पर फिर भर जाते हैं। ठीक इसी तरह एक तरफ तो कर्म अपनी स्थिति पूर्णकर खिरते हैं, और दूसरी तरफ उनके उदयकालमें नवीन कर्मोंका बन्ध होता रहता है। ऐसी हालतमें कर्मोंकी निर्जरा होने परभी आत्मा कभी भी कर्मोंसे खाली नहीं होपाता। यह निर्जरा चारों गतियोंके जीवोंके होती है। इस निर्जरासे जीवोंका कुछभी भला नहीं होता है। सो ही कहा है कि–

निज काल पाय विधि झरना, तासौं निज काज न सरना।

अर्थात्–कर्म अपनी स्थितिके अनुसार रस देकर जो आत्मा से सम्बन्ध छोडते हैं उससे आत्माका कुछ भी भला नहीं होता है, ऐसी निर्जराका नाम सविपाक निर्जरा है।

-०※०-

अविपाक निर्जरा–

सविपाकी सबहीकें होय-अविपाकी मुनिवरके होय।

अविपाकी निर्जरा सम्यग्दर्शन पूर्वक ही होती है। इसका क्रम इस प्रकारका बतलाया गया है कि जो पहिले अपने शुभाशुभ परिणामोंके द्वारा बांधे हुए कर्म सत्तामें

मौजुद हैं, उनकी स्थितिके अनुसार आवाधा कालके पूर्ण हो जाने बाद वे कर्म उदयमें आने लगते हैं, तब यह जीव उस सम्यग्दर्शनके प्रभावसे जो कर्म उदयमें आकर रस दे रहे थे, उनके भोगनेका स्वामी नहीं बनता है। और ऐसा विचार करता है कि–यह कर्मोंका उदय कालीन विपाक है, इसका स्वरूप जड़ रूप है, मेरा आत्मा इससे बिलकुल उल्टा अर्थात् चेतन रूप है। मेरा आत्मा तो जितने भी विपाक हैं, केवल उनका जानने और देखने वाला ही है। वह तो जितने भी कर्म हैं उनसे अलिप्त है, सिद्धों के समान अमूर्त, चिदानंद, ज्ञानघन, परमात्मा और अनंत शक्तिसपन्न है। इन जडस्वरूप कार्माण जातिके पुद्गल परिमाणुओंसे इस आत्माका कोई संबंध नहीं है। ऐसे परिणामोंसे यह सम्यग्दृष्टि जीव जडरूप पूर्वकृत कर्मोंका स्वामी नहीं बनाता है। इसलिये जो कर्म पहिले बांधे थे, वे अपनी अवधि पूर्ण होनेके पहिले ही खिर जाते हैं, और आगामी बंधने वाले कर्मोंकी संवर और निर्जरा होती रहती है। इसीका नाम अविपाक निर्जरा है। इस अविपाक निर्जरासे ही जीवका भला होता है सो ही कहा है–

तप कर जो कर्म खिपावे, सोही शिव सुख दरसावे।

अविपाक निर्जराका दूसरा खुलासा —स्वरूप भी बत-लाया जाता है–अविपाक निर्जरा उसे कहते हैं कि जिन कर्मों

का उदयकाल अभी आया नहीं है, उन कर्मोंको तपश्चर्याके द्वारा उदयमें लाकर असमयमें ही खिरा देना, सो ऐसा कार्य विना सम्यग्दर्शन के नहीं होता है। इसलिये संसारी जीवोंको सच्चे और स्थाई सुखका निमित्त कारणरूप मोक्षावस्था, उसको प्राप्त करनेके लिये पूर्ण पुरुषार्थकी आवश्यक्ता हुआ करती है। पुरुषार्थ सम्यग्दर्शन सहित तपसे ही प्राप्त हो सकता है। किसी भी दूसरे निमित्तसे नहीं। इसलिये सम्यग्दर्शन सहित तपमें प्रयत्न करना चाहिये।

प्रश्न—सम्यग्दर्शन सहित तप होता कैसे है और उसका लक्षण क्या है?—

उत्तर—सच्चा और अभीष्ट फल देने वाला तप तभी हो सकता है जब सम्यग्दर्शन आत्मामें व्यक्त हो जाता है दूसरी तरह नहीं। और वह इस तरह कि—सम्यग्दर्शनके प्राप्त हो चुकने पर ही स्वरूपाचरण चारित्रकी अभिव्यक्ति हो सकती है। स्वरूपाचरण चारित्र दो तरहका होता है (१) लब्धिरूप (२) उपयोगरूप। इनमें से जब जीव उपयोगरूप होता है तभी उसमें विचार शक्तिका विकाश होता है। और उससे उसको ऐसा निश्चय हो जाता है, कि मेरा आत्मा अनंत शक्तियोंका पिंड है। सर्व शक्तिमान है, इस द्रव्यमें न दूसरा द्रव्य मिल सकता है और न ये द्रव्य किसी दूसरे द्रव्यमें मिल सकता है। इसीलिये द्रव्यको स्वसहायक कहते

है। सिद्धांत भी यही बतलाता है कि जो द्रव्य स्वसहायक है उसको किसी अन्य द्रव्यके सहायताकी इच्छा नहीं होती, क्योंकि द्रव्य खुद अनंत शक्तिशाली है। फिर उसमें अन्य पदार्थके साहाय्यकी आवश्यकता कैसी? जब इच्छा नहीं होती, तो इच्छाका विरोध ही सच्चा तप है। कहा भी है कि "इच्छानिरोधस्तप." इसलिये तपका यही लक्षण ठीक हो सकता है दूसरा नहीं।

प्रश्न—हमने तो शास्त्रोंमें तपका लक्षण दूसरी तरहसे सुना है कि तप दो प्रकारका होता है (१) बाह्य (२) आभ्यंतर। बाह्य तप अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग विविक्तशय्यासन, और कायक्लेश इसतरह छह प्रकारका है। और आभ्यंतर तप भी प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान इसतरह छह प्रकारका है। फिर आपने इच्छाका निरोध करना तप कैसे कहा? सो कृपाकर समझाइये? —

उत्तर— आपका कहना ठीक है कि शास्त्रोंमें अनशनादिको तप कहा है। परंतु वह लक्षण व्यवहार रूप तपका है। यहां आत्माके यथार्थ स्वरूपकी प्राप्तिका कथन है, उसकी प्राप्ति इच्छाओंके रहते हुए नहीं हो सकती। क्योंकि किसी प्रकारकी इच्छा [illegible] ही होती है, और

कषायका जहां तक सद्भाव रहता है, वहां तक आत्मस्व-रूपकी प्राप्ति हो नहीं सकती। आपके बतलाये हुए दोनों प्रकारके तप इच्छानिरोधके ही करनेके कारण हैं। इसलिये इनका परस्परमें कार्यकरण संबंध है कोई प्रकारका विरोध नहीं है।

प्रश्न—कृपया यह बतलाइये कि यह निर्जरा किनके किस प्रकारसे होती है? –

उत्तर—आचार्योंने निर्जरा होनेका क्रम तत्वार्थ सूत्रके नवमें अध्यायके ४५ वें सूत्रमें १० प्रकारसे बतलाया है (१) सम्यग्दृष्टि (२) श्रावक (३) संयतमुनि (४) अनंतानुवंधी कषायका विसंयोजक (५) दर्शन मोहक्षपक (६)-चारित्रमोहोपशक (७) उपशांतमोह (८) क्षपकश्रेणी चढ़ने वाला (९) क्षीणमोह (१०) जिन।

इन दशस्थानोंमें बढ़तीहुई असंख्यातगुणी निर्जरा होती है। सो किस तरह? यह बतलाते हैं—

(१) सम्यग्दृष्टि-प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्तिके पहिले तीन तरहके करण होते हैं। उनमेंसे अंतके अनिवृत्ति करणके समयके अंतमें होने वाली विशुद्धतासे विशुद्ध जो सातिशय मिथ्यादृष्टि जीव उसके आयुकर्म बिना सात

कर्मोंकी निर्जराका जो गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा बतलाया है उससे अविरत सम्यग्दृष्टि नामक चौथे गुणस्थानको प्राप्त असंयतसम्यग्दृष्टिकें अंतर्मुहूर्त पर्यंत समय २ असंख्यातका गुणाकार रूप गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे असंख्यातगुणी निर्जरा-

(२) पंचमगुणस्थानवर्ती श्रावकके होतीहैं। इस गुणस्थानवर्ती श्रावकके कई भेद होते हैं और वे भेद कषायोंकी मंदतासें विषयोंके त्यागसे होते हैं। इस गुणस्थानवर्तीके अन्तर्मुहूर्त पर्यंत निर्जरा होने योग्य कर्म पुद्गलरूप गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे भी -

(३) सकलसंयम ग्रहण करने वालेके आदिके अन्तर्मुहूर्त पर्यंत समय २ असंख्यातका गुणाकार रूप कर्मकी निर्जरा होने योग्य द्रव्य असंख्यात गुणा है। सो सकलसंयम पहिले अप्रमत्तसंयत नाम सप्तम गुणस्थानमें ही होता है। छट्टा प्रमत्तविरत गुणस्थान तो सातवेंसे पड़े हुएके ही होता है।

(४) अनन्तानुबन्धी कषाय विसंयोजक-अनन्तानुबन्धी चार कषायोंको शेषकी द्वादश कषाय रूप अथवा नव नो-कषाय रूप परिणमा देना इसका नाम विसंयोजन है। सो तीन करणके प्रभावसे ऊपर कहे हुएसे असंख्यातगुणा गुण श्रेणी निर्जरा द्रव्य है। सो अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन

अविरत, देशविरत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत इन चार गुणस्थानोंमेंसे किसी भी गुणस्थानमें होता है। जिस गुणस्थानमें विसंयोजन करता है उसमें अंतर्मुहूर्त पर्यंत समय समय असंख्यात गुणी निर्जरा होती है।

(५) दर्शनमोहक्षपक—अनंतानुबंधीके विसंयोजकसे दर्शनमोहके क्षय करने वालेकी गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणी है। सो दर्शनमोहकी क्षपणा भी करणत्रयकी सामर्थ्यसे केवली श्रुतकेवलीके निकट मनुष्य हीके अविरतादि चार गुणस्थानवर्तियोंके ही होती है। वहां भी अंतर्मुहूर्त पर्यंत गुणश्रेणी निर्जरा होती है।

(६) चारित्र मोहोपशमक—दर्शनमोहकी क्षपणा करने वालेसे अपूर्व करणादि तीन गुणस्थान वाले जो कषायका उपशम करने वाले हैं उनके गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यातगुणा है।

(७) उपशमक-उपर वालोंसे उपशांत कषाय गुणस्थानी जिसने संपूर्ण मोहनीय कर्मका उपशमकर दिया हो उसके गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है।

(८) चारित्रमोहक्षपक-उपशमकसे क्षपक श्रेणीवाला जो अपूर्व करणादि तीन गुपस्थानोंमें चारित्र मोहकी २१ प्रकृतियों की क्षपणा करते हैं उनके गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है।

(९) क्षीणमोह-ऊपरवालेसे जिसने संपूर्ण मोहनीय कर्मका क्षय किया ऐसे क्षीणमोह नामक बारहवें गुणस्थान वाले जीवका गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है।

(१०) जिन-क्षीणमोहसे स्वस्थानगत केवलीजिनका जिन्होंने चारों घातिया कर्म नाशकर अनंत चतुष्टयको प्राप्त किया है, गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है। समुद्घातगत केवली जिनका उससे भी असंख्यात गुणा गुण श्रेणी निर्जरा है।

इस प्रकारकी निर्जरा सम्यग्दर्शन वाले आत्माके अपने ही गुणोंसे होती है।

प्रश्न-इस प्रकारकी निर्जरा करने वाले सम्यग्दृष्टिके कोई बाह्य चिन्ह भी होते हैं या नहीं? यदि होते हैं तो उनका भी वर्णन कीजिये?:-

उत्तर-जिस आत्मामें सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाता है उसमें आठ गुण और प्रगट होजाते हैं जिससे कि निश्चय किया जा सकता है कि यह सम्यग्दृष्टि है। उन आठ गुणोंके नाम इस प्रकार हैं (१) संवेग (२) निर्वेद (३) निंदा (४) गर्हा (५)उपशम (६) भक्ति (७)वात्सल्य और (८)अनुकंपा। इनका पृथक लक्षण नीचे लिखा जाता है —

(१) संवेग-जिसके देहादिकमें आत्मबुद्धि नहीं और दश लक्षण रूप धर्ममें तथा धर्मधारियों व धर्मायतनोंमें

तथा धर्मकथाओंमें विशेष अनुराग हो उसके संवेग गुण होता है।

(२) निर्वेद–पंच परावर्तन रूप संसारसे, कृतघ्नी शरीरसे और अनंत संसारमें परिभ्रमण कराने वाले इन्द्रिय विषयोंसे विरक्तता होना सो निर्वेद गुण है।

(३) निंदा—शुद्ध आत्मभावनासे अपने प्रमादीपनकी असंयमपनेकी तथा संसार रूप व्यवस्थामें मगन रहनेकी निंदा करना निंदागुण है।

(४) गर्हा—अपने गुरूके पास या दूसरे २ गुणी धर्मात्माओंके पास अपने किये हुए पापोंको निःसंकोच भावसे प्रगट करना सो गर्हा गुण है।

(५) उपशम—क्रोध, मान, माया और लोभ कषाय की मंदता होना, तथा राग, द्वेष, काम, उन्मादको बंध का कारण जानकर उनको न होने देना, सो उपशमगुण है

(६)– भक्ति– पांचों परमेष्ठी, जिनवाणी, दशलक्षण धर्म, धर्मधारी धर्मात्मा, जिनेन्द्रके कृत्रिम अकृत्रिम प्रतिबिंब, व महान् तपस्वी, इन सबके गुणस्मरण करना, वंदना करना, स्तुति करना इत्यादि भक्तिगुण है।

(७) वात्सल्य—धर्म व धर्मात्माओंसे ऐसी प्रीति होना जैसे दरिद्रीको भूखे मरते मरते एक चिंतामणि रत्नके हाथमें आनेपर प्रेम होता है। या जगतकी भलाई करने

वाले विद्वानोंके उपदेशको सुनकर आत्मामें आनंद मानकर उनकी सराहना करते हुए उनसे प्रेम करना, सो वात्सल्य-गुण है। वात्सल्यगुण ही सब गुणोंकी खानि है।

(८) अनुकम्पा— छह कायके जीवों पर दया करना, दूसरे जीवोंको दुखी देखकर उनके दुख दूर करनेको ऐसा व्यवहार करना जिससे ऐसा मालूम पड़े कि ये दुःख अपने ऊपर ही आया है। दया भावसे भीगे हृदय द्वारा उनके दुखके मेटनेका उपाय करना सो अनुकम्पागुण है।

इनको आदि लेकर सम्यग्दृष्टिके बहुतसे गुण प्रगट होते हैं जो आनंदरूप निजी गुण कहे जाते हैं।

प्रश्न— ऊपर कहे हुए तमाम गुणोंको आपने निजी गुण कहा है परंतु बाहरमें दीखने वाले व्यवहार गुणोंका भी वर्णन करना चाहिये ? –

उत्तर— बाहरसे मालूम होने वाले सम्यग्दृष्टिके चार गुण होते हैं। उनके नाम ये हैं (१) प्रशम (२) संवेग (३) अनुकंपा और आस्तिक्य। इनके भी दो भेद होते हैं (१) गुणरूप (२) गुणाभास। जो गुण सम्यग्दर्शन पूर्वक होते हैं उन्हें गुणरूप कहते हैं। जो सम्यग्दर्शनके बिना होते हैं उन्हें गुणाभास कहते हैं।

प्रश्न— ऊपर कहे गुणोंका खुलाशा भाव समझाइये ?

उत्तर— यद्यपि इन गुणोंका खुलासा अर्थ हम ऊपर समझा चुके हैं फिर भी प्रकरणके अनुसार संक्षेपमें फिर कहे देते हैं–

(१) प्रशम– अनंतानुबंधी संबंधी कषायका दमन व इसी कषाय संबंधी रागादिकी उत्कटता रूप परिणामोंका दमन करना सो प्रशम गुण है।

(२) संवेग–धर्म और धर्मात्माओंसे अनुराग करना सो संवेग गुण है। या संसार शरीर भोगोंसे भयभीतता सो संवेग गुण है।

(३) अनुकंपा– दयाभावसे ऐसा चिंतवन करना, कि छह कायके जीवोंका मेरे द्वारा किसी प्रकारका अपकार न होकर उसकी भलाई ही हो, उनको दुखी देखकर उनके दुख दूर करनेका प्रयत्न करना, अनुकंपा गुण है।

(४) आस्तिक्य– आप्त आगम पदार्थमें जो जैसे हैं उनका उसी रूप श्रद्धान करना तथा कर्म कर्मफलादिका श्रद्धान करना सो आस्तिक्य गुण है।

इनका विशेष स्वरूप अन्य ग्रंथोंसे जानना चाहिये। यही गुण सम्यग्दर्शन रहित होते हैं तब गुणाभास कहलाते हैं। क्योंकि व्यवहारमें जो जैन धर्मके पालन करने वाले मनुष्य हैं वे व्यवहारमें रहते हुए भी इन गुणोंका पालन किया करते हैं। इसलिये इनको पालन करते हुए ही देखकर

सम्यक्त्वका अनुमान नहीं कर लेना चाहिये, क्योंकि सम्यक्त्व एक ऐसी चीज है, जिसको प्रत्यक्ष तो भगवान केवली ही जानते हैं, परंतु परोक्षमें उसको सर्वावधि, परमावधि और विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी सिवाय अन्यज्ञानी नहीं जान सकते।

प्रश्न—हम तो यही सुनते आरहे हैं कि सम्यग्दर्शन का निर्णय सिवा केवली भगवानके और कोई दूसरा ज्ञानी नहीं कर सकता। परंतु आपने तो यहां ऐसा प्रतिपादन किया है कि सर्वावधि, परमावधि वौर विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी भी जानते हैं सो कैसे?

उत्तर—सुनिये—केवली भगवान तोजानते ही हैं,इसमें तो संदेह करनेकी जरूरत ही नहीं है, परंतु सर्वावधि, परमावधि और मनःपर्ययज्ञानी भी जानते हैं,यह निर्णय यों है कि—मोहकर्म पुद्गल द्रव्य है और अवधिमनःपर्ययज्ञान हैं सो द्रव्य, क्षेत्र,काल, भावकी मर्यादा लिए हुए रूपी पदार्थ के अविभागी प्रतिच्छेद तकको जानते हैं, इसलिये जब वह अवधि व मनःपर्ययज्ञानी रूपी पदार्थ जो मोहकर्मरूप परमाणु जो कि उसकी आत्माके साथ नहीं हैं को जानता है इसलिये ऐसा कह सकते हैं कि यह सम्यग्दृष्टि है, क्योंकि सम्यग्दर्शनका विरोधी कर्म मोह इसकी आत्माके साथ नहीं है। बाकीके ज्ञानी इस बातका निर्णय नहीं कर सकते ऐसा सिद्धांतका कथन है।

प्रश्न-आपने कहा सो ठीक सिद्धांतमें हमने ऐसा सुना है कि आत्मा अनंत शक्तियोंका पिंड है फिर ये कर्म आत्मा को दुःख कैसे देते होंगे।

उत्तर-इस आत्मामें स्वगुण पारिणामिक शक्ति अनादि कालीन मानी जाती है। उस शक्तिका परिणमन दो तरह से होता है(१)वैभाविक(२)स्वाभाविक। दूसरेके निमित्तसे जो परिणति होती है,उसको वैभाविक,और विना किसी निमित्तके जो परिणति हो उसको स्वाभाविक परिणमन या परिणति कहते हैं। सो संसार अवस्थामें तो वैभाविक और मोक्षमार्ग रूप सम्यग्दर्शनादिके व्यक्त होने पर स्वाभाविक परिणतिके द्वारा इस प्रकारके कर्मोंका बंध करता है, जो इस आत्माको संसारकी चारों गतियोंमें घुमायाही करता है। उस परिभ्रमणसे छुटकारा तव तक नहीं हो सकता, जब तक सम्यग्दर्शन प्रगट न हो जाय। इसलिये जब तक जीवके वैभाविक [स्वभावसे विरुद्ध रागादिरूप] परिमण रहता है तव तक इसकी निजशक्तिका घात हो जानेसे इसको दुखोंका भोग करना ही पडता है। जहां मोक्षमार्गरूप सम्यग्दर्शनादिगुण अपने विरोधी कर्मको नाश कर व्यक्त हो जाते हैं, फिर कोई प्रकारकी वैभाविक परिणमन न होनेसे वे दुःख नहीं हो पाते।

प्रश्न—कृपाकर यह वतलाइये कि वे कौन २ से कर्म कैसे २ हैं, उनका कैसा २ परिणमन होता है; इत्यादिका विवरण

भी कीजिये ताकी कर्मकी प्रक्रिया हमें मालूम हो जावे ?
उत्तर— कर्मोमें सबसे जबरदस्त कर्म मोहनीय है जिसका कि वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं।

प्रश्न—ठीक है जो भी आप वर्णन कर चुके फिर भी कर्मोका क्रमबद्ध वर्णन होना ठीक है। इसलिये कर्मोका क्रमबद्ध वर्णन होना चाहिये ?

उत्तर—कर्म आठ प्रकारके होते हैं (१) ज्ञानावरणी [२] दर्शनावरणी [३] वेदनीय [४] मोहनीय [५]आयु [६] नाम [७] गोत्र और [८] अंतराय। इस प्रकार मूल कर्म तो आठ ही बतलाये गये हैं और उनके उत्तर भेद ज्ञानावरणके ५ दर्शनावरणके ९ वेदनीयके २ मोहनीयके २८ आयुके ४ नामके ९३ गोत्र कर्मके २ और अंतरायके ५ इस तरह १४८ होते हैं। इन कर्मोके बंध, उदय, सत्व, उदीर्णा आदिका विशेषकथन गोमटसारकर्म काण्डादि सिद्धांत ग्रंथोंसे जानना चाहिये। यहां कथन बढ़नेकी दृष्टिसे नहीं लिखा गया है। इन कर्मोकी प्रवृत्ति इस प्रकार होती है—ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय और अंतराय ये चारों कर्म घातिया कहलाते हैं, सो ये चारों कर्म जीवके ज्ञानादि अनुजीवी गुणोंको घातते हैं। और वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र ये चार कर्म अघातिया कहे जाते हैं। ये चारों अघातिया कर्म जीवके अनुजीवी गुणोंको नहीं घातते हैं। इनके रहते जीवको संसार में रहना पड़ता है।

प्रश्नः—जीव और पुद्गलके अनुजीवीगुण कौन २ हैं ? तथा अनुजीवी गुण किसे कहते हैं !

उत्तर—भाव स्वरूप गणोंको अनुजीवी गुण कहते हैं ऐसे अनुजीवी गुण जीवके तो-सम्यक्त्व, चारित्र, सुख, चेतना आदि हैं । और पुद्गलके रूप, रस, गंध स्पर्श है ।

प्रश्नः—अघातिया कर्मोंका क्या काम है !

उत्तरः—अघातिया कर्म आत्माके साथ जलीहुई रस्सी की तरह रहते हैं । इनके रहते हुए भी जीवके यथार्थ गुणों का विकाश रहता ही है जैसे-केवलज्ञानादि विभूत आदि इनके सिवाय और २ भी गुण प्रगट रहते हैं ।

प्रश्न—आठों कर्मोंका अलग २ खुलाशा कीजिये ?

उत्तर—आठों कर्मोंका खुलाशा निम्न प्रकार है—

ज्ञानावरणी—जिसके उदयसे आत्मामें ज्ञानगुण प्रगट न हो सके । जैसे मूर्तिके सामने पर्दा रहने पर मूर्ति व्यक्त नहीं रहती । दर्शनावरण जिसके उदय से आत्माका दर्शन गुण व्यक्त न हो सके । जैसे दरवानके रोकने पर राजाका मिलाप न हो सके ।

वेदनीय—जिस कर्मके उदयसे जीवको सुख दुखकी सामग्री मिले । यह कर्म अव्यबाध गुणको घातता है ।

मोहनीय—जिसके उदयसे आत्मा अपने आपकी

भूल जाय। यह आत्माके सम्यक्त्व और चारित्र गुणको घातता है।

आयु—जिसक उदयसे जीव चारों गतियोंमें नियत समय तक प्राप्त शरीरमें रुके। ये कर्म आत्माके अवगाहन गुणका घात करता है।

नाम—जो गत्यादि नानारूप परिणमावे, शरीरादिकी रचना करे। यह कर्म जीवके सूक्ष्मत्व गुणका घात करता है।

गोत्र—जिस कर्मके उदयसे जीवका ऊंच अथवा नीच कुलमें जन्म हो। यह कर्म जीवके अगुरुलघुत्व गुणका घात करता है।

अंतराय—जिस कर्मके उदयसे दानादि शुभ कार्यों में विघ्न हो। यह कर्म जीवके वीर्य गुणका घात करता है। इसके दानांतराय, लाभांतराय आदि पांच भेद होते हैं।

प्रश्न—कर्म परमाणु किसी और प्रकार भी परिणमते या नहीं?

उत्तर—इन कर्मोंका और भी दो प्रकारका परिणमन होता है (१) पुण्यरूप (२) पापरूप।

प्रश्न—पुण्य और पापसे क्या होता है?

उत्तर—पुण्य कर्मके निमित्तसे तो जीवको इष्ट सामग्री मिलती है जिससे जीव अपने आपको सुखी अनु-

भव करता है। और पाप कर्मके निमित्तसे जीवको अनिष्ट सामग्री की प्राप्ति होती है जिससे जीव अपने आपको दुखी अनुभव करता है।

ऊपर जो मूल प्रकृतियोंकी १४८ उत्तर प्रकृतियां बतलाई हैं उनके और भी कई तरहके व्यवहार होते हैं जैसे (१) घातिया (२) अघातिया (३) देशघातिया (४) सर्वघातिया (५) जीवविपाकी (६) पुद्गलविपाकी (७) क्षेत्रविपाकी (८) भवविपाकी इत्यादि।

ऐसे ही कर्मोंकी दश प्रकारकी और भी व्यवस्था होती है (१) बंध [२] उदय [३] सत्व [४] उदीर्णा [५] उत्कर्षण [६] अपकर्षण [७] संक्रमण (८) उपशम (९) निधात्ति (१०) निकांचन।

(१) बंधकरण—आत्मा और कार्माण जातिके पुद्गल परमाणुओंका एक दूसरे में दूध पानीकी तरह प्रवेश हो जाना बंध कहलाता है। बंध हो जाने बाद उनमें कर्मत्व शक्तिका होना ज्ञानावरणादि रूप होकर अपना कार्य करना होता है। ऐसा बंध सिद्धराशिके अनंतवें भाग और भव्यराशिके अनंतगुणा प्रमाण प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग बंध रूप होता है।

[२] उदयकरणा—जो कर्म सत्तामें थे उनका आबाधा

काल पूर्ण होकर रस देनेके संमुख होना और रस देकर खिर जाना ही उदयकरण है।

[३] सत्व—पुद्गल कर्मोंका सत्ता रूप रहना ही सत्व करण है।

(४) उदीर्णा—उदयावलीके बाह्य रहने वाले कर्म पुद्गल को उदयमें लाकर खिरा देना।

[५] उत्कर्षण--निमित्त मिलने पर कर्मोंकी स्थिति और अनुभागमें वृद्धि हो जाना अर्थात् जो स्थिति और अनुभाग पूर्व में बंधी थी उससे ज्यादा हो जानेको उत्कर्षण कहते हैं।

[६] अपकर्षण--निमित्त पाकर पूर्वमें बंध किये हुए कर्मों की स्थिति और अनुभागमें कमी हो जानेको अपकर्षण कहते हैं।

(७) संक्रमण--जो प्रकृति पहिले बंधी थी, उसका दूसरे रूपमें परिणमन हो जाना। जैसे क्रोध मानरूप हो जाय, या मायादि रूप हो जाय, सो संक्रमण है। संक्रमण दो प्रकारका होता है [१] स्वस्थान संक्रमण (२) परस्थान संक्रमण।

क-स्वस्थान संक्रमण-जो अपने से ही भिन्न रूपमें परिणम जाय उसे स्वस्थान संक्रमण कहते हैं जैसे मतिज्ञान अपनी जघन्य स्थिति से उत्कृष्ट स्थिति में पलट जाय।

ख— परस्थान संक्रमण — जो प्रकृति पररूपमें परिणम जाय उसको परस्थान संक्रमण कहते हैं। जैसे- अनंतानुबंधी अप्रत्याख्यान रूप हो जाय, अथवा मतिज्ञान श्रुतज्ञान रूप हो जाय।

(८) उपशम—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके निमित्त से कर्मकी शक्तिकी अनुद्भूति अर्थात् उदय नहीं होना सो उपशम है।

(९) निधत्ति—जो कर्म उदयावलीको भी प्राप्त न हो और न संक्रमण दशाको प्राप्त हो उसको निधत्ति कहते हैं।

[१०] निकांचना—जिस कर्मकी न तो उदीर्णा हो न संक्रमण हो, न उत्कर्षण हो, न अपकर्षण हो, इस प्रकार चारों अवस्थाओंका न होना ही निकांचन है।

इस प्रकार कर्मोंकी अवस्था हुवा करती है।

प्रश्न—आठ कर्मोंकी स्थिति किस प्रकार है?—अर्थात् कर्मोंका सम्बन्ध कितने २ समय तक रहता है?—

उत्तर—आठों कर्मोंकी स्थिति दो प्रकारकी मानी गई है। (१) उत्कृष्ट [२] जघन्य। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय। इन चार कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीस२ कोडाकोडी सागरकी है। मोहनीयकर्मकी

सत्तर कोडाकोडी सागरकी होती है। नाम और गोत्र कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरकी होती है। और आयु कर्मकी तेतीस सागरकी होती है। जघन्य स्थिति वेदनीय कर्मकी १२ मुहूर्तकी होती है। नाम और गोत्र कर्मकी आठ मुहूर्तकी होती है। और बाकी कर्मोंकी अन्त-र्मुहूर्तकी होती है। मोहनीय कर्मके दो भेद हैं [१] दर्शन-मोहनीय (२) चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोडाकोडी सागरकी है और चारित्रमोहनीय की चालीस कोडाकोडी सागरकी होती है।

प्रश्न--ऊपर कर्मोंके बन्धका वर्णन तो किया गया है, परन्तु उनके स्वामियोंका वर्णन भी करना चाहिए?

उत्तर—उत्कृष्ट स्थिति बन्ध तो संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवके होता है। उसका निमित्त या तो उत्कृष्ट विशुद्ध परिणाम हों या उत्कृष्ट संक्लेश परिणाम हों।

एकेन्द्रिय जीवकें उत्कृष्ट स्थिति एक सागरकी, दो इन्द्रिय जीवकें २५ सागरकी, त्रीन्द्रियजीवकें ५० सागरकी चौइन्द्रियकें १००० सागर तककी होती है।

प्रश्न- कर्मोंका आबाधाकाल किस प्रमाणसे समझना चाहिए?

उत्तर--एक कोडाकोडी सागरकी स्थितिका आबाधाकाल १०० वर्षका होता है। इस प्रमाणसे सत्तर कोडाकोडी सागरका आबाधाकाल ७००० वर्ष होता है, और अन्तः कोडाकोडी सागरका आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है। आयु कर्मकी आबाधा स्थितिके अनुसार नहीं होती है।

प्रश्न--जो कर्मोंका आस्रव समय प्रबद्ध प्रमाण होता है, उसका बंटवारा किस प्रमाणसे होता है ?

उत्तर--मूल प्रकृतियोंमें आयुकर्मका हिस्सा सबसे थोडा होता है। नाम और गोत्र कर्मका हिस्सा बराबर२ होता है, परन्तु आयु कर्मसे ज्यादा होता है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इनका हिस्सा बराबर २ होता है, लेकिन नाम और गोत्र कर्मसे ज्यादा होता है। इनसे अधिक मोहनीय कर्मका बंटवारा होता है। और मोहनीयसे अधिक भाग वेदनीय कर्मका होता है। ऐसा समझना चाहिए।

प्रश्न--सबसे प्रबल और विपरीत कर्म तो मोहनीय है। सबसे ज्यादा बंटवारा मोहनीयका होना चाहिए। फिर वेदनीयका ज्यादा कैसे बतलाया है ?

उत्तर--वेदनीय कर्म सुख दुखका कारण है। अर्थात् इसके उदयसे जीवको इष्ट अनिष्ट सामग्रीकी प्राप्ति होती है। इसलिए इसकी निर्जरा भी सबसे ज्यादा होती है। इसलिए

सब कर्मोंसे अधिक द्रव्य इसहीका भगवान जिनेन्द्रदेवने कहा है । जिसकी स्थिति अधिक होती है, उसको अधिक और जिसकी स्थिति कम होती है, उसको कम बंटवारा मिलता है ।

प्रश्न--समयप्रबद्धका जो आस्रव होता है उसका बंटवारा इन कर्मोंमें सात प्रकारसे होता या आठ प्रकारसे होता है ?

उत्तर- जबतक आयु कर्मका बंध नहीं होता है तबतक तो उस समयप्रबद्धका सात प्रकारका ही बटवारा होता है । और जैसे ही यह जीव आयुकर्मका बंध कर चुकता है तब से समयप्रबद्धका बटवारा आठ प्रकारका ही होता है ।

प्रश्न--ऊपर आपने कर्मोंका आबाधाकाल बतलाया है उसका खुलाशा करें और बतलायें कि उसका लक्षण क्या है तथा उसकी गणना कैसे होती है ?

उत्तर—शुद्ध पुद्गलका परिमाणु मंदगतिसे आकाशके एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशपर पहुंचता है उसमें जो काल लगता है उसको समय कहते हैं । ऐसे असंख्यात समयकी एक आवली होती है। और संख्यात आवलीका एक श्वासोच्छ्वास होता हैं । सात उच्छ्वासका एक स्तोक और सात स्तोकोंका एक लव और साढे अडतालीस लवोंकी एक नाडी

या घडी होती है। दो घडीका एक मुहूर्त, एक समय कम एक मुहूर्तको एक अंतर्मुहूर्त कहते हैं। तीस मुहूर्तका एक दिनरात, पन्द्रह दिनरातका एक पक्ष दो पक्षका एक महिना दो माहकी एक ऋतु, तीन ऋतुका एक अयन और दो अयनका एक वर्ष होता है। पांच वर्षका १ एक युग होता है। दो हजार कोशके योजनसे एक योजन लंबे और एक योजन चौंडे गोल गड्ढेमें भोगभूमिमें पैदा हुए सात दिनके मेढेके वालोंके ऐसे टुकडोंसे जिनका दूसरा टुकडा न हो सके उस गड्ढेको सिवाड भर दो ऐसा भरो जिसपरसे चक्रवर्तीका कटक निरापद निकल जावे तो भी वे वाल दवें नहीं, और न उसमें दूसरा टुकडा समा सके, उन प्रत्येक टुकडों को सौ सौ वर्ष वाद निकाले जितने वर्षोंमें वे सब टुकडे निकल जावें उतने समयका नाम व्यवहारपल्य है। व्यवहार पल्यसे असंख्यात गुणा उद्धारपल्य और उद्धारपल्यसे असंख्यात गुणा समय वीतने पर एक अद्धापल्य होता है।

एक करोडको एक करोडसे गुणा करने पर जो गुणनफल हो उसको एक कोडाकोडी कहते हैं। यहां ऐसा समझना चाहिए कि ऊपर जो अद्धापल्यका प्रमाण वतलाया है वैसे दस कोडाकोडी अद्धापल्योंका एक सागर होता है। इस प्रकार सागरका प्रमाण जानकर ऊपर वतलाये हुए नियमानुसार आवाधाको समझना चाहिए।

प्रश्न—ऊपर जो चार प्रकारका बन्ध बतलाया है उसका खुलासा विवेचन कीजिए ?

उत्तर—सिद्धान्त शास्त्रोंमें बन्धके चार भेद बतलाये गये हैं--[१] प्रकृतिबंध (२) प्रदेशबंध [३] स्थितिबंध और (४) अनुभावबंध।

प्रकृतिबंधके आठ भेद मय दृष्टांतके बतलाए जाते हैं-

१ ज्ञानावरणकर्म-जिस प्रकार बहुतसी उडती हुई धूलि सूर्यके प्रतिबिंबको ढक देती है जिससे देखने वालेको उस बिंबका ज्ञान नहीं हो पाता है, उसी प्रकार जिस कर्मके उदयसे जीवको ज्ञान न हो सके उसको ज्ञानावरण कहते हैं।

२ दर्शनावरण- जैसे राजमहलके दरवाजे पर खडा हुआ द्वारपाल दर्शनार्थीको राजाके दर्शन नहीं होने देता है, उसी प्रकार जिस कर्मके उदयसे पदार्थके दर्शन न हो सकें उसे दर्शनावरणकर्म कहते हैं।

वेदनीय-जिस तरह शहद लपेटी तलवारके चाटने पर शहदके चांटनेसे सुख और जीभके कट जानेसे दुख दोनों होते हैं। उसी तरह जिस कर्मके उदय होनेसे इष्ट अनिष्ट रूप सुख दुखकी सामग्री मिले उसको वेदनीयकर्म कहते हैं।

४ मोहनीय-जिस प्रकार मदिराके पीनेसे मनुष्य अपने आपको भूल जाता है उसी तरह जिस कर्मके उदयसे आत्मा अपने आपको भूल जाय उसको मोहनीयकर्म कहते हैं।

(५) आयु–जिस प्रकार पैरमें पडी हुई बेडी परतंत्र कर देती है। एक स्थानसे दूसेर स्थान पर नहीं जाने देती है । उसी प्रकार जो कर्म नियत समय तक उस २ गतिमें जीवको शरीरमें रोक रक्खे उसको आयुकर्म कहते हैं।

(६) नाम–जिस प्रकार चितेरा छोट बड़े नाना आकृतिके चित्राम बनाता है, उसी प्रकार जिस कर्मके उदय से नाना प्रकारके शरीरकी आकृति बने उसे नाम कर्म कहते हैं।

(७) गोत्र–जिस प्रकार कुम्हार छोटे बडे घड़े बनाता है उसी तरह जिस कर्मके उदयसे जीव लोक प्रतिष्ठित व लोकनिंद्य कुलमें जन्म ले उसको गोत्र कर्म कहते हैं।

८ अंतराय– किसी राजाने एक भिखारीको एक हजार रुपया खजानेसे दिला देनेका हुक्म दिया परन्तु खजांचीने अन्य कारण बतलाकर न देने दिये । उसी प्रकार जो कर्म जीवके दानादिक शुभ कार्यमें विघ्न डाले, उसको अंतराय कर्म कहते हैं, ये प्रकृतिबंधके भेद हैं।

स्थितिबंध–जिस प्रकार किसी दूध अथवा अन्य पदार्थ में नियत समय तक स्वाद रहता है, समय पूर्ण होते ही स्वाद बिगड जाता है। अथवा जैसे कोई आफिसर अपने पद पर नियत समय तक रह कर चला जाता है। उसी

प्रकार आत्मामें बांधे हुए कर्मसें रहनेकी म्यादके पडनेको स्थितिबंध कहते हैं।

३ अनुभागबंध–जैसे वकरी, गाय, भैंस आदिके दूध में हीनाधिक रूपसे मधुर रस पाया जाता है। उसी तरह आत्माके साथ संवद्ध कर्मोंमें सुख दुख देने रूप फलकी हीनाधिक दशाको अनुभागबंध कहते हैं। उनमें से घातियाकर्म की शक्ति (१) वेल (२) काष्ठ (३) हाड (४) पाषाणके भेद से चार प्रकारकी होती है। तथा अशुभ अघातिया कर्मोंसे संबंध रखने वाली शक्ति निंब, कांजीर, कालीजीर हालाहल रूपसे चार प्रकारकी होती है। इससे उल्टे शुभ अघातिया कर्मकी गुड, खांड, मिश्री, और अमृत इन भेदों से चार प्रकारकी होती है।

४ प्रदेशबंध–एक २ आत्मप्रदेशमें सिद्धोंके अनंतवें भाग (अनंत भागोंमेंसे एक भाग) और अभव्य राशि से अनंत गुणे प्रमाणके धारक ऐसे अनंतानंत परमाणु प्रत्येक क्षणमें बंधको प्राप्त होते हैं, उन्हें प्रदेशबंध कहते हैं।

प्रश्न–आपने जो चार प्रकारके बंध वतलाये हैं उनके कारण भी वतलाना चाहिये ?

उत्तर–चारों प्रकारके बंधके कारण योग और कषाय हैं अर्थात् प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध तो योगोंसे होते हैं, और स्थितिबंध तथा अनुभागबंध कषायसे होते हैं। कहा भी है कि–

जोगा पयडीपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो होंति ।

प्रश्न–इस तरह कहनेसे भी इनका खुलासा नहीं हुआ अच्छी तरह इनकी व्याख्या कीजिये ?

उत्तर–बंधके करने वाले मुख्य कारण मिथ्यात्व अविरति आदि हैं। इनके निमित्तसे भेद रूप योग और कषाय कहे जाते हैं। कहा भी है:–

" मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बंधहेतवः "

अध्याय ८ सूत्र, १ तत्वार्थसूत्र ।

प्रश्नः योग और कषाय क्या चीज हैं और वे कितने२ प्रकारके होते हैं इसका खुलासा कीजिये ?

उत्तर– निश्चय नयसे आत्माके प्रदेश नित्य अचल और कूटस्थ हैं। उनमें कोई प्रकारकी क्रिया नहीं होती है। परंतु व्यवहार नयसे चार प्रकारका मनोयोग चार प्रकारका वचनयोग और सात प्रकारका काययोग ऐसे पन्द्रह योगोंके निमित्तसे त्माके प्रदेशोंमें हलन चलन रूप क्रिया होती है। जिससे प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध ऐसे दो प्रकारके बंध होते हैं।

(कषाय) निश्चय नयसे आत्मामें कोई विकार नहीं होता है, वह परमात्म स्वभावका धारक कषाय आदि विकारोंसे रहित है। परन्तु व्यवहार नयकी अपेक्षा पर पदार्थके संबंधसे आत्मामें राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान

आदि रूप परिणति होती है इसीको कषाय कहते हैं। उसके कषाय और नोकषायके भेदसे व उनके प्रभेदोंसे २५ भेद होते हैं। उनसे स्थिति और अनुभागबंध होते हैं।

प्रश्नः—इन बंधोंमें बंधने वाला जीव, कौन २ गतियां प्राप्त करता हैं ?और वहां कैसी दशा होती है ?

उत्तरः—इस प्रकारके बंधसे बंधने वाले जीव पंच परावर्तन रूप संसारकी चारों गतियोंमें अर्थात् (१) नरक (२) तिर्यंच (३) मनुष्य और (४) देवगतिमें जन्म लेते हैं। और इनमें अपने २ पाप पुण्यके उदयानुसार सुख दुखका अनुभव करते हैं उसीका खुलाशा करते हैं—

संसारमें सबसे पहिले इन जीवोंके रहनेका स्थान जिसको लोकाकाश कहते हैं वह पुरुषाकार है। और आकाशके बिलकुल मध्य भागमें ठहरा हुआ है। तीन तरहकी वायुओंसे वेष्टित है और १४राजू ऊंचा है। घनाकार तीनसो त्रितालीस राजू प्रमाण ऊँचा है। उसमें एकराजू लंबी एकराजू चौडी चौदह राजू ऊंची त्रसनाली है सो तीन सौ उनतीस राजू में तो स्थावर जीव रहते हैं। बाकी चौदह राजू में त्रस और स्थावर दोनों प्रकारके जीव रहते हैं। इस विषयका विशेष कथन तिलोयपण्णत्ति व त्रिलोकसारसे जानना चाहिये। यह लोक तीन विभागोंमें विभक्त है (१) अधोलोक सात राजू प्रमाण है (२) मध्यलोक एक

लाख योजन ऊंचा (३) ऊर्ध्वलोक एक लाख योजन कम सात राजूका विस्तार वाला है।

अधोलोकमें सात पृथिवीं हैं (१) घम्मा (२) वंशा (३) मेघा (४) अरिष्टा (५) अंजना (६) मघवी (७) माघवी। इनमें पहिली पृथ्वीके ३ भाग हैं(१)खरभाग(२)पंकभाग और अव्बहुल भाग। पहिला भाग १६ हजार योजनकी मुटाई का है (२) दूसरा भाग ८४ हजार योजन की मुटाई का है, और तीसरा ८० हजार योजना की मुटाई लिये है। पहिले खरभाग में चित्रवज्रा, वैडूर्य आदि हजार २ योजन की मुटाईको लिये सोलह पृथ्वी हैं। इनमें ऊपर नीचे के एक २ हजार योजनको छोडकर मध्यकी चौदह हजार योजन मोटी और एक राजू प्रमाण चौडी लंवी पृथ्वीमें तो किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गंधर्व,यक्ष, भूत और पिशाच इन सात प्रकारके व्यंतर देवोंके और नागकुमार, विद्युतकुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तानितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार, और दिक्कुमार, ऐसे नौ प्रकारके भवनवासियोंके निवास स्थान वने हुए हैं। दूसरे पंक भागमें असुरकुमार और राक्षसोंके निवास स्थान हैं। तीसेर अव्बहुल भागमें प्रथम नरक है। उसमें नारकी दुःख भोगते हुए रहते हैं। इस प्रकार पहिली पृथ्वी

एक लाख अस्सी हजार योजनकी मुटाई वाली है । फिर एक राजूप्रमाण अंतराल छोड कर नीचे दूसरी शर्करा [वंशा] पृथ्वी है। इसकी मोटाई ३२ हजार योजनकी है। फिर एक राजूका अंतराल छोड कर वालुका (मेघा) पृथ्वी है। इसकी मोटाई अट्ठाईस हजार योजनकी है। फिर एकराजू अंतराल छोडकर चौथी पंकप्रभा (अरिष्टा) पृथ्वी २४ हजार योजनकी मुटाईको लिये हुए हैं। फिर एक राजू अंतराल छोडकर २० हजार योजनकी मुटाई वाली धूम प्रभा (अंजना) पृथ्वी है। फिर एक राजूका अंतराल छोडकर १६ हजार योजनकी मुटाईवाली छट्ठी तम-प्रभा (मघवी) पृथ्वी है। फिर एक राजू अंतराल छोड कर ८ हजार योजनकी मुटाईवाली सातवीं महातमप्रभा (माघवी) पृथ्वी है। इस प्रकार छह अंतरालके छह राजू हुए। फिर सातवीं पृथ्वीके एक राजू नीचे अधोलोकका अंत है। इन सातों पृथिवियोंकी चौडाई लंबाई लोकके अंततककी जानना। इन पथिवियोंका जैसा नाम है उसी प्रकार उनकी प्रभा है। नारकी जीव मन सहित सैनी पंचेन्द्रिय हैं। यह जीव अत्यंत तीव्र कषायवाले और अशुभ लेश्यावाले होते हैं। इनको आंखकी टिमकार बराबर भी सुख नहीं मिलता है।

प्रश्नः—नरकोंमें जीव कौन २ से कामोंको करके जाते हैं ?

उत्तरः—सबसे प्रधान कर्म तो मिथ्यात्वका सेवन है। जो कुदेव कुशास्त्र और गृहस्थियोंसे भी ज्यादा आरंभ और परिग्रहके रखनेवाले तथा इंद्रियोंके विषय और कषाय को सेवन करनेवाले ऐसे कुगुरुओंका आदर सत्कार व पूजा प्रतिष्ठा करना है, यही मिथ्यात्व है। मिथ्यात्वके वशीभूत होकर जीव नानाप्रकारके धर्मविरुद्ध कार्योंको करते और उनको धर्म मानते हैं। इसीसे तीव्र पाप बंधता है और उसके फलरूप नरकोंमें जन्म लेते हैं। निर्दयी, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, झूठ बोलनेवाले, छल कपटकर दूसरोंको ठगनेवाले, चोरी करनेवाले, परस्त्री लंपटी व वेश्या सेवन करनेवाले, चुगल, मांसाहारी, मद्यपायी, अभक्ष्य भक्षी, दूसरोंकी धरोहर हरनेवाले, न्यायविरुद्ध धन कमाने वाले, और २ भी ऐसे दुष्कर्म करनेवाले जीव नरक जाते हैं। झूठी गवाही देना, झूठी नालिश करना, लोगोंको आपस में लडा देना, धर्मके जितने कार्य होते हों उनमें रुकावट डलवाना, आदि भी नरकोंमें जन्म लेनेके कारण हैं। नरकोंमें जाने वालोंके परिणाम निरंतर रौद्ररूप होते हैं, उनको अन्य जीवोंको दुख देने में आनंद आता है।

सातों पृथिवियोंमें नरकोंकी संख्या इस प्रकार है— पहिली पृथ्वीके अब्बहुल भागमें ३० लाख विले हैं, दूसरी में पच्चीस लाख, तीसरीमें पन्द्रह लाख, चौथीमें दशलाख पांचवीमें ३ लाख, छट्ठीमें पांच कम एक लाख, और सातवीं पृथ्वीमें केवल पांच विले हैं। सब मिलकर चौरासी लाख विले होते हैं। ये विले गोल, त्रिकोण, चोकोर इत्यादि अनेक आकारके होते हैं। कोई विल संख्यात योजन, कोई २असं-ख्यात योजनप्रमाण लंबेचौडे होते हैं। विलोंके परस्पर बराबर अंतरालमें और ऊपर नीचे हरएक तरफ पृथ्वीस्कंध है। जैसे ढोल जमीनमें गाड दिया जाय, तो ढोलके सब तरफ पृथ्वी रहती है। ढोलकी पोलारी समान नरकोंके विल होते हैं उन एक २ विलेमें संख्यात व असंख्यात नारकी रहते हैं। जो ऊपर वतलाए हुए पापोंके फलोंको भोगते रहते हैं।

पहिली पृथ्वीके अब्बहुलभागमें १३ पाथडे (प्रस्तार) हैं। दूसरी पृथ्वीमें ११, तीसरीमें ९, चौथीमें ७, पांचवीमें ५ छट्ठीमें ३ और ७ वींमें १ इस तरह सब पृथिवियोंमें ४९ प्रस्तार या पाथडे होते हैं और ये सब प्रस्तार नीचे २ हैं। इन प्रस्तारोंमें इन्द्रक, श्रेणिवद्ध और प्रकीर्णक ऐसे तीन प्रकारके विले होते हैं। पाथडेके बीचों बीच एक इन्द्रक विल होता है। उस इन्द्रककी चारों दिशा और चारों विदि-

शाओंमें पंक्तिरूप विले हैं उन्हें श्रेणीबद्ध कहते हैं। दिशा और विदिशाओंके आठ अंतरालोंमें इधर उधर फैले हुए फूलोंकी तरह प्रकीर्णक बिले हैं। प्रथम पाथडेके श्रेणीबद्ध बिल चारों दिशाओंमें उनचास २ और चारों विदिशाओंमें प्रत्येकमें अडतालीस २ बिले हैं। आगे नीचे २ एक २ प्रस्तार संबंधी चारों दिशाओं और चारों विदिशाओंमें एक २ श्रेणीबद्ध बिला घटता २ है। प्रथम इन्द्रक पैंतालीस लाख योजन विस्तारवाला है, सो अढाई द्वीपके बराबर सूध में नीचे है। आगे नीचे समान अनुक्रमसे घटते हुए अंतका उनचासवां इन्द्रक एक लाख योजनका विस्तारवाला है। इस प्रकार गुणचास इन्द्रक तो सब संख्यात योजनके हैं और श्रेणीबद्ध सब असंख्यात योजनके हैं। तथा प्रकीर्णक बिले कोई तो संख्यात योजनके हैं, और कोई असंख्यात योजनके हैं। इन बिलोंमें नारकी जीव सदा अशुभतर लेश्या अशुभ परिणाम, अशुभ देह, अशुभ वेदना और अशुभ विक्रिया वाले होते हैं। नारकियोंके अशुभ कर्मोंके उदयसे अत्यंत अशुभ लेश्यादिक पाई जाती हैं। पहिली दूसरी पृथ्वीके नारकियोंके तो कापोत लेश्या ही होती है, तीसरी पृथ्वीके नारकियोंके ऊपरके बिलों वाले नारकियोंके कापोत और नीचेके नारकियोंके नील लेश्या होती है, चौथीमें नील लेश्या, पांचवीमें ऊपरवालोंके नील, नीचे कृष्ण, छट्ठीमें

कृष्ण और सातवींमें परम कृष्ण लेश्या होती है। नारकियोंका स्पर्श रस गंध वर्ण शब्दोंके परिणाम क्षेत्रके निमित्तसे अत्यंत अशुभ हैं। अशुभ कर्मके उदयसे उनका देह भी अत्यंत अशुभ होता है। हुंडकसंस्थानी होता है। जैसे कोई पक्षीके केश पांख उड जांय, उस सरीखी आकृतिवाला होता है। जो भी उनका शरीर वैक्रियिक है तो भी मल मूत्र कफ रुधिर राध वमन आदि सब औदारिक शरीरकी तरह हैं। पहिली पृथ्वीके तेरहवें पटलमें नारकियोंके शरीर की ऊंचाई सात धनुष तीन हाथ छह अंगुल है। फिर दूसरे नरकमें अंतके पाथडेमें १५ धनुष दो हाथ १२ अंगुल है।

तीसरेके अंतके पाथडेमें ३१। धनुषकी है।

चौथेके अंतके पाथडेमें ६२।। धनुषकी है।

पांचवेके अंतके पाथडेमें १२५ धनुषकी है।

छटवेके अंतके पाथडेमें २५० धनुषकी है। और

सातवेके अंतके पाथडेमें ५०० धनुषकी शरीरकी अवगाहना है।

इनमें अवधिज्ञानका प्रमाण प्रथम नरकका नारकी चार कोश तकके क्षेत्रके रूपी पदार्थका ज्ञान कर सकता है। आगे २ आधा आधा कोष कम होता गया तो अंत सातवें नरकके नारकीके अवधिज्ञानका प्रमाण आधा कोशका ही है।

नारकियोंके अंतरंगमें तो असाता वेदनीयका उदय और बाहरमें उष्ण शीतकी तीव्र वेदना होती है।

पहिलीसे चौथी पृथ्वी तक तो सब बिले उष्ण ही हैं। पांचवी पृथ्वीमें जो ३ लाख बिले हैं उनमेंसे सवा दो लाख बिले तो अत्यंत उष्णरूप ही हैं और पचत्तर हजार बिले अत्यंत ठंडे ही हैं, छठ्ठी सातवीं पृथ्वीके बिले अत्यंत शीत ही हैं। और भी भूख प्यास रोग आदिकी तीव्र वेदना नारकियोंके होती है। उनके क्रूर सिंह व्याघ्रादि रूप ही अशुभ विक्रिया हुआ करती है।

नारकी जीव परस्परमें दुख उत्पन्न करते रहते हैं। जैसे कुत्ता विना कारण ही जातिस्वभावसे वैर कर महा-निर्दयी होकर परस्परमें काटना, मारना, खाजाना आदि द्वारा दुःख उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार नारकी भी भव-प्रत्यय अवधिज्ञानके द्वारा मिथ्यात्वके उदयसे विभंगाव-धिज्ञानसे दुःखके कारणोंको दूरसे ही जानकर परस्पर दुःख उत्पन्न करते हैं। नारकी एक दूसरेके नजदीक होते ही देखने मात्रसे ही क्रोधाग्निसे प्रज्वलित होजाते हैं। और अपनी विक्रियाके द्वारा बनाये हुए खड्ग, भाला, छुरी, मुद्गर आदि आयुधोंके द्वारा तथा सिंह व्याघ्रादि रूप धारण कर परस्परमें छेदन भेदन ताडन मारण आदि द्वारा

दुख उत्पन्न करते रहते हैं। एवं क्रोधसे भरे वचनों द्वारा महान वर उत्पन्न कर परस्परमें लडते रहते हैं। यद्यपि उनके शरीरके परस्परमें घात करनेसे टुकडे २ होजाते हैं, इतने पर भी वे मरते नहीं हैं। वे पारदके टुकडोंकी तरहं मिल जाते हैं। आयु पूर्ण हुए विना उनका अकाल मरण नहीं होता है। आयु पर्यंत भारी दुख भोगते हैं।

संक्लेश परिणामी असुर कुमार जातिमें अंवावरीस जातिके देव भी तीसरी पृथ्वी तकके नारकियोंको दुःखकी उदीरणा कराते रहते हैं। नारकियोंमें परस्परमें कलह उत्पन्न कराते रहते हैं।

प्रश्न—नारकियोंके परस्पर कलह करानेमें देवोंको क्या प्रयोजन है?

उत्तर—जैसे इस लोकमें कोई २ मनुष्य वैल, भेंढा, भैंसा कुत्ते और मुर्गोंको लडाकर उनकी लडाईको देखकर आनंद मानते हैं, उसी तरह दुष्ट परिणामी असुरकुमारोंके परिणाम जानने चाहिये। अर्थात् वे नारकियोंको परस्परमें लडानेमें व उनकी लडाई देखनेमें आनंद मानते हैं।

प्रश्न—तो क्या नारकियोंको दुःख इतनेही प्रकारके हैं या और तरहके भी होते हैं?—

उत्तर- नारकी जीव परस्परमें और भी कई प्रकारके दुख प्राप्त करते हैं-जैसे—तपे हुए लोहेके रसका पिलाना,

अग्निसे तपे हुए लोहे के खंभोंसे आलिंगन कराना, कूट शाल्मली वृक्षपर चढाना, उतारना, लोहेके घनोंसे घात करना, वसूलोंसे छीलना, तपे तेलका सींचना, लोहेकी तपी हुई कडाहीमें पकाना, भाडमें झुलसाना, घांनीमें पेलना, शूलीपर चढाना, करोंतोंसे चीरना, अंगारोंमें लुटाना, व्याघ्र सिंह रीछ श्वान स्याल स्याली बिलाव न्योला सर्प काक गीद् उल्लू बाज इत्यादिसे बाधा कराकर, तथा तपी हुई रेतीमें विचरण, असिपत्र वनमें प्रवेशन वैतरिणी मज्जन आदि द्वारा महादुःख उत्पन्न कराते हैं। इतना होते हुए भी आयुका अंत हुए विना मरण नहीं होता है क्यों कि नारकी अनपवर्त्यायुष्क होते हैं।

प्रश्न—जब इनका आयुका अंत हुए विना मरण नहीं होता तो यह बतलाइये इनकी आयुका क्या प्रमाण है ?

उत्तर—ऊपर सागरका प्रमाण बतलाया जाचुका है। उस सागरके प्रमाणसे पहिले नरकमें नारकियोंकी आयु कमसे कम दश हजार वर्षकी, ज्यादासे ज्यादा १ एक सागरकी होती है। दूसरी पृथ्वीमें तीन सागरकी, तीसरी पृथ्वीमें सात सागरकी, चौथीमें दश सागरकी, पांचवीमें सत्तरह सागरकी, छटवीं पृथ्वीमें २२ सागरकी और सातवी पृथ्वीमें ३३ सागरकी होती है। दूसरी पृथ्वीसे सातवी

पृथ्वीतक की जघन्य आयुका प्रमाण पहिले से छटी पृथ्वी तककी उत्कृष्ट आयुही आगे २ जघन्य हो जाती है।

प्रश्न--नारकियोंके उत्पन्न होनेके विरह कालका क्या प्रमाण है?

उत्तर--पहिली पृथ्वीमें उत्कृष्ट विरह चौवीस मुहूर्त का, दूसरी में सात दिन रातका, तीसरीमें पन्द्रह दिनका चौथीमें एक माहका, पाचवीमें दो माहका, छट्टीमें चार माहका, सातवीमें छह माहका उत्पन्न होनेका विरहकाल है, जैसे पहिली पृथ्वीमें जो असंख्यात नारकी हैं उनमें नवीन नारकीका जन्म चौवीस मुहूर्तमें किसीका होवेही होवे।

प्रश्न—कौन २ जीव कौन २ से नरक तक उत्पन्न होते हैं?

उत्तर--असैनी पंचेन्द्रिय जीव जो नरकायु बांधे तो पहिली पृथ्वीमेंही जन्म लेता है, द्वितीयादिमें उत्पन्न होने योग्य कर्मका बंध नहीं करता है। सरीसृप-प्रथम द्वितीय पृथ्वीमें ही उत्पन्न होता है। भेरुंडादिक पक्षी तीसरीतकही उत्पन्न होते हैं। विषधर सांप चौथी पृथ्वीसे आगे नहीं जाता। सिंह पांचवी पृथ्वीसे आगे उत्पन्न नहीं होता। स्त्री छठी पृथ्वीतक उत्पन्न होती। और मनुष्य तथा मत्स्य

सातवीं पृथ्वीतक उत्पन्न हो सकते हैं। नारकी, देव, भोग· भूमिया, एकेन्द्रिय और विकलत्रय ये जीव मरकर नरकमें नहीं जाते ऐसा नियम है।

प्रश्न—नरकसे निकला हुवा जीव कौन २ सी पर्याय पा सकता है?

उत्तर—नरकसे निकला हुवा जीव मनुष्य तिर्यंचगति में कर्मभूमिका सैनी पंचेन्द्रिय पर्याप्त गर्भजही होता है। भोगभूमिमें तथा असंज्ञी लब्धपर्याप्तक सन्मूर्छनमें नहीं उत्पन्न होता है। नरकसे निकला हुवा जीव बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण, चक्रवर्ती इन पदोंको नहीं पाता है। तीसरी पृथ्वीतक का निकला जीव तीर्थंकर पदका धारी हो सकता है। चौथी पृथ्वीतकका निकला जीव निर्वाण गमन तक कर सकता है। पांचवीतकका निकला जीव महाव्रती हो सकता है। छट्टी पृथ्वीतकका निकला जीव संयमासंयम देशचारित्र धारण कर सकता है। सातवीं पृथ्वीका निकला जीव क्रूर तिर्यंचही होता है, मनुष्य नहीं।

प्रश्न—यदि कोई लगातार नरकमें जन्म लेवे तो कौन नरकमें कितनेवार लेसकता है?

उत्तर—कोई नरकसे निकलकर मनुष्य या तिर्यंच होकर फिर नरकही जाय, दूसरी योनियोंमें नहीं जाय, तो

लगातार पहिली पृथ्वीमें नववार, दूसरी में सातवार, तीसरी में ६ वार, चौथीमें ५ वार, पांचवीमें ४ वार, छट्टीमें तीन वार और सातवींमें दो वार तक लगातार जन्म ले सकता है इससे ज्यादा नहीं।

इस प्रकार नरक गतिका दुःख वर्णन किया।

★

तिर्यंचगतिका वर्णन—

★

मनुष्य देव नारकी इनसे भिन्न तिर्यंच कहलाते हैं। तिर्यंच जवि एकेन्द्रियसे सैनी पंचेन्द्रिय तक होते हैं। तिर्यंच पंचेन्द्रियके तीन भेद होते हैं—— (१) जलचर-जलमें चलने वाले, (२) थलचर जमीन पर चलने वाले, (३) नभचर-आकाशमें उडने वाले। जलचर जीव—जैसे मगर, मच्छ, घडियाल आदि। थलचर—जैसे हाथी, घोडा, ऊंट, वैल, गाय, रोज, रीछ, सिंह, स्याल, वराह, मेंढा, मेष, भैंस, कुत्ता, विल्ली आदि। जितने भी पृथ्वी पर चलने वाले पशु हैं वे सब। नभ-चर—जैसे चिडिया, कबूतर, कौआ, गीद, वाज, बटेर,

चमगादर, कोयल, ढींकिया, आदि । जितने भी उडनेवाले जीव हैं वे सब । इनके सिवाय पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक ये पांच प्रकारके स्थावर तथा दो इन्द्रिय लट जोंक आदिक, ते-इन्द्रिय खटमल, कीडा, मकोडा, चींटी, बिच्छू, जूं, आदिक । चौइन्द्रिय—भौंरा, वर्र, ततइया, मक्खी आदिक । और असैनी पंचेन्द्रिय—जैसे कोई २ बनैला हरा तोता और कोई २ पानीका सांप ये सब भी तिर्यंच ही कहलाते हैं ।

जो जीव पूर्व जन्ममें महान पाप करते हैं, वे मरकर तिर्यंचगतिमें जन्म लेते हैं । इस गतिके दुःखोंका पारावार नहीं है इसके दुःखका ठीक २ वर्णन सिवाय केवलीके और कोई नहीं कर सकता है । क्योंकि जो कुछ कहा जा सकता है। वह सब शब्दात्मक वचन वर्गणाके प्रयोगसे ही कहा जा सकता है । जो भी तिर्यंचोंके वचन योग्य वर्गणा तो होती हैं, परन्तु वे वर्गणाएं ऐसी शब्दात्मक नहीं परिणमतीं जिनसे वे अपने दुखोंको ठीक २ व्यक्त कर सकें। इनका आहार,-विहार महान कष्टजन्य होता है। इनके दुखों का क्या कहना है ? प्रत्यक्ष देखनेमें आता है, कि पशु पर्यायमें कैसे २ भयंकर दुःख जीवको भोगने पडते हैं।

अनादि कालसे तो निगोद में जन्म मरण धारणकर अनंत दुःख भोगता आ रहा है. किसी पुण्य कर्मके योगसे या उस तरहकी काललब्धिके निमित्तसे निगोदसे निकला तो पृथ्वी-जल, अग्नि, वायु और प्रत्येक वनस्पतिमें शरीर धारण करता आया, किसी तरह वहांसे तरक्की की और इन्द्रियकी वृद्धि होकर दोइन्द्रिय हुवा, तो लट, केंचुआ आदि की पर्याय धारणकर जन्मा, इस पर्यायके दुखभी प्रत्यक्ष देखने में आते हैं। हर एक आदमी चावलोंमें या आर किसी वस्तु में फलफूलादिमें लटको देखकर उसी वक्त उसको निकाल कर फेंक देता है, वे मनुष्यों पशुओंके पैर तलें दबकर मर जाते हैं। धूपमें सूख कर मर जाते हैं। किसी तरह त्रीन्द्रियमें जन्म लेकर चिंटी चींटा खटमल जूं आदिकी पर्याय धारण करता है, तो इन पर्यायोंमें महान दुःख भोगता है। आकस्मिक मरण भी बहुत होते रहते हैं, बहुतसे निर्दयी मनुष्य जानबूझकर इनके ऊपरसे निकलकर इनको मसल२ कर मार डालते हैं। इनका अकाल मरण ज्यादह होता है। किसी तरह चौइन्द्रिय हो जाय तो मक्खी, वर्र, ततइया, डांस, मच्छर, भौंरा आदिके शरीर धारण करता है। इस पर्यायमें भी रक्षा नहीं है, अकारण ही नाना प्रकारसे मरण होता रहता है। कभी पंचेन्द्रिय मन रहित पशु होजाता है तो मनके विना अत्यंत अज्ञानी रहनेसे नाना प्रकारके कष्ट सहता रहता है।

कभी सनी पंचेन्द्रिय हुआ और सिंह, व्याघ्र, चीता, नाहर आदि क्रूर हिंसक जानवरोंके शरीरमें जन्मा, तो उस पर्यायमें असंख्याते जीवोंको मार २ कर खाता है और पापोंका बंधन कर फिर नरक निगोदके दुख उठाया करता है। कभी आप बलहीन पैदा होजाय तो बडीही दीनता पूर्वक सबल जानवरोंके द्वारा खाया जाता है। इतनेसे ही पार पड जाय सो नहीं है। छेदन, भेदन, भूख प्यास, बोझेका ढोना, शर्दी, गर्मी, धूप, लाठी, चाबुककी मार, सांकलों रस्सियोंसे बंधना, गाडी, तांगा, बग्गी, रथमें जुतना, हलोंमें जुतना, बेलचकीका पीसना, पानीका खींचना, कोल्हूका खींचना, समय पर भोजन पानीका न मिलना आदि कहां तक कहे जांय अनगिनते कष्ट इस गतिमें भोगने पडते हैं। नभचर जीवोंका हाल सुनिये- पापी जीव तीर, कमान, बन्दूक, गिलोल लिये फिरा ही करते हैं, और जहां तहां ताक लगाये बैठे ही रहते हैं कि कब कोई हमारे चंगुलमें आकर फँसता है और हमारा कार्य सिद्ध होता है। कहां तक कहा जाय जिस पर्यायमें जन्म देनेवाली माता ही प्राणोंको लेकर और शरीरको भक्षण कर संतुष्ट होती हो, जहां एक दूसरेको खानेमें ही सुखका अनुभव करते हों उस योनिमें जन्म लेनेसे भयभीत कौन समझदार न होगा ? तिर्यंच गतिके जीव सारे लोकाकाशमें भरे हुए हैं। इनकी आयु कमसे

कम अंतर्मुहूर्त होती है और ज्यादासे ज्यादा तीन पल्यकी होती है। तिर्यञ्च गतिसे चारों गतियोंमें जन्म होता है। तिर्यञ्च गतिसे मोक्ष नहीं होता, पर अणुव्रत धारण कर देव होजाता है। फिर मनुष्यादि उच्च योनि पाकर मुक्ति तक प्राप्त कर सकता है। लोग मनुष्य जन्म पा करके भी मनुष्य जन्मके सारको नहीं समझ पाते। संसारी जीवोंके महान तीव्र मिथ्यात्व कर्मका उदय है और आगामी ऐसा विपरीत कार्य कर नरकमें जाते हैं। स्थलमें, आकाशमें, चुंगते, जाते, बैठते, चलते, सोते समय भी पापी जीव इनको शांति नहीं लेने देते। जिह्वा इन्द्रिय ही एक ऐसी लंपटता पैदा करनेवाली है कि इसकी तृप्ति करनेके लिये दुष्ट जीव इन जीवोंकी घातमें घूमा ही करते हैं, इस ख्यालसे कि कब हम इसको मारकर खाजावें।

जंगली जानवर परस्परमें एक दूसरेको मारकर खा-जाते हैं, दूसरे दुष्ट मनुष्य इनको मार २ कर खाजाते, सिंह तकके मारनेसे नहीं चूकते तो और २ जानवरोंकी बात ही क्या कहना। विचारा हिरण जो जंगलके सूखे गीले तृण खाकर अपना जीवन बिताता है, किसीसे कुछ मांगता नहीं है, न किसीको काटे, मारे, फिर भी दुष्ट लोग उसीकी ताक में फिरा करते हैं, और मारकर खाजाते हैं। इस प्रकारके

कि नहीं अनेक तरहके दुःख इनको उठाने पडते हैं। चारे जलचर जानवरोंको ही लीजिये, जलमें रहकर भी दुष्ट जीव इनके भी प्राण हरण कर लेते हैं। यहां तक देखा गया है कि इनमेंसे कितने ही जीवोंको जिन्दा ही अग्निमें डालकर भूंज डालते हैं। बडे २ बलिष्ठ जानवरोंको नद और समुद्रोंमेंसे भी जाल डाल कर खींच लेते हैं, और उन के टुकडे २ करके खाजाते हैं। इस प्रकार इस तिर्यंचगतिके दुःखोंका विचार करते हैं तो सारे शरीरमें थरथराहट खडी हो जाती है। पापी जीव तो इन मूक जीवोंको मारकर ऐसे प्रसन्न होते हैं, मानों किसी दरिद्रीके हाथ रत्नोंकी निधि लग गई हो। ऐसे पापी जीव ही घोर नरकोंमें भयंकर दुःख भोगते हैं। इसलिए ऐसे भयंकर पापोंका त्याग करना ही अच्छा है —

प्रसंगके अनुसार एकेन्द्रिय जीवोंका थोडासा और वर्णन करते हैं।

एकेन्द्रिय जीव दो प्रकारके होते हैं, (१) सूक्ष्म (२) बादर। इनके फिर भी पांच भेद होते हैं— (१) पृथ्वीकायिक सूक्ष्म-बादर, (२) जलकायिक सूक्ष्म बादर, (३) अग्निकायिक सूक्ष्म-बादर, (४) वायुकायिक सूक्ष्म-बादर। (५) वनस्पतिकायिकके दो भेद हैं–(१) सा-

धारण, [२] प्रत्येक। साधारणके दो भेद होते हैं। (१) नित्यनिगोद (२) इतरनिगोद। फिर इनके भी दो २ भेद होते हैं। सूक्ष्म नित्यनिगोद, बादर नित्यनिगोद। सूक्ष्म इतरनिगोद, बादर इतरनिगोद। प्रत्येकके दो भेद होते हैं। (१) सप्रतिष्ठित प्रत्येक, (२) अप्रतिष्ठित प्रत्येक। जिस शरीरका मालिक तो एक ही जीव हो पर उसके आश्रित अनेक जीव रहते हो, उसको सप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं। जिस शरीरका मालिक एक ही जीव हो पर उसके आश्रित कोई जीव रहता हो उसको अप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं।

प्रश्न — इन जीवोंके शरीरकी अवगाहना कितनी होती है।

उत्तर–इन वनस्पति जीवोंकी अवगाहना तो कई तरहकी होती है (१) उत्कृष्ट (२) जघन्य। उत्कृष्ट अवगाहना तो एक हजार योजनकी होती है जो कि कमलकी होती है और जघन्य अवगाहना लब्ध्यपर्याप्तक सूक्ष्म निगोदिया की होती है। जो कि अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण होती है।

प्रश्न-जो एक हजार योजन प्रमाणकी अवगाहना बतलाई है वह वनस्पति नहीं है क्या ?

उत्तर--वनस्पति शरीर अलग होता है और वनस्पति जीव शरीर अलग होता है । वनस्पति शरीरमें मूल, फल, शाक, शाखा, टहनी, पत्र, पुष्प अलग अलग होते हैं। इनका स्वामी समुदाय रूपमें एक होता, फिर इनमें अवान्तर रूपसे जीव भिन्न २ होते हैं। जैसे मूलमें, शाखामें टहनीमें, पत्रमें, पुष्पमें फलमें । सिद्धान्तमें लेख है कि मैंने फलमें जन्म लिया, मैंने पुष्पमें जन्म लिया, मैंने टहनीमें जन्म लिया, मैंने पत्रमें जन्म लिया, मैने स्कंध में जन्म लिया, मैंने मूलमें जन्म लिया ।

गोमटसारमें समुदायरूप वनस्पति शरीरकी अवगाहना कमलकी एक हजार योजनकी मानी है। वनस्पति जीव शरीर की ऊत्कृष्ट अवगाहना अंगुल के असंख्यातमें भागही बतलाई है।

प्रश्न--पांच प्रकारके स्थावरोंका आकार एकसा बतलाया है या अलग अलग ?

उत्तर—पांचों प्रकारके स्थावरोंका आकार सिद्धान्त शास्त्रमें भिन्न २ ही बतलाया गया है। इनके भेद चार बतलाये गये हैं। (१) पृथ्वी (२) पृथ्वीकाय (३) पृथ्वीकायिक और (४) पृथ्वीजीव ।

(१) पृथ्वी उसे कहते हैं जिसमें कठिनतारूप लक्षण पाया जाय, तथा जो आगे पृथ्वीरूप परिणमेंगे ऐसे पर-

माणुओंके स्कंधको पृथ्वी कहते हैं।

(२) पृथ्वीकाय–उसे कहते हैं कि जो जीव पहिले था अब छोडकर चला गया हो अब वह पृथ्वीमें नहीं है ऐसे जीवका छोडा हुआ शरीर पृथ्वीकाय कहलाता है जैसे मुरदा।

(३) पृथिवीकायिक–उसे कहते है जिसने विग्रहगतिको छोडकर अपने शरीरकी रचनाके योग्य पृथ्वीके परमाणुओंको स्पर्श कर लिया हो उसे पृथिवीकायिक कहते हैं।

(४) पृथिवीजीव–उसे कहते हैं जिसने पहिला शरीर छोड दिया है और आगे वह पृथ्वी रूप शरीर धारण करेगा। इस समय विग्रह गतिमें है, उस समय इस जीवके पृथ्वी नाम कर्मका उदय और वैसी ही आयु कर्मका उदय होता है इसलिये इसको पृथिवीजीव कहते हैं। मतलब यह है कि इस जीवने पृथ्वीरूप अपने शररिका आकार नहीं बना पाया न स्पर्शही किया। इसी तरहके चार २ भेद आगेके जलादि स्थावरोंमें भी समझना चाहिये।

आगे पृथिवी कायमें और भी विशेपता बतलाई है सो भी कहते हैं—पृथ्वीके ३६ भेद आचार्योंने बतलाये हैं (१) मृतिका (२) वालुका (३) शर्करा (४) उपल (५) शिला (६) लवण (७) लोहा (८) तांबा

(९) त्रिपुप [१०] शीसा (११) चांदी (१२) सोना (१३) हरताल [१४) हिंगुल [१५] मनशील [१६] हीरा [१७] सस्यक (१८) अंजन (१९) मूंगा (२०) जीरोलक (२१) अभ्रक [२२] गोमेद [२३] रुजक [२४] स्फटिक [२५] अंकमूंगा (२६) पद्मराग (२७) वैडूर्य [२८] चंद्रकांतमणि (२९) सूर्यकांतिमणि [३०] जलकांति [३१] गैरिक [३२] चंदनरंग [३३] वप्पक (३४) वक (३५) मोच (३६] मसारगल्व। सामान्य रूपसे तो ये नाम हैं। विशेष जानना हो तो संयमप्रकाश ग्रंथको देखना चाहिये।

एकेन्द्रिय जीवोंके दुःखका वर्णन—सवैया—

थिति निगोदमें नादि कालसे जन्म मरण अष्टादश श्वास।
भूमि नीर अरु अग्नि पवन तरु इनमें दुःख सहे बहु त्रास॥
खोदन फोडन रगडन सोखन ज्वलन पछाडन पशु नर प्यास।
जल विष तैल क्षीर घृत दीवत वृक्ष वीजना भीत विनास॥

सामान्य कथन—दोहा—

चाटन काटन भक्षणं छेदन राधन ज्वाल।
तैल छार सूखन किरण पीसन दुःख विशाल॥

विकलत्रय जीवोंका दुःख कथन—सवैया—

कफ मल मूत्र सिडक कूडा जल तैलदुग्ध अरु अग्नि समीर।
उपल ठीकरा माटी दीपक आंधी मेघ गुडागुड सीर।

भूख प्यास कर शीत उष्ण धर पादत्राण पिछाटन चीर ।
चलन हलन पीसन घिस खोदन रांधन काटन सही बहु पीर ।
सींग पूंछ खुर घोडा बैल रु गाडी वलध तले दब जाय ।
फल तरु फूल अन्न मेवाकर तथा चलितरस मोरी मांय ।
सर्प विसमरा चिडी काक अरु नभ जल थलके जीव चुगाय ।
इत्यादिक विकलत्रयके दुख जीव दया विना बहु दुख पाय ॥

जलचर जीवोंके दुःखका—सवैया—

धीवर जाल यंत्र कांटाकर जीवसहित काटें झुलसान ।
धूप सुखावन रांधन छोंकन वांट रु भूंज करे संधान ॥

थलचर जीवोंके दुःख--सवैया--

थलचर जीव क्षुधा तिरसाकर शीत उष्ण वर्षा ओलान ।
तडित शिकारी पारधीन करि सिंह व्याघ्र चीता अरु श्वान ।
मारन चीरन काटन रांधन भरता मरमस्थान विदार ।
पग अर जीभ पूंछ काटन कर तथा दंत तन चर्म उपार ॥
यंत्रजाल फांसी पिंजर अरु, रस्सी सांकल विवहरसाल ।
रोग शोक भय करके अहिनिश छिपे रहें गिर कोटर खाड ॥

नभचर जीवोंके दुःख—सवैया—

नभचर जीव वाज शिकराकर वागल घुग्घु सुना मंजार,
तथा शिकारी पारधीनकर चीरन रांधन पांख उखार ।
तथा शीत अरु उष्ण पवनकर ओला मेघ वैठ तरु डार ।
तथा अचार तेलमें तलकर वांधके थैली वेंच बजार ॥

गृहस्थके घरमें पशुओंके दुःखका वर्णन—

पशु घरेलू हाथी घोडा ऊंट बलध भैंसा खर जान ।
बधिया डाह अरु नाक फोडकर कडी जँजीर अरु रज्जू तान
शीत उष्ण वर्षा अरु बिजुली अरु ओलान सहे बंधान ।
लादन जोतन आर चांमटी लाठी चाबुक मर्मस्थान ॥
पीठ अरु कंधा नाक गलन कर जरा रोग मंजिल कर दूर ।
लवण धातु पत्थर अरु चूना ईंट बोझकर तन चक चूर ॥
पांव हाथ टूटन कर वनमें गिर खाडा दलदल जलपूर ।
वग मच्छर अरु मांखी बिच्छू काटे सुअर पंखी अरु कूर ॥

इस प्रकार इन पशुओंके सारे दुःखोंको तो भगवान सर्वज्ञदेव जो तीन लोकके मूर्तामूर्त पदार्थोंके त्रिकालवर्ती गुण पर्यायोंके यथार्थ ज्ञान करने वाले हैं, उनके सिवाय कोई नहीं जान सकता है । देखो जब पशुओंकी वृद्ध अवस्था अथवा थकावटकी अवस्था हो जाती है तब दूसरे पशु उसको टोंच नोंच चीथ चोथकर खा जाते हैं । उस समय इनको देखकर महान दयामय परिणाम हो जाते हैं । उस समय सन्तोप नहीं होता ऐसी उनकी दशा होती है । सो प्रत्यक्ष देखनेमें आती है । इस प्रकार तिर्यंचपर्यायका दुःख वर्णन किया है ।

अब देव पर्यायका वर्णन करते हैं--

जिन जीवोंने पूर्व पर्यायमें अतिशय शुभ कार्य करके पुण्य बन्ध किया है। वे जीव मध्य लोकमें तो भोग भूमि के सुख भोगकर वहांसे देवपर्याय प्राप्त कर वहां पर भोग-विलासमें ही मग्न रहते हैं। धर्म कर्म साधनका उनके उपाय ही नहीं है। कारण ये है कि देव पर्यायमें देवोंकी अवस्था सदा अविरत रूप ही रहती है।

इस प्रकारके देवोंके निकायके चार भेद माने गये हैं—

(१) भवनवासी, (२) व्यन्तर, (३) ज्योतिष्क (४) वैमानिक।

भवनवासियोंका कथन—

भवनवासी देव दस प्रकारके होते हैं। [१] असुर-कुमार [२] नागकुमार [३] विद्युत्कुमार [४] सुपर्ण-कुमार (५) अग्निकुमार [६] वातकुमार (७) स्तनित-कुमार [८] उदधिकुमार (९) द्वीपकुमार [१०] दिक्कुमार। पहिले वर्णन आ चुका है कि भवनवासी देवोंके रहनेका ठिकाना रत्न प्रभा नामकी पहिली पृथ्वी है इनका निवास रत्न प्रभा पृथ्वीके जो तीन भाग हैं उनमेंसे पहिले दूसरे भागमें भवनवासी और व्यन्तर देव रहते हैं। अब उनकी आयुका वर्णन करते हैं—

असुरकुमारोंकी उत्कृष्ट आयु एक सागरकी होती है।

नागकुमारोंकी उत्कृष्टायु तीन पल्यकी।

सुपर्णकुमारों ढाई पल्यकी।

द्वीपकुमारोंकी दो पल्यकी।

बाकीके देवोंकी आयु डेढ २ पल्यकी है।

इन देवोंके भवन हैं सो संख्यात व असंख्यात योजनके होते हैं।

६४००००० लाख भवन असुरकुमारोंके हैं।

८४००००० नागकुमारोंके।

७२००००० सुपर्णकुमारोंके।

९६००००० वातकुमारोंके।

४५६००००० द्वीपादिक छह प्रकारके देवोंके भवन हैं प्रत्येक कुमार के भवन ७६००००० जोडने से ७७२००००० इन देवोंके आवासस्थान है। इनमें भगवान के इतनेही श्रीजिन चैत्यालय है।

असुरकुमारोंके शरीरकी ऊंचाई २५ धनुषकी है। बाकीके नवप्रकारके देवोंके शरीरकी ऊंचाई १० धनुषकी है। इस प्रकार इन भवनवासी देवोंके दश भेद हैं। इनमें एक २ निकाय (भेद) में दो दो इन्द्र और इतनेही प्रत्येन्द्र होते हैं, इस तरह से २० इन्द्र और इतनेही प्रत्येन्द्र होते हैं।

अब इन बीसों इन्द्रोंके नाम बतलाते हैं—

★

(१) असुरकुमारोंमें (१) चमर [२] वैरोचन। [२] नागकुमारोंमें (१) भूतनाथ (२) धरणेन्द्र (३) सुपर्णकुमारोंमें (१) वेणु (२) वेणुधर। (४) द्वीपकुमारों में (१) पूर्ण (२) विशिष्ठ। (५) उदधिकुमारोंमें (१) जलप्रभ (२) जलकांत। (६) विद्युत्कुमारोंमें [१] घोष [२] महाघोष (७) स्तनितकुमारोंमें (१) हरिषेण (२) हरिकांत (८) दिक्कुमारोंमें (१) अमितगति (२) अमितवाहन (९) अग्निकुमारोंमें (१) अग्निशिखि अग्निवाहन [१०] वातकुमारोंमें [१] वैलम्ब (२) प्रभंजन। ये मूल निकायोंके इन्द्र हैं। इसी तरह इनके प्रतीन्द्र भी २० होते हैं। इनमें औरभी हरएक में दश २ भेद होते हैं [१] इन्द्र (२) सामानिक (३) त्रायस्त्रिंश, [४] पारिषत्क [५] आत्मरक्षक (६) लोकपाल [७] अनीक। (८) प्रकीर्णक (९) आभियोग्य (१०) किल्विषक।

१ (इन्द्र) राज्यमें जैसे राजा होता है।

२ [सामनिक] राजा कैसे समान स्थानवाले, जैसे राजाके काका वगैरह होते है।

३ त्रायस्त्रिंश–इन्द्र के पुत्र के समान सभाके तेतीस मेम्बर।
४ पारिषत्क– इन्द्रकी सभामें बैठनेलायक जैसे दरबारी मेम्बर।

५ आत्मरक्ष—राजाके अंगरक्षक जैसे होते हैं उसी तरह इन्द्रके अंगरक्षक देव।

६ लोकपाल—राज्य के शहरोंके कोतवाल जैसे होते हैं उस तरहके देव।

७ अनीक राजाके सैनकोंकी तरह जैसे राज्य की रक्षाके लिये सेना होती है उसी तरहके देव।

८ प्रकीर्णक—जैसे राज्यमें या राजधानीमें पुरवासी रहते है उस तरह वसनेवाले देव।

९ आभियोग्य— राजाके म्यानेको वहन करनेवाले बोहियोंकी तरहके देव।

१० किल्विष्क—शहरकी सफाई रखनेवालों जैसे देव।

इन्द्रके सामानिक व अंगरक्षकोंकी संख्या—

चमरेन्द्रके	सामानिक देव	अंगरक्षक देव
	६४०००	२५६०००
वैरोचनेन्द्र	६००००	२२४०००
भूतनाथेन्द्र	५६०००	२२४०००
बाकी १७ इन्द्रोंके	५००००	२००००

इन्द्रके परिषद सभाके देव वा देवियोंकी संख्या—

सभा		देवोंकी संख्या	देवियोंकी संख्या
चमरेन्द्र	उत्तम	२८०००	२५०
	मध्यम	३००००	२००
	जघन्य	३२०००	१५०
वैरोचन	उत्तम	२६०००	३००
	मध्यम	२८०००	२५०
	जघन्य	३००००	२००
भूतानंद	उतम	६०००	२००
	मध्यम	८०००	१६०
	जघन्य	१००००	१४०
शेष इन्द्रोंके	उत्तम	४०००	१२०
	मध्यम	६०००	१००
	जघन्य	८०००	८०

★

अब सेनाका प्रकरण कहते हैं—

सैना ७ प्रकारकी होती है- १. भैंसा २. घोडा ३. रथ ४. हाथी ५. पयादे ६. गंधर्व ७. नर्तकी।

असुरकुमारेन्द्र चमरेन्द्र—की सेनामें प्रथम सेनामें जो गिनती है उससे दूसरीमें और दूसरीसे तीसरीमें तीसरीसे चौथीमें इसी तरह सातवींतक दूनी२ संख्या है। छह सेनामें तो देवही हैं सातवीं सेनामें केवल देवांगनाएं ही है।

प्रथम सेना भैंसोंकी होती है,उसकी गिनती ६४००० तो भैंसे १२८००० घोडे २५६००० रथ ५१२००० हाथी इस प्रकार दूनी २ सातों सेनाओंकी संख्या समझनी चाहिये। प्रथम सेनाकी सब कक्षाओंमें ८१२८००० सेना है तो आगेकी सेनाओं में वर्गाकार दूनीसे दूनी त्रिराशी किये कितनी होवै १०३२२५६००० होती है इनका खुलासा इस प्रकार है-

असुरकुमार देवोंके इन्द्र चमरेन्द्रकी फौज इस तरह है कि—१-फौजमें सात कक्षाएं हैं और उसके इस तरहकी सात फौजें हैं। पहिली फौजमें जितने वाहनादि हैं उससे दूसरीमें दूने हैं उससे दूने तीसरीमें उससे दूने चौथीमें इस तरह सातवींतक दूने २ जानना चाहिये।

कक्षा नं.	भैंसे १	घोडा २	रथ ३	हाथी ४	पयादा ५	गन्धर्व ६	नर्तकी ७
१	६४०००	१२८०००	२५६०००	५१२०००	१०२४०००	२०४८०००	४०९६०००
२	१२८०००	२५६०००	५१२०००	१०२४०००	२०४८०००	४०९६०००	८१९२०००
३	२५६०००	५१२०००	१०२४०००	२०४८०००	४०९६०००	८१९२०००	१६३८४०००
४	५१२०००	१०२४०००	२०४८०००	४०९६०००	८१९२०००	१६३८४०००	३२७६८०००
५	१०२४०००	२०४८०००	४०९६०००	८१९२०००	१६३८४०००	३२७६८०००	६५५३६०००
६	२०४८०००	४०९६०००	८१९२०००	१६३८४०००	३२७६८०००	६५५३६०००	१३१०७२०००
७	४०९६०००	८१९२०००	१६३८४०००	३२७६८०००	६५५३६०००	१३१०७२०००	२६२१४४०००
८	८१२८०००	१६२५६०००	३२५१२०००	६५०२४०००	१३००४८०००	२६००९६०००	५२०१९२०००

असुरकुमारोंको छोडकर बाकीके देवोंकी अर्थात् नाग-कुमार आदिकोंकी अनीक (सेना) इस प्रकार हैं (१) नाव (२) सर्प (३) गरुड (४) हाथी (५) मांछला (६) ऊंट (७) सूर (८) सिंह (९) पालकी (१०) घोडा। इस तरह की भी सेना मानी है। कुल अनीक जो सात प्रकारकी कही है उसकी संख्यामेंही इनकी संख्या होगी।

अब देवांगनाओंका वर्णन करते हैं-

असुरकुमारोंके इन्द्र चमरेन्द्रकी सामान्य देवी ४०००० वल्लभादेवी १५९९५ और देवियोंमें महादेवियां ५, कुल ५६००० हैं। जिनमें देवियोंका परिवार ३९९९५ है।

(२) नागकुमार इन्द्रोंकी देवियां ५००००
(३) सुपर्णकुमारके इन्द्रोंकी देवियां ४४०००
(४) द्वीपकुमारादि विषैं ३२०००

इनमें जो महादेवियां मानी हैं यदि एक देवी विक्रिया करे तो आठ हजार दूसरी देवियां बना सकती है।

सेनाके महत्तर देवोंकी देवांगनाएं आधे रूपमें, और अंगरक्षकोंकी १००, अनीक देवोंकी ५० देवांगनाएं होती है। इनके सिवाय संपूर्ण निकृष्ट देवोंकी देवांगनाएं ३२ से कम नहीं होती।

देव पर्यायमें देवोंके ८ प्रकारकी ऋद्धियां होती है जैसे- [१) अणिमा (२) महिमा (३) लघिमा (४) गरिमा [५) प्राप्ति (६) प्राकाम्य (७) ईशत्व (८) वशित्व।

असुरकुमार देवोंके शरीरकी ऊंचाई २५ धनुषकी होती है। बाकी नव प्रकारके कुमार देवोंके शरीरकी ऊंचाई १० धनुषकी होती है।

भवनवासियोंके दश कुल होते है। एक २ कुलमें दो दो इन्द्र होते हैं। और उन एक २ इन्द्रोंका एक २ प्रतीन्द्र होता है। इसलिये इस निकायमें २० तो इन्द्र और इतनेही प्रतीन्द्र होते हैं। सौ इन्द्रोंमें ४० इन्द्रोंकी गिनती इनकी होती है। कहा भी है कि भवणालय चालीसा-अर्थात् भवनवासियोंके ४० इन्द्र होते हैं।

इस तरह भवनवासियोंका वर्णन पूर्ण किया।

द्वितीय निकायके व्यंतर देवोंका वर्णन -

यह देव जो व्यंतर कहलाते हैं, रत्नप्रभा पृथ्वीके खरभागकी १४ पृथिवियोंमें रहते हैं। इसका कथन ऊपर भवनवासियोंके कथनमें कर आये हैं। इससे वहांसे समझ लेना चाहिये।

व्यन्तर देवोंके निकायके आठ भेद होते है (१) किन्नर (२) किंपुरुष (३) महोरग (४) गंधर्व (५) यक्ष

(६) राक्षस (७) भूत (८) पिशाच । इनके सिवाय औरभी अवान्तर भेद होते हैं। उन अवान्तर भेदोंका वर्णन इस तरह समझना चाहिये—

(१) किन्नरोंके अवान्तर भेद दश प्रकारके हैं १ किन्नर २ किंपुरुष ३ हृदयंगम ४ रूपमाली ५ किन्नरकिन्नर ६ अनिंदित ७ मनोरम ८ किन्नरोत्तम ९ रतिप्रभ १० ज्येष्ठ ।

(२) किंपुरुषदेवके भी अवान्तर भेद दश प्रकारके होते हैं—१ पुरुष २ पुरुषोत्तम ३ सत्पुरुष ४ महापुरुष ५ पुरुषप्रिय ६ अतिपुरुष ७ मरु ८ मरुदेव ९ मरुप्रभ १० यशस्वान ।

(३) महोरगकेभी अवान्तर भेद दश प्रकारके होते हैं— १ भुजंग २ भुजंगशाली ३ महाकाय ४ अतिकाय ५ स्कंधशालि ६ मनोहर ७ असजव ८ महाश्चर्य ९ गंभीर १० प्रियदर्शी ।

(४) गंधर्वोंके अवान्तर भेद १० होते हैं—१ हाहा २ हूहू ३ नारद ४ तुंबुर ५ कदंब ६ वासव ७ महास्वर ८ गीतरति ९ गीतयश १० दैवत ।

[५] यक्षकुल के १२ भेद होते हैं—१ माणिभद्र २ पूर्णभद्र ३ शैलभद्र ४ मनोभद्र ५ भद्रक ६ सुभद्र ७ सर्वभद्र ८ मानुष ९ धनपाल १० सरूपयक्ष ११ यक्षोत्तम

१२ मनोहर।

[६] राक्षसकुलके ७ भेद हैं— १ भीम २ महाभीम ३ विघ्नविनायक ४ उदक ५ राक्षस ६ राक्षसराक्षस ७ ब्रह्मराक्षस।

[७] भूतकुलके ७ भेद होते हैं— १ सरूप २ पतिरूप भूतोत्तम ४ प्रातिभूत ५ प्रतिछिन्न ६ महाभूत ७ आकाशभूत।

[८] पिशाचके १४ भेद होते हैं—१ कूष्मांड २ रक्षा ३ यक्ष ४ संमोह ५ तारक ६ अशुचि ७ काल ८ महाकाल ९ शुचि १० सतालक ११ देह १२ महादेह १३ तूष्णीक १४ प्रवचन।

इनकी निकायमें कुल ८० भेद हैं। इनके भी प्रत्येक निकायमें दो दो इन्द्र होते हैं। और एक २ इन्द्रका एक२ प्रतीन्द्र होता है। हर एक इन्द्र व प्रतीन्द्रकी ४-४ वल्लभिका रानियां होती हैं।

इन देवोंका वर्ण - किन्नरोंका हरितवर्ण होता है। किंपुरुषोंका धवलवर्ण, महोरगोंका श्याम वर्ण, गंधर्वोंका हेमवर्ण, यक्षोंका श्यामवर्ण एवं राक्षस भूत और पिशाच इनका भी श्याम ही वर्ण होता है। इनके जिनप्रतिमा सहित आठ प्रकारके चैत्यवृक्ष होते हैं जो मानस्थंभादिक सहित हैं। इन निकायोंमें होनेवाले इन्द्रोंके नाम -

किन्नरोंके दो इन्द्र--१ किन्नर, २ किंपुरुष । किंपुरुषोंके दो इन्द्र—१ सत्पुरुष, २ महापुरुष (३) महोरगोंके दो इन्द्र- १ अतिकाय, २ महाकाय । (४) गंधर्वोंके दो इन्द्र—१गीत- रति, २ गीतयश । [५] यक्षोंके—१ पूर्णभद्र, २ मणिभद्र । [६] राक्षसोंके- १ भीम, २ महाभीम । [७] भूतोंके- १ प्रतिरूप, अप्रतिरूप । [८]पिशाचोंके- १काल,२महाकाल।

एक २ इन्द्रके चार २ हजार सामानिक देव होते हैं । चार पट्टदेवी होती हैं । सोलह हजार अङ्गरक्षक होते हैं । तीन सभा हैं—अभ्यंतर सभामें ८०० देव होते हैं, मध्यमें १००० देव और वाह्य सभामें १२०० देव होते हैं ।

एक २ इन्द्रकी सात सात प्रकारकी सेनाएं हैं १हाथी २ घोडा, ३ पयादा, ४ रथ, ५ गंधर्व, ६ नृत्यकारिणी ७ वृषभ ।

एक २ में सात २ कक्षा हैं । पहिली कक्षा अट्ठाईश हजारकी, फिर दूनी दूनी , सातवीं कक्षामें हाथी १७९२००० हैं सातोंके मिलकर पैतीस लाख छप्पन हजार हाथी होते है ।ऐसेही प्रमाण से घोडा, प्यादा, रथादिककी सेना जाननी चाहिये ।

इनकी सेनाका वर्णन आगेके नक्शेसे समझना चाहिये :—

कक्षा नं.	हाथी १	घोड़ा २	पयादा ३	रथ ४	गन्धर्व ५	नर्तकी ६	वृषभ ७
१	२८०००	५६०००	११२०००	२२४०००	४४८०००	८९६०००	१७९२०००
२	५६०००	११२०००	२२४०००	४४८०००	८९६०००	१७९२०००	३५८४०००
३	११२०००	२२४०००	४४८०००	८९६०००	१७९२०००	३५८४०००	७१६८०००
४	२२४०००	४४८०००	८९६०००	१७९२०००	३५८४०००	७१६८०००	१४३३६०००
५	४४८०००	८९६०००	१७९२०००	३५८४०००	७१६८०००	१४३३६०००	२८६७२०००
६	८९६०००	१७९२०००	३५८४०००	७१६८०००	१४३३६०००	२८६७२०००	५७३४४०००
७	१७९२०००	३५८४०००	७१६८०००	१४३३६०००	२८६७२०००	५७३४४०००	११४६८८०००
८	३५५६०००	७११२०००	१४२२४०००	२८४४८०००	५६८९६०००	११३७९२०००	२२७५८४०००

इस प्रकार सारी सेनाका समूह ४५१६१२००० होता है। इन सेनाओंके मुख्य सेनापतियोंके नाम १ सुज्येष्ठा २ सुग्रीव ३ विमल ४ मरुदेव ५ श्रीदामा ६ दामश्री ७ विशाल।

इन इन्द्रोंके नगर—इन्हीं द्वीपोंमें माने गये हैं-पहिला नगर अंजनक २ वज्रधातुक ३ सुवर्ण ४ मनः सिलका, ५ वज्र ६ रजत ७ हिंगलुक ८ हरिताल। इन आठों द्वीपों तथा इस जंबूद्वीपसे तिर्यक् दक्षिण दिशामें असंख्यात द्वीप समुद्रोंको उलंघकर पहिली पृथिवीके खर भागमें किन्नरेन्द्रके असंख्यात हजार भवन हैं। ऐसेही उत्तर दिशामें किंपुरुष इन्द्रके विभव परिवार हैं। इसी प्रकार सत्पुरुष, गीत, रतिपूर्ण, भद्रस्वरूप, काल नामभद्रका दक्षिण भागमें आवास है। उसी तरह महापुरुष, महाकाय, गीतयश, मणिभद्र, अप्रतिरूप, महाकाल ये उत्तरके अधिपति इनका उत्तरमें निवास है। तथा पंकभागके दक्षिण दिशामें राक्षसोंके इन्द्र भीमके असंख्यात नगर हैं। उत्तर दिशामें महाभीम नामके राक्षसेन्द्रके असंख्यात नगर हैं। इन व्यन्तरोंके नगर अनेक तो पृथ्वीके ऊपर और अनेक द्वीपोंमें हैं। जम्बूद्वीपके बराबरके हैं। अनेक वन, उपवन, महल, मंदिर, दरवाजे, कोट, परकोटों सहित अनेक प्रकारकी रचना सहित हैं। व्यंतरोंका आवास

पृथ्वीपर द्वीप, पर्वत, समुद्र, देश, ग्राम, नगर, चोहटा, गृहांगण, रास्ता, गली, जलके घाट, बाग, वन देवकुलादिकोंमें असंख्यात हैं, जहां वे विचरते रहते हैं। इन व्यंतरदेवोंकी जघन्य आयु १०००० वर्षकी २०००० की ३००००, ४००००, ५००००, ६००००, ७००००, ८००००, ८४००० वर्षकी होती है। उत्कृष्टायु– पल्यका आठवां भाग, चौथा भाग व आधे पल्यकी होती है।

व्यन्तरदेवोंके भवनोंके नाम तीन प्रकारके हैं– [१] भवनपुर [२] आवास [३] भवन।

जो द्वीप समुद्रोंमें हैं उनके नाम भवनपुर हैं।

द्रह पर्वतके ऊपरवालोंके नाम आवास हैं।

चित्रापृथ्वीमें नीचेवालोंको भवन कहते हैं।

सब प्रकारके देवोंके (१) प्रकीर्णक (२) आभियोग्य और किल्विष्क देव असंख्यात प्रमाण हैं।

इस प्रकार दूसरी निकायका वर्णन संक्षेपमें कहा।

तीसरी निकायके ज्योतिषी देवोंका वर्णन—

ज्योतिःस्वभाववाले, उस २ नामकर्मके उदयसे होने वाले, सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णकतारे ये जोतिष्क कहलाते हैं। ये ज्योतिष्क चक्र लोकके अंत वातवलय तक फैले हुए हैं ज्योतिषी देवोंके बिना कोई द्वीप समुद्र खाली नहीं हैं।

जंबूद्वीपसे लगाकर स्वयंभू रमणसमुद्रतक गोलाकार द्वीपको समुद्र और समुद्रको द्वीप घेरे हुए हैं। जंबूद्वीप सब द्वीपोंके बीचमें है। इसका जो विस्तार है उससे द्विगुण विस्तारवाला प्रथम समुद्र है, उससे दूना विस्तारवाला दूसरा द्वीप है, उससे दूना विस्तारवाला दूसरा समुद्र है, समुद्रसे दुना विस्तारवाला तीसरा द्वीप है इस तरह स्वयं रमणद्वीप व समुद्रपर्यंत दूने २ विस्तारसहित असंख्याते द्वीप और समुद्र हैं। जंबूद्वीपको लवणोदधि समुद्र वेढे हुए है, लवणोदधिको धातकीखंड द्वीप वेढे हुए है, धातकी द्वीपको कालोदधि समुद्र, और कालोदधि समुद्रको आगेका द्वीप वेढे हुए है, इसी तरह स्वयंरमण पर्यंत एक दूसरेको वेढे हुए हैं। जंबूद्वीप सूर्यमंडलके आकार है, उसके बीचोंबीच शरीरमें नाभिकी तरह मेरु पर्वत है, जंबूद्वीप एक लाख योजन प्रमाण चौडा है, और तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताइस योजन तीन कोस एक सौ अट्ठाइस धनुष साडा तेरह अंगुल कुछ अधिक प्रमाण परिधि है।

इस जंबूद्वीपके चौगिरद आठ योजन ऊंची आधी योजनकी नीववाली वेदी है। सो नीचे १२ योजन, मध्यमें आठ योजन, ऊपर चार योजन चौडी है। जंबूद्वीप जंबूवृक्ष सहित है। उत्तरकुरु भोगभूमिके ईशान कोनमें

अनादि निधन पृथ्वीकायरूप अकृत्रिम परिवारके वृक्षों सहित जंबूवृक्ष है।

उसी तरह देवकुरु भोगभूमिके नैऋत कोनमें शाल्मली वृक्ष है। इस जंबूद्वीपमें ६ कुलाचल पर्वत हैं, जिनके नाम हिमवत्, महाहिमवत्, निषिध, नील, रुक्मि और शिखरिणी हैं। ये पर्वत पूर्वसे पश्चिमतक लंबे हैं। इनसे जंबूद्वीपमें सात क्षेत्र विभक्त हैं। उनके नाम-भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत व ऐरावत हैं। इनमेंसे हिमवत पर्वतके और पूर्व दक्षिण पश्चिम इन तीन तरफ समुद्रके मध्य भरतक्षेत्र है। उस भरतक्षेत्रके मध्यमें पूर्व पश्चिम लंबा विजयार्ध पर्वत है जो पच्चीस योजन ऊंचा, पचास योजन चौडा, सवा छै योजन नींववाला है। सफेद उसका वर्ण है। अपनी कोटिसे पूर्व पश्चिम समुद्रको स्पर्श करता है इसलिये समुद्रपर्यंत लम्बा है। इस पर्वतकी भूमिसे १० योजन ऊंचे जानेपर दश योजन चौडी पर्वत समान लंबी दो श्रेणी हैं, जिनमें विद्याधर वसते हैं। उनमेंसे दक्षिण श्रेणीमें तो रथनुपूर आदि पचास नगरी हैं, और उत्तर श्रेणीमें चक्रवालादि साठ नगरी हैं। उन नगरियोंमें प्रज्ञप्त्यादिक विद्याके धारनेवाले विद्याधर वसते हैं। वहांसे दश योजन ऊंचा जानेपर दश दश योजन चौडी, पर्वतसमान लंबी, दो श्रेणी हैं उनमें

व्यंतर देव रहते हैं। फिर पांच योजन ऊपर जानेपर पर्वतकी शिखरतल है। इससे और गंगा सिंधु आदि नदियों के निकलनेसे भरतक्षेत्रके ६ भाग हो जाते हैं। विजयार्धके उत्तरमें तीन खण्ड हैं और दाक्षिणमें ३ खण्ड हैं। दाक्षिणके तीन खण्डोंके मध्यमें आर्य खण्ड है। बाकीके ५ खण्ड म्लेच्छ खण्ड हैं। विजयार्धके उत्तरके मध्यखण्डके मध्य प्रदेशमें एक वृषभाचल पर्वत है वह सौ योजन ऊंचा गोला कार है। इसके ऊपर चक्रवर्ती अपना नाम लिखते हैं। इस प्रकार छह खण्ड रूप भरतक्षेत्र है।

भरतक्षेत्रका विस्तार ५२६ योजन और एक योजनके १९ भागोंमें से ६ भाग प्रमाण है। भरत और ऐरावत क्षेत्रों में उत्सार्पिणी और अवसर्पिणीके सुषमासुषमा सुषमा, सुषमादुखमा, दुखमासुषमा, दुखमा, और दुखमा-दुखमा नामके छह कालोंमें मनुष्योंके अनुभव, आयु, शरी-रोत्सेध, आहार आदिकी वृद्धि और ह्रास (कमतीपन) होता रहता है।

जहां अनुभवादिकी बढती होती है उसको उत्सार्पिणी कहते हैं। जिस कालमें अनुभवादिक घटते हैं उसको अव-सर्पिणी कहते हैं। दोनों काल दश कोडाकोडी सागरके होते हैं।

उनमें पहिला काल चार कोडाकोडी सागर प्रमाण होता है। दूसरा सुषमा काल ३ कोडाकोडी सागरका होता है। तीसरा सुखमदुखम २ कोडाकोडी सागर प्रमाणका होता है। चौथा दुष्पम सुषमा नामका काल १ कोडाकोडी सागर प्रमाणमें ४२ हजार वर्ष कमका होता है पांचवां दुषमाकाल २१ हजार वर्षका और इतना ही छट्ठा काल होता है।

प्रथम कालके मनुष्य उत्तरकुरुके मनुष्योंके तुल्य होते हैं, इस कालमें उत्तमभोगभूमि कैसी रचना होती है। दूसरे कालके मनुष्य हरिवर्ष क्षेत्रके मनुष्योंके तुल्य होते हैं, इस कालमें मध्यमभोगभूमिसरीखी रचना होती है। तीसरे कालमें मनुष्य जघन्य भोगभूमिकी तरह हेमवतक्षेत्रके मनुष्योंके तुल्य होते हैं। चौथे कालमें मनुष्य विदेहक्षेत्रके मनुष्योंके तुल्य होते हैं।

प्रथम कालकी आदिमें मनुष्योंकी आयु तीन पल्य की और अखीर में २ पल्यकी होती है। दूसरे कालकी आदिमें मनुष्योंकी आयु दो पल्यकी और अखीरमें १ पल्यकी होती है। तीसरे कालकी आदिमें १ पल्यकी अखीरमें एक कोडा कोडी पूर्वकी होती है। चतुर्थ काल की आदिमें १ कोडा कोडी पूर्वकी और अखीरमें १२० वर्षकी होती है। पञ्चम कालकी आदिमें १२० वर्षकी

और अखीरमें २० वर्षकी होती है। छट्टे कालकी आदिमें २० वर्षकी और अखीरमें १५ वर्षकी होती हैं।

मनुष्योंके शरीरकी उंचाई प्रथमकालके आदिमें ३कोसकी अखीरमें २ कोसकी होती है। दूसरे कालकी आदिमें २कोसकी अखीरमें १ कोसकी होती है। तीसरे कालकी आदिमें १ कोसकी और अखीरमें पांच सौ धनुषकी होती है। चतुर्थ कालकी आदिमें ५ सौ धनुषकी अखीरमें ७ हाथकी होती है। पंचम कालके शुरुमें ७ सात की और अखीर में दो हाथकी उंचाई होती है। छट्टे कालकी आदिमें २ हाथकी अखीरमें १ हाथकी होती है।

पहिले कालमें मनुष्योंके शरीरका रंग उगते हुए सूर्य के समान होता है।

दूसरे कालमें पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान, तीसरे कालमें हरित श्यामवर्ण, चतुर्थ कालमें पांचों वर्णवाला, पंचम कालमें कांतिहीन मिश्रवर्ण। और छट्टे कालमें धुएं की तरह श्यामवर्ण होता है। इस तरह छहो कालमें होने वाले मनुष्योंके शरीरका वर्ण कहा।

अब इनका आहार करना बतलाते हैं—

पहिले कालमें तीन दिन बीतने बाद चौथे दिन बदरी फल (बेर) के बराबर आहार ग्रहण करते हैं। दूसरे कालमें

दो दिन वीतने बाद बहेडा प्रमाण आहार ग्रहण करते हैं। तीसरे कालमें एक दिन बीतने बाद आंवला प्रमाण आहार ग्रहण करते हैं।

चतुर्थ कालमें रोजीना एक बार भोजन करते हैं। पंचम कालमें बहुत बार और छट्टे कालमें अतिप्रचुर वृत्तिसे भोजन करते हैं। इस प्रकार मनुष्योंका छह काल में आहारका क्रम बतलाया है।

तीसरे काल तक इस भरतक्षेत्रमें भोगभूमिकी रचना रहती है। और चौथे, पांचवें तथा छट्टे कालमें कर्मभूमि की रचना रहती है। अवसर्पिणीके पंचमकालके तीन वर्ष साढे आठ माह अवशेष रहने पर कल्कीके निमित्तसे प्रभात कालमें धर्मका नाश होवेगा,मध्यान्हमें राजाका नाश होवेगा और सायंकालमें अग्निका नाश होवेगा उसके पीछें छट्टे कालमें मनुष्य नग्न रहेंगे। मत्स्यादिका आहार करेंगे क्योंकि पुद्गलोंमें रूखापन हो जानेसे तो अग्निका नाश हो जावेगा, और मुनि श्रावकके अभावसे धर्मका नाश हो जायगा तथा असुरपतिके क्रोधसे राजाका नाश हो जायगा इस प्रकार पंचमकालका स्वरूप कहा।

छट्टा काल जो २१ हजार वर्षका होता है उसमें नरक तिर्यंच गतिके आयेही जीव उत्पन्न होते हैं और आयु पूर्णकर नरक तिर्यंच गतिमें ही जन्म लेते हैं। इसी छट्टे

कालमें मनुष्य मत्स्यादिका आहार करेंगे और नग्न रहेंगे इस कालके अंतमें आर्य खंडमें संवर्तक नामकी हवा बहेगी, सो वह पवन पर्वत, वृक्ष, भूमि आदिको चूर्ण करती हुई दिशाके अंत तक आर्यखंडमें बहेगी। उस पवनसे आर्यखंडके जीव मरणको प्राप्त होंगे। कितने ही जीव विजयार्ध पर्वतकी व गंगासिंधु नदीकी वेदीके निकटवर्ती मनुष्य तिर्यंच जीव विजयार्धके व गंगासिंधु की वेदीके क्षुद्र बिलोंमें प्रवेश करेंगे। कितने ही देव विद्याधर दयावान होकर मनुष्योंके युगल आदि बहुतसे जीवोंको विल गुफादिमें लेजाकर रक्खेंगे।

इस प्रकार छट्टे कालके अंतमें सात २ दिनोंतक वायु अति शीतल, क्षार, विप, कठोर, अग्नि, रज, धूम इनकी ४९ दिन पर्यंत वर्षा होगी। उस समय उन वर्षाओंसे तो बाकीके बचे हुए जन नष्ट होंगे। विप अग्निकी वर्षासे पृथ्वीका एक योजन भाग कालके प्रभावसे नीचे २ चूर्ण हो जायगा। इसीको प्रलयकाल कहते हैं। इसके बाद उत्सर्पिणी कालका प्रवेश होयगा। उसके पहिले कालके प्रारंभमें मेघकी वर्षा होगी। फिर सात २ दिनोंतक जल दूध घृत अमृत रसोंकी वर्षा होगी उन वर्षाओंके होनेसे जमीन गर्मीको छोडकर सचिक्कणता वा कांतिमानता धारण करेगी। उससे लताएं वृक्ष औषधादि प्रकट होने

लगेंगी। जिससे जो जीव नदीके तीरोंमें वा गुफादिमें प्रवेश कर गये थे वे भूमिके शीतल और सुगंध गुणसे खिचकर निकलेंगे और भूमिपर विचरेंगे। वे नग्न रहेंगे, मिट्टीका आहार करेंगे। इस प्रकार उत्सर्पिणीका प्रथम काल २१ हजार वर्षका बीत जानेपर दुखमा नामका दूसरा काल भी २१ हजार वर्ष पर्यंत प्रवर्तेगा। उस द्वितीय कालका जब १ हजार वर्ष बाकी रहेगा तब १६ कुलकर होंगे। वे कुलकर कुलका आचार अग्निसे अन्नादिक पकाना इत्यादि क्रियाएं प्रकट करेंगे। बादमें ब्यालीश हजार वर्ष कम एक कोडाकोडी सागर का तीसरा काल प्रवर्तेगा। उसमें तीर्थंकरादि त्रेसठ शलाकाके पुरुष होंगे। उत्सर्पिणीके चौथे कालमें जघन्य भोगभूमि पांचवेमें मध्यम और छटवेमें उत्तम भोगभूमि प्रवर्तेगी ऐसे उत्सर्पिणीके छह काल बीतने पर फिर अवसर्पिणीके पहिले, दूजे और तीसरे कालमें भोगभूमि तथा चौथे पांचवे और छट्टे कालमें कर्मभुमि तथा छट्टेमें ही प्रलय इस प्रकार कालोंकी कृष्ण शुक्लपक्षकी तरह निरंतर प्रवृत्ति रहेगी।

इस प्रकार संक्षेपमें भरत क्षेत्रका वर्णन किया। भरत क्षेत्रसे आगे विदेह क्षेत्रतक विस्तार दूना २ है। विदेह क्षेत्रके आगेके क्षेत्रोंकी रचना दक्षिणके क्षेत्रोंके समानही

जननी चाहिये। प्रकरण पाकर कुछ विदेह क्षेत्रका वर्णन करते हैं—

निषिध और नील कुलाचलके बीचमें विदेह क्षेत्र है जिसमें योगीश्वर आत्म ध्यानकर देह रहित होते हैं। इसीसे इसका विदेह ऐसा सार्थक नाम है। इस क्षेत्रमें हमेशाही मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति रहती है। विदेह क्षेत्रके विशेष ज्ञान करनेके लिये क्षेत्रादिका विभागादि बतलाते हैं—

ऐसा जानना चाहिये कि सुदर्शन मेरु भद्रशाल वनके मध्य भागमें है। भद्रसाल वन पूर्वसे पश्चिमतक ५२ हजार योजन लंबा है। उसके बीच दश हजार योजन चौडा गोल सुदर्शन मेरु है। उसके पूर्व और पश्चिम दिशामें बाईश २ हजार योजनका चौडा भद्रशाल वन है। उसकी पूर्व दिशामें पूर्व विदेह और पश्चिम दिशामें पश्चिम विदेह है। पूर्व विदेहके बीचमेंसे बहती हुई सीता नदी पूर्व समुद्रको जाती है। जिससे सीताके उत्तर दक्षिण रूप पूर्व विदेहमें दो हिस्से होगये। उन दोनों दिशाओंमें रचना समान है। इतना ही विशेष जानना चाहिये कि दक्षिणके विदेहोंके अंतमें निषिधनामा कुलाचल है। और उत्तरमें नीलाचल है। अब सीतानदीके उत्तरके तरफकी रचनाको कहते हैं—

भद्रसाल वनकी वेदीसे लेकर देवारण्यकी वेदीतक पूर्व विदेहका क्षेत्र है। उसमें चार वक्षार पर्वत हैं, वे नीलाचल से लेकर सीतानदीके तटको प्राप्त ऐसे उत्तर दक्षिण लंबे हैं। इन वक्षारगिरोंकी उंचाई कुलाचलके पास चार सौ योजन और क्रमसे बढती हुई सीताके तटके पास पांच सौ योजन है। वहां सीताके तरफ ही इसके ऊपर जिन भवन हैं। इसी प्रकारके चारों वक्षार गिर जानना। उन वक्षार-गिरोंके बीचोंबीच तीन विभंगा नदी हैं, वे विभागा नदिएं नीलकुलाचलसे निकलकर सीतामें जा मिली हैं। इसी तरह सीता नदीके दक्षिणकी तरफ भी चार वक्षार तीन विभंगा नदी और दोनों तरफ अंतमें वेदी इन नवोंके बीच आठ विदेह हैं। इसीको बताते हैं—

पूर्वभद्रसालकी वेदी, उसके आगे विदेह, उसके आगे वक्षार गिरि, उसके आगे विदेह, उसके आगे विभंगा, उसके आगे विदेह उसके आगे वक्षार, उसके आगे विदेह, उसके आगे विभंगा, उसके आगे विदेह, उसके आगे वक्षार, और वक्षारके आगे विदेह, उसके आगे विभंगा, उसके आगे विदेह, उसके आगे वक्षार, उसके आगे विदेह, और उसके आगे देवारण्यकी वेदी। ऐसे चार वक्षार तीन विभंगा एक भद्रशाल वनकी वेदी, एक देवारण्य की वेदी इन नौके बीच आठ विदेह, इस प्रकार सीता नदीके

दोनों तट संबंधी सोलह विदेह, छह विभंगा नदी, आठ वक्षार गिर जानना।

तीन विभंगा नदी प्रत्येक सवासौ योजन चौडी, हरएक वक्षार गिर पांच सौ योजन चौडा, प्रत्येक विदेह क्षेत्र बाईस सौ बारह योजन साडा तीन कोस प्रमाण चौडा है। इन सबका जोड वीस हजार अठहत्तरि योजन हैं। भद्रशालकी वेदीसे लगाकर देवारण्यकी वेदी तक पूर्व विदेह है।

पश्चिम विदेहकी रचना पूर्व विदेहवतही जानना। वहां सीतोदानदी पश्चिम विदेहके बीच होकर बहती हुई पश्चिम समुद्रमें जा मिलती है। जिससे सीतोदाके उत्तर दक्षिण रूप पश्चिम विदेहमें दो भाग हो गये। दोनों दिशाओंमें रचना समान है।

भा प्रमाण पहिले की तरह है। तीन विभंगा नदी चार वक्षारगिरि आठ विदेह क्षेत्र इन सबका जोड बीस हजार अठहत्तर योजन है। यहां पश्चिम भद्रसालकी वेदीसे लेकर भूतारण्यकी वेदी तक पश्चिम विदेह है। जैसे पूर्व विदेहके अंतमें समुद्रकी तरफ उनतीससै बाईस योजन प्रमाणका देवारण्य वन है उसी तरह पश्चिम विदेहके अंतमें उनतीससौ बाईस योजन विस्तारवाला भूतारण्य वन है।

भद्रसाल वन मेरुसहित, दोनों तरफके विदेह और देवारण्य भूतारण्य वन इन सबके विस्तारका जोड एक लाख योजन प्रमाण है।

पूर्वविदेह सोलह और पश्चिमविदेह सोलह ऐसे ३२ विदेहक्षेत्र होते हैं। उन क्षेत्रोंके वीचमें पूर्व पश्चिम लम्बा एक एक विजयार्ध पर्वत है। नीलाचल निषधाचलसे निकल कर एक २ विदेह क्षेत्रमें दो दो नदीं विजयार्ध पर्वतके नीचे वहकर सीता सीतोदामें जा मिलतीं हैं। इससे एक २ विदेहके छह २ खंड हो जाते हैं। कुलाचलोंकी तरफ तीन खंडोंके बीचके खंडमें वृषभाचल पर्वत है। सीता सीतोदाके दोनों तरफ तीनों खंडोंके वीच आर्य खण्ड है। वाकीके पांच म्लेच्छ खण्ड हैं। वत्तीस विदेह क्षेत्रोंमें ६४ नदियां हैं। इनमें से नीलाचलसे निकली वत्तीस नादियां तो गंगा, सिन्धु इस नामको धारण करती हैं और निपधाचल से निकली हुई वत्तीस नदी रक्ता रक्तोदा इस नामको धारण करती हैं। इस प्रकार विदेहक्षेत्र है। इसमें कुछ विशेषता और है।

सुदर्शन मेरुकी चार विदिशाओंमें ४गजदंतपर्वत हैं-ईशान दिशामें माल्यवान गजदंत है, उसका वैडूर्यमणिसरीखा रंग है। आग्नेय विदिशामें सफेद चांदी सरीखे रंगका सौमनस

गजदंत पर्वत है। नैऋत्य विदिशामें तपे हुए सुवर्ण वर्णका विद्युत्प्रभ गजदंत पर्वत है। वायव्य विदिशामें सुवर्ण वर्ण वाला गंधमादन गजदंत पर्वत है। ये गजदंत मेरुसे लेकर नीलाचल वा निषिधाचलसे जा मिलते हैं। तीस हजार दो सौ नौ योजन इनकी लम्बाई है। चौडाई मेरुके निकट पांच पांच सौ योजन है। कुलाचलोंके पास चार सौ योजन है। ऐसे मेरुके चारों विदिशाओंमें चार गजदंत पर्वत हैं।

सुदर्शन मेरुकी चित्रा पृथ्वीमें एक हजार योजनकी नीव है। वहां दश हजार नव्वे योजन और दश योजनके ग्यारहवें भाग प्रमाण चौड़ा है। फिर क्रमसे घटते हुए समभूमिमें दश हजार योजन चौड़ा है और अंतमें एक हजार योजन चौड़ा है। अत्यन्त शोभायुक्त एक लाख योजन ऊंचा है। एक हजार योजनकी तो नीव है, समभूमिमें चारों तरफसे भद्रसाल वन है, उससे अनुक्रमसे घटते हुए पांच सौ योजन ऊंचा चढ़नेपर चारों तरफ पांच सौ योजन चौड़ी कटनी है। उस कटनीपर चौतरफ नंदनवन है। फिर उसके ऊपर ११ हजार योजन तो समान चौड़ाईको लिये हुए पर्वत ऊंचा गया है। और ग्यारह हजार योजन ऊपर साढ़ा इक्यावन हजार योजन क्रमसे घटता २ साढ़ा ६२ हजार योजन चढ़नेपर पांच सौ योजन सब तरफ

चौगिरद कटनी है उस कटनीपर सब तरफ सामनस वन है। फिर वहांसे ११ हजार योजन ऊंचा समान प्रमाणको लिए हुए है, फिर क्रमसे १५ हजार योजन घट गया है सो ३६ हजार योजन चढनेपर चार सौ चौरानवे योजन चौडी चौगिरद कटनी है, उसपर पांडुक नामक वन है। उसके बीच नीचे १२ योजन चौडी ऊपर क्रमसे घटती हुई चार योजन चौडी ऐसी चालीस योजन ऊंची वैडूर्य मणि मई चूलिका है। इस प्रकार चार वन मेरुके हैं, उनकी दिशाओंमें चार जिन मंदिर हैं, सो चारों वनोंमें १६ जिन मंदिर हुए। नंदनवन और सौमनस वन इन दोनों वनोंमें १६-१६ बावडी हैं, वे मीठे जलसे भरी हुई महा मनोहर हैं। पांडुक वनमें महा सुंदर चार शिलाएं हैं, उनके ऊपर तीर्थंकर प्रभुके जन्माभिषेकके सिंहासन हैं। पूर्व विदेह पश्चिम विदेह भरत ऐरावत इन चारों क्षेत्रोंमें उत्पन्न तीर्थंकरोंका जन्माभिषेक मेरुकी पांडुकवनकी शिला-पर इन्द्रादिक देवोंके द्वारा किया जाता है। मेरु पर्वत सब क्षेत्रोंसे उत्तरमें पडता है, क्योंकि आगममें सूर्यके उदय की अपेक्षा पूर्वादिक दिशाएं बतलाई गई हैं। पूर्व विदेह क्षेत्रमें सूर्यका उदय नीलाचलके ऊपर दीखता है और निषधाचल पर अस्त होता है इससे पूर्व दिशामें नीलाचल पर्वत है, पश्चिम दिशामें निषिध पर्वत है, दक्षिणमें समुद्र

है, उत्तर में मेरु है। पश्चिम विदेहमें निषिध पर्वतपर सूर्यका उदय है और नील पर्वतपर अस्त होता है, इससे निषिधाचल पूर्वमें नील पर्वत पश्चिममें दक्षिणमें समुद्र है तो उत्तर में मेरु पर्वत है। उत्तरकुरु भोगभूमिमें गंधमादन गजदंतके ऊपर सूर्यका उदय है, और माल्यवान गजदंतपर अस्त होता है इससे पूर्वमें गंधमादन, पश्चिममें माल्यवान, दक्षिणमें नील और उत्तरमें मेरुपर्वत हुआ। देवकुरु भोगभूमिमें सौमनस गजदंतपर सूर्यका उदय है, और विद्युत्प्रभ गजदंतपर अस्त होता है। इससे सौमनस गजदंत पूर्वमें, विद्युत्प्रभ गजदंत पश्चिममें, निषिध पर्वत दक्षिणमें, तो मेरुपर्वत उत्तरमें होता है। इस प्रकार चारों तरफसे मेरुपर्वत उत्तरमें जानना। सो इनके विस्तारका कथन तथा विदेह क्षेत्र संबंधी और विशेष कथन अन्य सिद्धांत ग्रंथोंसे जानना चाहिये। इस प्रकार प्रयोजनी भूत संक्षेपमें जंबूद्वीपके कर्म भूमिवाले क्षेत्रोंका वर्णन किया। इससे आगे समुद्र है फिर द्वीप हैं। दूसरे द्वीपमें जंबूद्वीपसे चौगुनी रचना है। उत्तरसे दक्षिणतक समुद्रकी वेदीको स्पर्श करनेवाला इष्वाकारपर्वत पडा हुआ है। उससे दूसरे द्वीपके दो भाग होगये हैं। दोनों भागोंमें दो मेरु पर्वत हैं और बाकी रचना दोनों तरफ जंबूद्वीप सरीखी है। दूसरे द्वीपको घेरे हुए दूसरा कालोदधि समुद्र है, और उसको

घेरे हुए पुष्कर द्वीप है इस द्वीपके बीचोंबीच मानुषोत्तर पर्वत पडा हुआ है, और इस द्वीपमें भी धातुकीखंडकी तरह उत्तरसे दक्षिणतक लम्बा इष्वाकार पर्वत पडा हुआ है उससे इस द्वीपके भी दो भाग होगये हैं। दोनों भागों में मेरुपर्वत और बाकी रचना दोनों तरफ जंबूद्वीपवत जाननी चाहिये। इस तरह मानुषोत्तर पर्वतके इसी तरफ तक मनुष्य क्षेत्र है। मानुषोत्तरके उस तरफ मनुष्योंकी गतिभी नहीं है। ढाईद्वीप और दो समुद्रोंमेंही मनुष्य पाये जाते हैं आगे जितनेभी द्वीप और समुद्र हैं वहां मनुष्य नहीं हैं।

असंख्याते समुद्रोंमेंसे कौन समुद्रमें कैसा जल है यह बतलाया जाता है—

लवणसमुद्रमें जल खारा है। वारुणीवर समुद्रके जलका स्वाद मदिरा जैसा है। क्षीरवर समुद्रका जल दुग्धकी तरह मीठा है। घृतवर समुद्रका जल घीकी नाईं है। इक्षुवर समुद्रका स्वाद ईखके स्वादके समान है। कालोदधि, पुष्करवर और स्वयंभूरमण समुद्रका जल सामान्य जलके समान है। इनके सिवाय जो और २ असंख्याते समुद्र हैं उनके जलका स्वाद सांठेके रसके समान है।

जलमें रहनेवाले जलचर जीवोंका कथन—

जलचर जीव १ लवणसमुद्र, कालोदधि और अंत के स्वयंभूरमण समुद्रमें ही पाये जाते हैं। इसलिये येही तीनों समुद्र कर्मभूमि संबंधी हैं। बाकीके सब समुद्र भोगभूमि संबंधी हैं। क्योंकि भोगभूमिके जलमें जलचर जीव नहीं होते हैं।

तीनों समुद्रोमें जलचर जीवोंके शरीरका प्रमाण–

लवण समुद्रके तीर ९ योजनका बीचमें १८ योजनका।

कालोदधि समुद्रके तीरमें १८ योजन, बीचमें छत्तीस योजन का है।

स्वयंभूरमण समुद्रमें तीरमें ५०० योजनका और मध्य भागमें १००० योजनका है।

चौडाई लंबाईसे आधी और ऊंचाई चौडाईसे आधी है। जैसे किसी जीवकी लंबाई ९ योजन है तो उसकी चौडाई ४॥ योजन और ऊंचाई २। योजनकी होगी।

१८ योजनवालेकी ९ योजन और ४॥ योजन।

३६ योजन वालेकी १८ योजन और ९ योजन।

५०० योजनवालेकी २५० योजन और १२५ योजन होगी।

१००० योजनवालेकी ५०० योजन और २५० योजन होगी।

कर्मभूमि और भोगभूमी संबंधी कुछ वर्णन—

१. पुष्पकर द्वीपके मध्य भागमें मानुषोत्तर पर्वत है

२. स्वयंभूरमण द्वीपमें स्वयंप्रभ नामका पर्वत है। मानुषोत्तर पर्वत तक अर्थात् ढाई द्वीप तकही मनुष्य लोक है। इसके आगे ऋद्धिप्राप्त भी मनुष्य नहीं जा सकते। मानुषोत्तर पर्वतके आगे स्वयंप्रभनामा पर्वततक जघन्य भोग-भूमि है। वहां जघन्य भोगभूमियां तिर्यंचही रहते हैं। स्वयंप्रभ पर्वतके आगे कर्मभूमि है। वहां उत्कृष्ट अवगाहना वाले रहते हैं। जैसे—

१. एकेंद्रियमें कमलकी एक हजार योजनकी अवगाहनासे कुछ ज्यादा होती है।

२. दोइन्द्रियमें- शंख बारह योजनका होता है

३. तीन इन्द्रियमें ग्रैष्म, सहस्रपभ नामा पौन योजनका होता है।

४. चौइन्द्रियमें भ्रमर एक योजनका होता है।

५. पंचेन्द्रियमें मनुष्यका शरीर एक हजार योजनका उत्कृष्ट लंबाई वाला होता है ऐसा त्रिलोकसार गाथा नं. ३२५ में है।

इन जीवोंकी आयुका प्रमाण बताते हैं—

१. शुद्ध पृथ्वीकायिककी आयु १२००० वर्षकी होती है।

२. खर पृथ्वी पाषाणादि कायिककी २२००० वर्षकी होती है।

३. जलकायिककी ७००० वर्षकी होती है।

४. तेजसकायिककी ३ दिनकी

५. वायुकायिककी ३००० हजार वर्षकी

६. वनस्पतिकायिककी दश हजार वर्षकी

७. दो इन्द्रियकाय वाले जीवोंकी उत्कृष्ट आयु १२ वर्षतककी

८. तीन इन्द्रिय वालोंकी उत्कृष्ट आयु ४९ दिनकी

९. चतुरिन्द्रिय जीवोंकी उत्कृष्ट आयु ६ माह प्रमाणकी होती है।

१०. पंचेन्द्रिय मत्स्य मनुष्यादिकी आयु उत्कृष्ट १ कोडि पूर्व तककी होती है।

चौरासी लाख वर्षका एक पूर्वांग और ८४००००० पूर्वांगका एक पूर्व होता है।

११. पंखियोंकी आयु ७२००० वर्षकी

१२. सर्पकी आयु ४२००० वर्षकी होती है।

पृथ्वी आदिसे लेकर मनुष्यादि पर्यंत जघन्यायु अंतर्मुहूर्त प्रमाण होती है।

वेदोंका कथन

१. नारकी जीव, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, समूर्च्छन पंचेन्द्रिय, ये सब नपुंसकही होते हैं।

२. भोगभूमियां मनुष्य, तिर्यंच व देव स्त्रीवेद और पुरुषवेद वाले ही होते हैं।

३. गर्भ जन्म वाले मनुष्य और तिर्यंच तीनों वेद वाले होते हैं।

अब ज्योतिषच्चक्रका वर्णन करते हैं—

इस चित्रा पृथिवीके समभागसे ऊपर ७९० योजनसे ९०० योजनतक ११० योजनमें संपूर्ण ज्योतिष चक्रकी अवस्थिति है। ज्योतिषियोंमें चन्द्रमा इन्द्र है, सूर्य प्रतीन्द्र है। इनके आवास मध्य लोकमें हैं। इस समभूमि भागसे सात सौ नव्वे योजन ऊपर संपूर्ण ज्योतिष चक्रके नीचे तारागण विचरते हैं। उन ताराओंसे दश योजन सूर्यजातिके देव हैं, सूर्यसे अस्सी योजन ऊंचे चन्द्रमा परिभ्रमण करता है। चन्द्रमासे तीन योजन ऊपर नक्षत्र हैं। नक्षत्रोंसे तीन योजन ऊपर बुधका विमान है। उससे तीन योजन ऊपर शुक्रदेव है। उससे तीन योजन ऊपर वृहस्पति है। उससे चार योजन ऊपर मंगल है। उससे चार योजन ऊपर शनैश्चरका

विमान है। इस तरह ये ज्योतिर्गणका विषयरूप आकाश एक सौ दश योजनकी ऊंचाईमें है। क्योंकि समान भूमिभागसे सात सौ नव्वे भागसे ऊपर नौसौ योजन तक एक सौ दश योजन मोटा ज्योतिषी देवोंका पटल है और तिर्यक् असंख्यात द्वीप समुद्र प्रमाण चौडा लंबा घनोदधि पवन पर्यंत है।

एक योजनके इकसठ भागमेंसे ५६ भाग प्रमाण चन्द्रमाका विमान है। और अडतालीस भाग प्रमाण सूर्यका विमान है। शुक्रके विमानका विस्तार एक कोश प्रमाण है। बृहस्पतिका विमान कुछ कम एक कोशका है। बुध, मंगल, शनैश्चरका विमान आधे कोश प्रमाण है। ताराओंका विमान जघन्य है सो तो एक कोशका चतुर्थ भाग प्रमाण विस्तार है। और उत्कृष्ट एक कोशका, जितना तारोंका उतनाही नक्षत्रोंके विमानका विस्तार है इन संपूर्ण विमानोंका आकार जैसे कोई गोला सब तरफसे घटता हुआ होता है। सो लोहेके गोलेको बीचमेंसे चीरनेपर ऊपरका विस्ताररूप और नीचे का क्रमसे घटतारूप होता है। विमानोंके विस्तारसे आधा ऊंचाईका प्रमाण है।

विस्तारसे तिगुनीसे कुछ अधिक परिधि है। राहुका विमान चन्द्रमाके विमानके नीचे गमन करता है। केतुका विमान सूर्यके विमानके नीचे गमन करता है। राहु केतुका

विमान कुछ कम एक योजनका है । राहुके विमानके ध्वज दंडके ऊपर चार प्रमाणांगुल अंतर छोड चन्द्रमाका विमान है । केतुके विमानके ध्वज दंडके ऊपर चार प्रमाणांगुलको छोड सूर्यका विमान है । चन्द्रमाका विमान प्रतिदिन अपने विस्तारके सोलहवें भाग कृष्ण व शुक्ल होता है । सो राहुके विमानकी गति विशेषसे होती है । चन्द्र विमानको और सूर्य विमानको सोलह सोलह हजार देव लेकर चलते हैं । पूर्वमें चार हजार देव सिंहके आकारके हैं । दक्षिणके चार हजार देव हाथीके आकारके हैं । पश्चिमके चार हजार देव बैलके आकारके हैं और उत्तरके चार हजार देव घोडेके आकारके हैं । बाकी ग्रहोंके वाहक देव आठ हजार हैं । नक्षत्र विमानके चार हजार देव हैं । तारा विमानोंके दो हजार देव विमानके ढोने वाले हैं । सूर्यकी बारह हजार किरणे उष्ण हैं, चन्द्रमाकी बारह हजार किरणें शीतल है । शुक्रकी ढाई हजार किरणें हैं । प्रकाशसे अत्युज्वल हैं बाकी-के ग्रहादिक मंद किरण वाले हैं । मंद प्रकाश सहित हैं ।

शंका- गमनके कारण विना ज्योतिषी देवोंका गमन कैसे होता है ?

उत्तर— गतिमें रत अभियोग्य देव होते हैं उनके कर्मोंका विपाक गमन करनेसे ही होता है । ये सब कर्मोंकी विचित्रता है । सूर्यका विमान तपे हुए सोने[illegible] है । निर्मल

कमलके तन्तुके वर्ण समान चन्द्रमाका विमान है । चांदीके वर्ण समान शुक्रका विमान है मोतीकेसमान वृहस्पतिका विमान है । कनकमय बुधका विमान है । तपे हुए सुवर्णके समान शनैश्चरका विमान है । ताये हुए सोनेके समान मंगलका विमान है ।

ज्योतिषी देव मेरुकी प्रदक्षिणा करतेहुए निरन्तर मनुष्य लोकमें गमन करते हैं । मेरुको ११२१ योजन तिर्यक् (तिरछा) छोडकर तारागणादिक विचरते हैं । ढाई द्वीप और दो समुद्रोंमें मनुष्योंका क्षेत्र है । उनमें से जम्बू द्वीप में दो चन्द्रमा, लवणसमुद्रमें चार, धातकीखंड द्वीपमें बारह कालोदधिमें ब्यालीस,पुष्करार्धमें बहत्तर इस तरह इन पांचों स्थानोंमें एकसौ बत्तीस चन्द्रमा हुए, इतने ही सूर्य हैं ।

जम्बूद्वीपमें छत्तीस ध्रुव तारा हैं, लवण समुद्रके ऊपर एकसौ उणतालीस [१३९] धातुकी द्वीपमें एक हजार दश(१०१०)कालोदधि समुद्रके ऊपर इकतालीसहजार एकसौ बीस (४११२०) पुष्करार्धके ऊपर त्रेपन हजार दो सौ तीस (५३२३०) ध्रुवतारे हैं ।

चन्द्रमाका परिवार—

एक चन्द्रमा सम्बन्धी १ सूर्य, अठासी ग्रह, अट्ठाइस

नक्षत्र, छयासठ हजार नौ सो पचहत्तर कोडाकोडी तारा इतने परिवार सहित सारे चन्द्रमा जानना।

ऊपर बतलाया गया है कि जम्बूद्वीपमें दो सूर्य और दो चन्द्रमा हैं। इनके गमन करनेके क्षेत्रको चार क्षेत्र कहते हैं। सो एकसौ अस्सी योजन तो द्वीपमें और तीनसौ तीस योजन और सूर्यके बिंबके प्रमाण अधिक लवण समुद्रमें गमनका क्षेत्र है। इस प्रकार पांचसौ दश योजनसे कुछ अधिक इनका चार क्षेत्र है। इनमें से सूर्यके गमन करनेकी १८४ गली हैं। सो बिंब प्रमाण तो एक गलीकी चौडाई है। और गली गली प्रति दो दो योजनका अन्तर इस प्रकार एकसौ त्रियासी अन्तर जानना चाहिये। इनमें गमन कर जम्बूद्वीपकी अभ्यन्तर (भीतरी) परिधिमें गमन करता है। उसको प्रथम गली कहते हैं और लवण समुद्रमें तीनसौ तीस योजन परै जो गली है वह अन्तकी बाह्य परिधि है। पहिले अभ्यन्तर वीथी (गली) में रहने वाले सूर्यके दाक्षिणायनका प्रारम्भ होता है। और अन्तर्बाह्य गलीमें रहने वाले सूर्यके उत्तरायणका प्रारम्भ होता है। जब सूर्य कर्क राशिमें प्राप्त होता है तब भीतरी गलीमें भ्रमण करता है। और मकर राशिमें जब सूर्य प्राप्त होता है, तब बाह्य गलीमें भ्रमण करता है। ज्यों २ सूर्य बाह्य वीथीमें प्राप्त होता है, त्यों २ शीघ्र गमन करता है। उसी तरह

जैसे २ भीतरी गलीमें प्राप्त होता है उसी २ तरह मन्द गमन करता है। जब भीतरी गलीमें गमनका प्रारम्भ करता है। उस समय दिन तो अठारह मुहूर्तका और रात्रि बारह मुहूर्तकी होती है। जब बाह्य परिधिमें सूर्य भ्रमण करता है। तब बारह मुहूर्तका दिन और अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है। चन्द्रमाकी गलियां पन्द्रह हैं। इनके गमनके चारक्षेत्रकी चौडाई पांच सौ दश योजन प्रमाण कही गई है। इनमें एक सो चवरासी गली सूर्यकी है। उनमें जंबूद्वीप संबंधी चार क्षेत्र एक सौ अस्सी योजनमें है। जम्बूद्वीपकी वेदीका विस्तार चार योजनका है। इसलिए द्वीपके ऊपर १७६ योजन और वेदीके ऊपर चार योजनका, लवण समुद्रके ऊपर तीन सौ तीस योजनका है। उनमें सूर्यका बिंब तो ४८ योजनका ६१वें भागमें और दो योजनको अन्तराल इनको मिलाकर एक सौ सत्तरका ६१ वां भाग प्रमाण प्रतिदिन परिधिका अन्तराल जानना चाहिये। सो द्वीप ऊपर बासठ उदय है और वेदी सम्बन्धी दो और लवण समुद्र सम्बन्धी एक सौ अठारह हैं इस प्रकार १८४ उदय कहे जाते हैं। भरत क्षेत्रके निवासियों को ६३ उदय तो निषध पर्वतके ऊपर दिखते हैं और ६४वीं ६५वीं वीथीमें रहने वाला सूर्य हरिक्षेत्र ऊपर उदय होता दीखता है। छयासठवीं गलीसे लगाकर अन्त पर्यंतको

गलियोंमें रहने वाला सूर्य लवण समुद्रके ऊपर उदय होता हुआ भरतक्षेत्रके निवासियोंको दीखता है । मेरु पर्वतके मध्य भागसे लेकर लवण समुद्रके छट्टे भाग पर्यंत सूर्यका आताप फैलता है। जम्बू द्वीपका आधा क्षेत्र ५० हजार योजन है उसमें द्वीप चार क्षेत्र एकसौ अस्सी योजन घटायें गुण पचास हजार आठ सौ वीस योजन प्रमाण तो भीतर की गली मेरु गिरिके मध्य पर्यंत उत्तर दिशा में आताप फैलता है। लवण समुद्रका व्यास दो लाख योजनका है उसका छटवां भाग तेतीस हजार तीनसौ तेतीस योजन और एक योजनका तीसरा भाग प्रमाण है इसमें द्वीपका चार क्षेत्र एक सौ अस्सी योजन मिलाए तेतीस हजार पांच सौ तेरह योजन और एक योजनका तीसराभाग प्रमाण दक्षिण दिशा में आताप फैलता है। इसी प्रकार अन्य गलियोंमें जानना चाहिये। नीचे १८ सौ योजन चित्रा पृथिवी पर्यंत और ऊपर १०० योजन पर्यंत आताप फैलता है।

चन्द्रमाकी आयु एक पल्य एक लाख वर्षकी है। सूर्य की आयु हजार वर्ष अधिक एक पल्यकी और शुक्रकी आयु सौ वर्ष अधिक एक पल्यकी, बृहस्पतिकी आयु एक पल्यकी, बुध, मंगल और शनैश्चरकी आयु आधा पल्यकी, तारोंकी आयु और नक्षत्रोंकी उत्कृष्ट आयु पाव पल्यकी और जघन्य आयु पल्यका आठवां भाग प्रमाण है।

चन्द्रमा और सूर्यकी चार २ पट्टरानियां होती हैं। एक २ पट्टरानीदेवीकी चार २ हजार परिवारकी देवियां होती हैं और हर एककी इतनीही विक्रिया है। ज्योतिपियोंकी देवांगनाओंकी आयु अपने २ स्वामी देवकी आयुसे आधे प्रमाण होती है।

ज्योतिपि देवोंकी गमन क्रियासेही कालका विभाग होता है। लव, घडी, मुहूर्त, दिनरात, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष आदि कालका विभाग ज्योतिपी देवोंके गमनसेही प्रगट होता है। काल दो प्रकारका होता है। (१) निश्चयकाल (२) व्यवहार काल। वर्तना रूप तो निश्चयकाल है और निश्चयकालका बतलाने वाला व्यवहार-काल है।

प्रश्न– यह ज्योतिपचक्र सिर्फ मनुष्यक्षेत्र प्रमाण ढाई द्वीपमेंही है या इसके आगेभी, और वहां ज्योतिपियोंका गमनादि किस प्रकारका है?

उत्तर—मनुष्यलोकके बाहर असंख्यात द्वीप समुद्रोंके ऊपर ज्योतिपी देवोंके विमान अवस्थित ही हैं, अर्थात् गमन रहित हैं। मानुषोत्तर पर्वतसे ५० हजार योजन आगे जाने पर ज्योतिपियोंके विमानका प्रथम वलय है, उसमें १४४ चन्द्रमा हैं, उससे आगे एक लाख आगे जाने पर, एक २ वलय है, और हर एक वलयमें चार २ चन्द्रमा

अधिक हैं। इस प्रकार वाह्य पुष्करार्ध द्वीपमें आठ वलय (परिधि) हैं। इनमें चन्द्रमा और सूर्यके परिवारके विमान अवस्थित हैं। पुष्करवर समुद्रमें वेदीसे ५० हजार योजन आगे जाने पर प्रथम वलय है और उसमें दोसौ अट्ठासी चन्द्रमा हैं। आगे एक लाख योजन आगे जाने पर दूसरा वलय है, वहां २९२ चन्द्रमा हैं। इस प्रकार एक २ लाख योजन आगे जाने पर एक २ वलय मिलता है, और हरएक वलयमें चार २ चन्द्रमा अधिक हैं। इस प्रकार पुष्करवर समुद्रमें बत्तीस वलय हैं। उससे दूने वारुणीवर द्वीपमें वलय हैं। वहां वेदीसे ५० हजार योजन आगे जाने पर पहिला वलय मिलता है, और उसमें ५७६ चन्द्रमा हैं। आगे एक २ लाख योजन आगे जाने पर एक २ वलय है और हरएक वलयमें चार २ चन्द्रमा अधिक हैं। संपूर्ण वलयोंमें चन्द्रमा और सूर्य अपने परिवार सहित अवस्थित हैं। यहां ऐसा जानना चाहिये कि पुष्करवर समुद्रमें ३२ वलय हैं, उनसे दूने अर्थात् ६४ वलय वारुणीवर द्वीपमें हैं। पुष्करवर समुद्रके पहिले वलयमें दोसौ अठासी चन्द्रमा हैं, उससे दूने अर्थात् ५७६ चन्द्रमा वारुणीवर द्वीपके प्रथम वलयमें हैं। इसी प्रकार वारुणीवरसमुद्र तथा क्षीरवर द्वीपादिमें दूने २ वलय और इसी अनुक्रमसे चन्द्रमा सूर्यकी संख्या की बढतीका प्रमाणादिक लोकके अंतमें स्वयंभूरमण

समुद्रपर्यंत ज्योतिर्लोक अवस्थित हैं, जो जहां हैं वह वहीं अवस्थित हैं गमनागमनादि क्रियासे रहित हैं।

व्यंतर देवों और ज्योतिषी देवोंमें त्रायस्त्रिंश और लोक पाल देव नहीं होते हैं बाकीके आठ प्रकारके देव होते हैं।

प्रश्न—इन ज्योतिषी और व्यंतर देवोंमें कौन जीव पैदा होते हैं ?-

उत्तर--उन्मार्गचारी जैसे-जिनमतसे विपरीत निदान करने वाले, अग्निमें गिरकर मरन वाले, जलमें गिरकर मरने वाले, झंपापात वाले, अकाम निर्जरा करने वाले, अभिलाषा करके आगामी भोगोंकी वांछा कर परीषह सहन कर मरने वाले, तथा कुतपकर कर्मोंकी निर्जरा करने वाले पंचाग्नि तपने वाले, जिनधर्मी होकर सदोषचारित्र पालने वाले, ये सब जीव भवनत्रिकमें ही उत्पन्न होते हैं। सम्यग्मिथ्या दृष्टि जीव भवनत्रिकमें ही उत्पन्न होते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव इनमें उत्पन्न नहीं होते है।

इस प्रकार तीन निकायके देवोंका वर्णन किया।

वैमानिक देव —

जिनमें रहनेवाले जीवोंको पुण्यवंत विशेष रूपसे माना जाय उनका आदर सत्कार किया जाय उन्हें विमान कहते हैं उनमें जो उत्पन्न हों उन्हें वैमानिक देव कहते हैं। इन देवोंके

सिद्धांतोंमें २९ भेद बतलाए गये हैं। जैसे सोलह स्वर्गके स्थान १२, नव ग्रैवेयकके स्थान तीन, नव अनुदिशके ९ तथा पंच अनुत्तरके ५ ऐसे कुल २९ होते हैं।

प्रश्न—इनका प्रथक २ खुलाशा कीजिये ?—

उत्तर—इनका खुलाशा इस तरह समझना चाहिये— स्वर्ग सोलह होते हैं उनके नाम (१)सौधर्म (२)ईशान (३)सानत्कुमार (४) माहेन्द्र (५) ब्रह्म (६) ब्रह्मोत्तर (७) लांतव (८) कापिष्ट (९) शुक्र (१०) महाशुक्र (११) सतार (१२) सहस्रार (१३) आनत (१४) प्राणत (१५) आरण १६) अच्युत। इनमें १२ इन्द्र माने गये हैं-

सौधर्म-ईशान सानत्कुमार-माहेन्द्र इन चार कल्पों में चार इन्द्र होते हैं।

ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर इन दो स्वर्गोंमें एक इन्द्र होता है।

लांतव और कापिष्ट इन दोनों स्वर्गोंमें एक इन्द्र होता है।

शुक्र-महाशुक्र इन दोनों स्वर्गोंमें एक इन्द्र होता है।

सतार-सहस्रार इन दोनों स्वर्गोंमें एक इन्द्र होता है।

आनत-प्राणत-आरण और अच्युत इन चार स्वर्गोंमें चार इन्द्र होते हैं।

इनके हद्का विभाग इस प्रकार है- दक्षिण दिशाके इन्द्रका राज विभाग एक रूपमें होता है, और उत्तर दिशाके इन्द्रका राजविभाग दूसरे रूपमें होता है।

अब इनमें जो विमानकी संख्या है उसको बतलाते हैं—

१ सौधर्म स्वर्गमें ३२ लाख विमान होते हैं। २- ईशानमें २८ लाख ३- सानत्कुमारमें १२ लाख ४- माहेन्द्र में आठ लाख ५- ब्रह्म ब्रह्मोत्तर युगलमें ४ लाख। ६- लांतव-कापिष्ट युगल में ५००००, ७- शुक्र-महाशुक्र युगलमें ४००००, ८- सतार-सहस्रार युगलमें ६०००, ९, १०, ११, १२, इन चारों स्वर्गोंमें ७०० विमान हैं। कुल ८४९६७०० विमान होते हैं। तीन प्रकारके ग्रैवेयकके ९ पटल हैं १- अधोग्रैवेयक के तो १११ विमान होते हैं। इसके तीन पटल होते हैं। मध्य ग्रैवेयिकके भी ३ पटल होते हैं। उनमें १०७ विमान होते है। ऊर्ध्व ग्रैवेयिकके भी ३ पटल होते हैं उनमें कुल विमान ९१ होते हैं। कुल मिलाकर ३०९ विमान होते हैं। नव आनुदिशोंका एकही पटल होता है। उसमें ९ विमान होते हैं। अनुत्तर विमानोंका एकही पटल होता है। इसमें ५ विमान होते हैं।

इस तरह सब मिलाकर ८४९७०२३ विमान होते हैं एक एक विमान बहुत योजनके विस्तारवाला होता है।

विमान तीन प्रकारके होते हैं। १- इन्द्रक २-श्रेणीबद्ध ३-प्रकीर्णक। इनमें श्रेणीबद्ध विमान तो एक २ असंख्यात २ योजन विस्तारवाला होता है। और इन्द्रक विमान संख्यात योजन विस्तारवाला होता है और प्रकीर्णकोंमें कोई २ असंख्यात योजन विस्तारवाला और कोई २ संख्यात योजन विस्तारवाला होता है। उनमें उत्तम मंदिर कल्पवृक्ष, वन, बाग, बावडी, नगरादिक अनेक तरहकी रचना पाई जाती है। सबके मध्यमें इन्द्रक विमान होता है। पूर्वादि चारों दिशाओंमें पंक्तिरूप रहनेवाले श्रेणीबद्ध विमान होते हैं। चारों दिशाओंके बीच अंतरालरूप विदिशाओंमें जहां तहां बिखरे पुष्पोंकी तरह रहनेवाले विमान प्रकीर्णक विमान कहलाते हैं।

प्रश्न– सभी वैमानिक देव एकसे होते हैं या इनमें कुछ भेद होता है ? –

उत्तर– वैमानिक देव दो तरहके होते हैं १. कल्पोपपन्न २. कल्पातीत।

जहां इंद्र सामानिकादिके भेदसे दशप्रकारकी कल्पना होती है उन्हे कल्पोपपन्न कहते हैं। ऐसे १६ स्वर्ग कल्प कहलाते हैं।

जिनमें इन्द्रादिक कल्पना नहीं होती, सभी देव समान होते हैं, वे ग्रैवेयकादि कल्पातीत कहलाते हैं, वहांके देव सभी अहमिंद्र होते हैं।

आगे स्वर्गादिकके ६३ पटल होते हैं। उनका विवरण निम्न लिखित है—

सौधर्म स्वर्ग युगलमें ३१ पटल, सानत्कुमारमें ७, ब्रह्मयुगलमें ४, लांतव युगलमें २ शुक्र युगलमें १, शतार युगलमें १ आनतादि दो युगलोंमें ६, अधस्तन ग्रैवेयकादिमें ९, नव अनुदिशोंमें १ अनुत्तर विमानोंमें १ इस तरह सब मिलाकर ६३ पटल होते हैं।

यहां इतना विशेष जानना चाहिये कि— इस भूमितल से निन्यानवे हजार चालीस योजन ऊंचा जानेपर सौधर्म ईशान ऐसे दो स्वर्ग हैं, इनके प्रथम पटलके अत्यंत मध्यमें ऋजु नामक इन्द्रक विमान है, सो ऋजु नामा इन्द्रक मेरुकी चूलिकाके ऊपर एक बालका अग्र भाग समान अंतर छोडकर अवस्थित है। वह अढाई द्वीप प्रमाण पैतालीस लाख योजनके विस्तार सहित है। उसके चारों दिशाओंमें बासठ २ सूधी पंक्तिरूप श्रेणीबद्ध विमान हैं और दिशाओंके श्रेणीबद्धोंके बीचमें बहुतसे प्रकीर्णक विमान हैं। इसके ऊपर असंख्यात योजनका अंतराल

छोडकर दूसरा पटल है। इसके मध्यमें चन्द्र नामका इन्द्रक है उसके चारों दिशाओंमें इकसठि२श्रेणीवद्ध विमान हैं, और उनके बीच प्रकीर्णक विमान हैं। फिर असंख्यात योजन का अंतराल छोडकर तीजा पटल है, उसके वीचमें विमल नामक इन्द्रक विमान है। इसकी चारों दिशाओंमें साठ २ श्रेणविद्ध विमान है और दिशाओंके वीच २ प्रकीर्णक विमान हैं। इस प्रकार असंख्यात २ योजनका अंतराल छोड २ कर ड्येढ राजूकी ऊचाईमें इकतीस पटल हैं। और पटल पटल के प्रति एक २ दिशा संवंधी एक २ श्रेणीवद्ध विमान घटता गया है। सो इकतीसवें पटेलमें दिशाओंके श्रेणविद्ध विमान वतीस २ होते हैं। और इन्द्रक विमानका विस्तारभी पटल २ प्रति सत्तर हजार नौ सो सडसठ योजन और तेईस योजनका इकतीसवां भाग प्रमाण ऊपर घटता २ है।

विशेष—सौधर्म स्वर्गका प्रथम इन्द्रक पैंतालीस लाख योजनका है और त्रेसठवां पटल अनुत्तर विमान सर्वार्थ सिद्धि नामक इन्द्रक एक लाख योजन विस्तार का है, इसलिए चवालीस लाख योजन वासठ स्थानोंमें क्रमसे घटा है। इसीसे प्रतिपटल सत्तर हजार नौ सो सडसठ योजन और तेइस योजनका इकतीसवां भाग

प्रमाण इन्द्रक प्रति हानिचय है। इस प्रकार डेढ राजू की ऊंचाईमें इकतीस पटल रूप सौधर्म ईशान कल्प हैं। हरएक पटलके तीन दिशाके श्रेणीवद्ध और इन्द्रक तथा पूर्व दक्षिण दिशाके श्रेणीवद्धोंके वीच और दक्षिण पश्चिम इन दोनों तरफके श्रेणीवद्ध विमानोंके वीच जो प्रकीर्णक विमान हैं उनमें तो सौधर्म इन्द्रकी आज्ञा प्रवर्तती है। और उत्तर दिशाके श्रेणीवद्ध, पश्चिम उत्तरके वीच और उत्तर पूर्वके वीच जो प्रकीर्णक विमान हैं उनमें ईशान इन्द्रकी आज्ञा चलती है।

अपने २ इन्द्रकके अंतका जो ध्वजादंड है उसके ऊपर एक वाल अग्रभागसे दूसरे स्वर्गका पृथ्वीतल समझना चाहिये।

अव इन विमानोंके आधारोंको वतलाते हैं-

१ सौधर्म युगल तो जलकेही आधार है वहांके पुद्गल जलरूपकेही हैं।

२ सनत्कुमार युगल पवनके आधार है, वहांके पुद्गल पवन रूपही है।

३ ब्रह्मादि आठों कल्प जल पवनरूप पुद्गल परमाणुओंके आधार हैं।

४ आनतादिसे लेकर अनुत्तर पर्यंतके विमान आकाश के आधारही हैं—

इन देवोंके मुकुटोंके इस प्रकार चिन्ह होते हैं–

१. सुअर, २. हिरण, ३. भैंसा, ४. मांछला, ५. कूर्म, ६, मेंडक, ७ घोडा, ८. हाथी, ९. चन्द्रमा १०. सर्प, ११. खड्गी, १२. छैला–बकरा, १३. वैल।

सौधर्म स्वर्गमें सुधर्मा नामा सभास्थान सौ योजन लंबा ५० योजन चौंडा ७५ योजन ऊंचा है। वहां मानस्तंभ हैं, उनमें करण्ड हैं, उनमें भरत क्षेत्र संबंधी तीर्थंकरोंके आभारण रहते हैं। ईशानस्वर्गके मानस्तंभोंके करंडोंमें ऐरावत क्षेत्र संबंधी तीर्थंकरोंकें आभरण हैं सानत्कुमारके मानस्तंभोंके करंडोंमें पूर्व विदेह संबंधी तीर्थंकरोंके अभरण हैं। माहेन्द्र स्वर्गके मानस्तंभोंके करण्डोंमें पश्चिम विदेह संबंधी तीर्थंकरोंके आभरण हैं। सो इन करण्डोंमेंसे इन्द्र निकाल निकाल कर मध्यलोकमें लाकर तीर्थंकरोंको पहिनाता है। ये आभरण भी वैक्रयिक पदार्थ हैं। तीर्थंकरोंके पुण्य कर्मके निमित्तसे उनके योग्य पैदा होते रहते हैं।

卐

स्वर्गोंमें देवोंके आयस्त्रिंश पारिपत्क सामानिक देव

नं.	नाम स्वर्ग	सामानिक	अंग रक्षक	पारिपत्क—उ. म. ज.		
				उत्तम	मध्यम	जघन्य
१	सौधर्म ईशान स्वर्गमें	८००००	३३६०००	१२०००	१४०००	१६०००
२	सानत्कुमार माहेन्द्रमें	८००००	३२००००	१२०००	१४०००	१६०००
३	ब्रह्म ब्रह्मोत्तरमें	७२०००	२८००००	१००००	१२०००	१४०००
४	लांतव में	७००००	२८००००	८०००	१००००	१२०००
५	कापिष्ट में	६००००	२४००००	४०००	६०००	८०००
६	सुक्र महाशुक्रमें	५००००	२०००००		ऊपरकी तरह	
७	सतार सहस्रारमें	४००००	१०६०००	२०००	४०००	६०००
८	आनत प्राणतमें	३००००	१२००००		इसी प्रमाण है	
९	आरण अच्युतमें	२००००	८००००		"	

अब सेनाका प्रकरण बतलाते हैं —

कक्षा नं.	वृषभ १	घोडा २	रथ ३	हाथी ४	पयादा ५	गन्धर्व ६	नर्तकी ७
१	८४०००	१६८०००	३३६०००	६७२०००	१३४४०००	२६८८०००	५३७६०००
२	१६८०००	३३६०००	६७२०००	१३४४०००	२६८८०००	५३७६०००	१०७५२०००
३	३३६०००	६७२०००	१३४४०००	२६८८०००	५३७६०००	१०७५२०००	२१५०४०००
४	६७२०००	१३४४०००	२६८८०००	५३७६०००	१०७५२०००	२१५०४०००	४३००८०००
५	१३४४०००	२६८८०००	५३७६०००	१०७५२०००	२१५०४०००	४३००८०००	८६०१६०००
६	२६८८०००	५३७६०००	१०७५२०००	२१५०४०००	४३००८०००	८६०१६०००	१७२०३२०००
७	५३७६०००	१०७५२०००	२१५०४०००	४३००८०००	८६०१६०००	१७२०३२०००	३४४०६४०००
८	१०६६८०००	२१३३६०००	४२६७२०००	८५३४४०००	१७८६८८०००	३४१३७६०००	६८७२७५२०००

कुल सेनाका जोड–१३५४८३६००० है।

सेनाके नायक देवोंमें जैसे–दक्षिण सौधर्म सनकोंके–(१)वृषभका दामयष्टि (२) घोडेके हरिदामा (३)रथ–मातलि (४)हाथी–ऐरावत (५)पयादा–वायु(६)गंधर्व-अरिष्टयशा ये तो पुरुषवर्ग हुए। (७)नर्तकी–नीलांजना स्त्रीवर्ग नाम प्रसिद्ध हैं।

उत्तर इन्द्र जो ईशानादिक उनमें १ वृषभ–महादामयष्टि २ घोडाके अमितगति ३ रथ–रथमंथन ४ हाथी–पुष्पदंत ५ पयादा–सलघुपराक्रम ६ गंधर्व–गीतरति ये तो पुरुषवर्ग हैं, ७ नर्तकी–महासेना स्त्रीवर्ग प्रासिद्ध हैं।

अब देवांगनाओंकी गिनती बताते हैं—

१. सौधर्म ईशान स्वर्गकी देवांगनाएं	१२८०००
२. सानत्कुमार माहेन्द्रकी ,,	६४०००
३. ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्गकी देवांगनाएं	३२०००
४. लांतव–कापिष्ट स्वर्गकी देवांगनाएं	१६०००
५. शुक्र–महाशुक्र स्वर्गकी देवांगनाएं	८०००
६. सतार सहस्रार स्वर्गकी देवांगनाएं	४०००
७. आनत–प्राणत आरण अच्युत स्वगकी देवांगनाएं	२०००

दक्षिण इन्द्रकी महादेवीं १—श्रीमती २—रामा ३ सुसीमा ४– प्रभावती ५–जयसेना ६– सुषेणा ७–वसुमित्रा ८–वसुंधरा।

इनकी विक्रिया बताते हैं—

आठ देवियां तो १६००० विक्रिया वालीं हैं। बाकीकी देवियां दुनी २ विक्रिया करती हैं जैसे-छह युगलोंमें ३२०००, ६४०००, १२८०००, २५६०००, ५१२०००, १०२४०००। इस प्रकार और २ भी देवियां विक्रियां करती हैं।

इन्द्रके सिंहासनके पास आठों पट्टदेवियोंके आसन होते हैं।

इन देवियोंके आसनसे पूर्व दिशामें क्रमसे सोम, यम वरुण, और कुवेर इन चारों लोकपालोंके आसन हैं। तीन जातिके परिषदोंके आसन १२०००, १४०००, १६०००, इन्द्रके आसनके सामने नैऋत दिशाके कोनेमें हैं और त्रायस्त्रिंशत् का तेतीस आसनभी नैऋत्य दिशामेंही हैं।

सेनानायकोंके सात आसन पश्चिम दिशामेंही हैं।

सामानिक देवोंके आसन ४२००० वायव्य दिशामें और ४२००० ही ईशान दिशामें हैं।

अंगरक्षक देवोंके आसन चारों दिशाओंमें हैं, एक एक दिशामें ८४००० आसन होते हैं। इस प्रकार सुधर्म सभाका संक्षेप कथन किया।

यहांही मानस्तंभ होते हैं उनमें तीर्थंकर देवोंके

आभरणयुक्त करंड होते हैं ।

इन मानस्तंभोंके पासही इन्द्रोंकी उपपाद शय्या होती है और वह आठ योजन लंबी और इतनीही चौडी होती है । यह इन्द्रका जन्मस्थान है ।

देवांगनाएं सौधर्म और ईशान स्वर्गकी दक्षिण और उत्तर दिशामेंही उत्पन्न होती हैं । इनके उत्पन्न होनेके उपपाद स्थान ६००००० व चार लाख होते हैं । जिन देवोंकी वे नियोगिनी होती हैं वे देव अवधिज्ञानसे जानकर उनको अपने स्थान में ले जाते हैं ।

दक्षिण दिशाके कल्पोंकी देवांगनाएं सौधर्म स्वर्गमें, और उत्तर दिशाके कल्पोंकी देवांगनाएं ईशान स्वर्गमें उत्पन्न होती हैं ।

देवियों और देवोंके उत्पन्न होनेके मिश्र विमान सौधर्म स्वर्गमें २६००००० और ईशान स्वर्गमें २४००००० लाख हैं ।

देवोंमें प्रविचार—

भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी तथा सौधर्म और ईशान कल्पवासी देव और देवांगनाओंमें प्रविचार (मैथुन सेवन) मनुष्य मनुष्यनीकी तरह होता है ।

सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गमें शरीरके स्पर्श करने मात्रसे तृप्ति होजाती है।

इनके ऊपर पांचवें स्वर्गसे ८ वें स्वर्ग तकके चार स्वर्गोंके देवोंकी देवांगनाओंके रूपके देखने मात्रसे तृप्ति हो जाती है। देवांगनाओंके सुंदर शृंगार, आकार विलास, चतुर मनोज्ञ वेष, रूप लावण्य इनके अवलोकन करने मात्रसेही परम-सुखको प्राप्त होजाते हैं।

शुक्र, महाशुक्र, सतार और सहस्रार इन चार स्वर्गों के देव देवांगनाओंके मधुर संगीत, कोमलहास्य, कोमल वचन, आभूषणोंके शब्दश्रवणादिरूप अमृतपान द्वारा परम प्रीतिको प्राप्त हो जाते हैं।

आनत, प्राणत, आरण और अच्युत इन चार स्वर्गोंके देव अपनी देवांगनाओंका मनमें संकल्प करने मात्रसे परम सुखको प्राप्त होते हैं।

प्रश्न—सोलह स्वर्गोंके ऊपर रहनेवाले अहमिंद्रोंको कैसा सुख होता है?

उत्तर—सोलहवें स्वर्गके ऊपर नौ ग्रैवेयकादिके ३०९ विमान और नव अनुदिश विमान तथा पांच अनुत्तर विमान इनमें रहने वाले अहमिंद्रोंके कामसेवन नहीं होता है। वहां देवांगना नहीं होतीं। विषय वेदनाके अभावमें वेदनारहित स्वाभाविक परम सुख निरंतर भोगते रहते हैं।

अवधिज्ञान व विक्रियाका विचार—

अधो दिशामें जहांतक गमनादिक विक्रियाकी शक्ति है वहांतक अवधिज्ञानके पदार्थके जाननेकी शक्ति है।

सौधर्म ईशानके देवोंकी गमन करनेकी शक्ति प्रथम पृथिवी पर्यंत है।

सानत्कुमार माहेन्द्र इन दो स्वर्गोंके देवोंकी गमन शक्ति दूसरी पृथ्वीपर्यंत है।

आगेके चार स्वर्गोंमें तीसरी पृथ्वी पर्यंतही हैं।

फिर चार स्वर्गोंमें चौथी पृथिवी पर्यंत गमन शक्ति है।

आगेके चार स्वर्गोंमें पांचवीं पृथिवी तककी गमन शक्ति है।

नव ग्रैवेयिक पर्यंतके अहमिन्द्रोंकी गमन शक्ति छट्ठी पृथिवी पर्यन्त है।

नवानुदिश और पंचानुत्तर ऐसे १४ विमानोंके देवों की गमन शक्ति सातवीं पृथिवीतक है। इसी तरहकी शक्ति अवधिज्ञानकी जाननी चाहिये।

प्रश्न—देवोंकी नीचेकी अवधि तो जान ली परंतु ऊपरकी अवधिका क्या नियम है?

उत्तर—कल्पवासी देव अवधिज्ञान द्वारा ऊपरके

पदार्थोंके ज्ञानको करें तों अपने विमानकी ध्वजाके अंततकही करते हैं इससे आगे नहीं।

नव अनुदिश तकके देव अपने विमानसे लेकर चौदह राजूतक देख सकते हैं।

पंचानुत्तर देव संपूर्ण लोकनाली तक देख सकते हैं।

जन्म मरण सम्बन्धी अन्तराल—

जितने काल तक किसी जीवका वहां जन्म न होय सो जन्मका अन्तराल है और जितने काल तक किसीका मरण नहीं होय सो मरणका अन्तराल है। सो ये दोनों उत्कृष्ट-पने सौधर्म ईशान इन दोनों स्वर्गोंमें सात दिनका, आगेके दो स्वर्गोंमें चार मासका, बाकीके ग्रैवेयकादिमें छः मास तकका जानना चाहिए।

मरण हो जानेके बाद उसी जगह अन्य जीव आकर जब तक जन्म धारण न करे उस कालके प्रमाणको जन्मका अन्तराल कहते हैं--

इन्द्र और इन्द्रकी महादेवी तथा लोकपाल इनका विरहकाल छः मासका है। त्रायस्त्रिंसद्देव, अंगरक्षक, सामा-निक, और पारिषत्कदेव इनका अन्तराल चार मास का है।

देवोंका विशेष संभव (उत्पन्न होनेका) स्थान

जो जीव स्त्री गमनादि रूप कंदर्प भावोंसे जन्म लेता है वह सौधर्म ईशान स्वर्गतक जाता है परन्तु वहां भी कंदर्प जातिमें ही उत्पन्न होता है।

मनुष्य पर्यायमें गानादिकसे आजीविका करने वाले शुभ भावनासे लांतव कल्प तक उत्पन्न होते हैं वहां पर किल्विष्क देव ही होते हैं उत्तम देव नहीं होते।

जो जीव सपाप क्रियामें अपने हस्त आदिसे प्रवृत्ति करते हैं, दासतादिके अनुकूल काम करते हैं। और अपने शुभ भावोंसे मरणकर स्वर्गमें जन्म लेते हैं तो आभियोग्य जातिके देवोंमें जन्म लेते हैं, उत्तम देव नहीं होते हैं। वहां उनकी जघन्यायु ही होती है।

देवोंकी जघन्य उत्कृष्ट आयुका प्रमाण—

सौधर्म ईशान स्वर्गके देवोंकी उत्कृष्ट आयु दो सागर से कुछ अधिक होती है। सानत्कुमार माहेन्द्रमें सात सागरसे कुछ अधिक होती है। तीसरे युगलमें दश सागरसे कुछ अधिक, चौथे युगलमें चौदह सागरसे कुछ अधिक, पांचवें युगलमें सोलह सागरसे कुछ अधिक, छट्टे युगलमें १८ सागरसे कुछ अधिक, सातवें युगलमें वीस सागरकी और आठवें युगलमें बाईस सागरकी होती है। नव ग्रैवेय-

कोंमें एक एक सागरकी वृद्धि होकर अंतिम ग्रैवेयकमें ३१ सागरकी उत्कृष्ट स्थिति होती है नव अनुदिशोंमें बत्तीस सागरकी तथा पंचानुत्तरोंमें तेतीस सागरकी होती है।

जघन्यायु— पंहिले युगलमें एक पल्यसे कुछ अधिक होती है। आगेके स्वर्गोमें पीछेके स्वर्गोमें जो उत्कृष्ट आयु बतलाई गई है वह जघन्य समझनी चाहिये। जैसे सौधर्म ईशान स्वर्गमें जो दो सागरसे कुछ अधिक काल बतलाया है, वह आगेके सानत्कुमार महेंद्र स्वर्गमें जघन्यायु हो जाती है। इसी तरह दूसरे युगलकी तीसरेमें, तीसरेकी चौथेमें इसी तरह पंचानुत्तर तक समझनी चाहिये संपूर्ण लौकांतिक देवोंकी और सर्वार्थसिद्धिके देवोंकी उत्कृष्ट और जघन्यायु एकही होती है।

प्रश्न—ऊपर आपने १८ सागर तककी उत्कृष्ट आयुके साथ अधिक शब्दका प्रयोग किया सो अधिक क्योंकर बतलाई गई है पूरीही क्यों नहीं बतलाई?

उत्तर–वास्तवमें तो सौधर्म ईशानादि स्वर्गोमें आयुका प्रमाण जितने सागर बतलाया है उतनाही है। परन्तु जो जीव सम्यग्दृष्टि हो, और घातायुष्क हो, उस जीवकी आयु उत्कृष्ट आयुसे आधा सागर अधिक होती है। अगर दो सागर आयु पावे तो घातायुष्क अढाई सागर में अंतर्मुहूर्त कम

पावे। सो घातायुष्क वालेका उत्पात बारहवें स्वर्ग तकही होता है आगे नहीं।

प्रश्न–घातायुष्क किसे कहते हैं?

उत्तर—पूर्व भवमें किसी जीवने विशुद्ध परिणामोंसे आयुका बंध अधिक किया था, पीछे संक्लेश परिणामोंसे आयु घटाकर थोडी पाई ऐसे जीवको घातायुष्क कहते हैं। जैसे किसी मनुष्यने ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्गकी आयु दश सागर प्रमाण बांधी वादमें उसी मनुष्य भवमें संक्लेश परिणामोंके बढ जानेसे बांधी हुई आयुके घट जानेसे सौधर्म ईशान स्वर्गमें जन्म लिया है सो घातायुष्क है। ऐसा जीव अन्य देवोंकी दो सागर प्रमाण आयुसे आधा सागर आयु अधिक पाता है। सो बंधी हुई देवायुका घात पहिले मनुष्य तिर्यंच भवमेंही संक्लेश परिणामोंसे होता है। सो घातायुष्क नामसे कहा जाता है। देवोंकी भुज्यमान आयुका घात नहीं होता है। क्योंकि आयुका घात दो प्रकारसे होता है (१) अपवर्तन घात (२) कदली घात। वध्यमान आयुके घटानेको अपवर्तन घात कहते हैं। भुज्यमान आयुके घटानेको कदली घात कहते हैं। देवों का कदलीघात नहीं होता है, अपवर्तन घात होसकता है।

प्रश्न-वैमानिक देव सब एकसे होते हैं या उनमें किन्हीं वातोंमें विशेषता भी है?

उत्तर—वैमानिक देव ऊपर ऊपर स्थिति, प्रभाव, सुख, द्युति, लेश्याविशुद्धि, इंद्रियोंका विषय, अवधिका विषय इनसे अधिक २ हैं। और गति, शरीर, परिग्रह और अभिमानसे हीन २ हैं।

अपने आयु कर्मके उदय से जिस किसी भवमें रहना सो स्थिति है।

दूसरेके उपकार व निग्रह करनेकी शक्तिको प्रभाव कहते हैं।

साता वेदनीय कर्मके उदयसे इंद्रियोंके इष्ट विषयोंको भोगना सो सुख है।

शरीर, वस्त्र, आभूषण और बलकी दीप्तिको द्युति कहते हैं।

लेश्याकी उज्वलताको लेश्या विशुद्धि कहते हैं।

इन्द्रियोंसे विषयोंके जाननेको व अवधिज्ञान द्वारा विषयोंके जाननेको इन्द्रियविषय व अवधिविषय कहते हैं। इन बातोंसे ऊपर २ के देव अधिक २ हैं।

एक देशको छोडकर दूसरे प्रदेशमें जानेको गति कहते हैं। शरीरके विस्तारको शरीर कहते हैं. लोभ कषाय के उदयसे जो ममत्व परिणाम सो परिग्रह है। मान कषायके उदयसे जो अभिमान व अहंकार सो अभिमान है। इनसे ऊपर २ हीन हैं।

प्रश्न—ऊपरके देवोंके विक्रियाकी अधिकता होनेसे गमन बढना चाहिये फिर गति हीन कैसे कही गई है ?

उत्तर—गमन करनेकी शक्ति तो ऊपर बढती है परंतु गमन करनेका परिणाम अन्य क्षेत्रमें जानेका अधिक नहीं होता इसीसे गतिहीन कही गई है। जैसे-सौधर्म ऐशानके देव क्रीडादिक के लिये महान विषयानुरागसे वारंवार अनेक क्षेत्रोंमें गमन करते हैं, उस तरह ऊपरके देवोंके विषयोंकी उत्कट इच्छाका अभाव है इसीसे गतिसे हीन कहे गये हैं।

शरीरका प्रमाण—

सौधर्म ईशान स्वर्गके देवोंके शरीरका प्रमाण सात हाथ ऊंचा है। सानत्कुमार माहेन्द्रमें छह छह हाथ प्रमाण है। ब्रह्मब्रह्मोत्तर लांतव कापिष्टमें पांच हाथ प्रमाण है। शुक्र महाशुक्र सतार सहस्रार इन चार स्वर्गोंमें चार हाथ प्रमाण है। आनत प्राणतमें साढ़े तीन हाथ प्रमाण ऊंचा है। आरण अच्युतमें तीन हाथ ऊंचा है। अधो ग्रैवेयकमें ढाई हाथ, मध्य ग्रैवेयकमें दो हाथ, उपरिम ग्रैवेयक और नव अनुदिशमें डेढ हाथ, पंच अनुत्तरोंमें एक हाथ ऊंचा है।

विमान, परिवार आदि रूप परिग्रह भी ऊपर २ कम है। क्योंकि जिसके मंद कषाय है वही ऊपर २ उत्पन्न

होते हैं। इसीसे ऊपर २ कषाय मंद है।

देवोंमें उत्पन्न होनेका विधान—

असैनी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच शुभ परिणामोंके वशसे पुण्यबंधकर भवनवासियों तथा व्यन्तरोंमें उत्पन्न होता है।

सैनी पर्याप्त कर्मभूमिका तिर्यंच मिथ्यादृष्टि व सासादन सम्यग्दृष्टि जीव बारहवें स्वर्गतक उत्पन्न होता है। वही सम्यग्दृष्टि जीव सौधर्मसे अच्युत स्वर्ग पर्यंत उत्पन्न होता है।

भोगभूमिका मनुष्य तिर्यंच मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि ज्योतिषियोंमें उत्पन्न होता है। तापसी भी ज्योतिषियोंमें उत्पन्न होते हैं।

भोगभूमिके मनुष्य तिर्यंच सम्यग्दृष्टि सौधर्म ऐशान स्वर्गमें जन्म धारण करते हैं।

कर्मभूमिका मनुष्य मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि भवनवासीको आदि ले उपरिम ग्रैवेयक पर्यंत उत्पन्न होता है। जिनके द्रव्य तो जिनलिंग हो और भावसे मिथ्यात्व सासादन हो ऐसा जीव ग्रैवेयक तक जाता है।

अभव्य मिथ्यादृष्टि जीव निर्ग्रंथ लिंग धारणकर महान शमभाव और तपके प्रभावसे उपरिम ग्रैवेयक पर्यंत उत्पन्न होता है।

परिव्राजक तपस्वियोंका उत्कृष्ट उपपाद ब्रह्मस्वर्ग पर्यंत है। आजीवक [कांजिका आहारी] इनका बारहवें स्वर्ग पर्यंत उपपाद है। अन्य लिंगियोंका ऊपर उपपाद नहीं है। निर्ग्रंथ लिंगके धारक मिथ्यादृष्टि उत्कृष्ट तपकर मंदकषाय के प्रभाव से उपरिम ग्रैवेयक तक उत्पन्न होते हैं।

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी प्रकर्षताके योगसे श्रावकोंका सौधर्मादि अच्युत स्वर्ग पर्यंत उपपाद है। नीचे नहीं उपजते और ऊपर भी नहीं जाते हैं।

भावलिंगी निर्ग्रंथोंका सर्वार्थसिद्धि पर्यंत उपपाद है। अणुव्रतधारी तिर्यंचोंका सौधर्मको आदि ले बारहवें स्वर्ग पर्यंत गमन है।

एकेन्द्रिय, विकलत्रय तथा देव और नारकी ये मरण कर देव नहीं होते हैं। अभव्य जीव निर्ग्रंथ लिंग धारणकर भवनत्रिकादि उपरिम ग्रैवेयक पर्यंत होते हैं।

पांच मेरु संबंधी तीस भोगभूमिके मनुष्य तिर्यंच मिथ्यादृष्टि तो भवनत्रिकमें उत्पन्न होते हैं।

सम्यग्दृष्टि जीव सौधर्म ईशान स्वर्गमें उत्पन्न होते हैं। छयानवै कुभोगभूमिके और मानुषोत्तर स्वयंप्रभाचल पर्वतके बीच जो असंख्यात द्वीप उनमें उत्पन्न हुए तिर्यंच भवनत्रिकमें उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार देवोंका उपपाद कहा। अब देव चयकर कौन पर्याय धारण करता है? सो कहते हैं—

भवनत्रिक देव और सौधर्म ऐशान तकके देव चयकर एकेन्द्रिय वादर पर्याप्त ऐसे पृथिवीकाय अप्काय प्रत्येक वनस्पतिमें तथा मनुष्योंमें पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें उत्पन्न होते हैं। सानत्कुमारादिकका आया हुआ जीव स्थावर नहीं होता है। बारहवें स्वर्ग पर्यंतके देव चयकर तिर्यंच पंचेन्द्रिय पशु तथा मनुष्यमें आकर उपजते हैं। आनतादिकके देव नियमसे मनुष्यमें ही आकर उत्पन्न होते हैं। तिर्यंचोंमें उत्पन्न नहीं होते हैं। सौधर्मको आदिले नवग्रैवेयक पर्यंतके आये देव त्रेसठ शलाकाके पुरुषोंमें भी उत्पन्न होते हैं अनुदिश अनुत्तरके आये हुए देव तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलभद्र तो आकर उत्पन्न होते हैं। परन्तु अर्धचक्री नहीं होते हैं। भवनत्रिक देवपर्यायसे आये हुए जीव त्रेसठ शलाकाके पुरुष नहीं उत्पन्न होते। देव पर्यायसे चयकर संपूर्ण सूक्ष्मोंमें तथा तैजसकाय वातकायोंमें नहीं उत्पन्न होते हैं। विकलत्रयमें असैनीमें अपर्याप्तमें नहीं उत्पन्न होते, एवं भोगभूमिमें नहीं उत्पन्न होते।

अब जंबूद्वीपके हिमवदादि छह कुलाचल पर्वतोंपर जो पद्मादि छह तालाब (हृद) हैं उन तालाबोंमें परिवार सहित जो कमल हैं उन पर जिनके सुन्दर भवन बने हुए हैं उनमें बसनेवाली छह देवियां जिनके नाम श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी हैं उनका वर्णन किया जाता है—

(१) पद्महृदपर श्रीदेवी (२) महापद्महृद जो महाहिमवन पर्वतपर है उसपर ह्रीदेवी (३) निषिध पर्वतके तिगिंछ हृदपर धृतिदेवी (४) नील पर्वतके केसरी हृदपर कीर्तिदेवी (५) रुक्मि पर्वतके महापुंडरीक हृदके कमलपर बुद्धि देवी और (६) शिखरी पर्वतके पुंडरीक हृदपर लक्ष्मीदेवी निवास करती हैं। कमलके परिवार कमलोंपर देवियोंके सामानिक और पारिषत्क जातिके देव रहते हैं। देवियोंकी एक पल्यकी आयु होती है। इन देवियोंमें प्रथम तीन देवियां अर्थात् श्री ह्री धृति देवी तो सौधर्म स्वर्गके इन्द्रकी आज्ञाकारिणी हैं। और वाकीकी तीन देवियां अर्थात्-कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मीदेवीं ईशान स्वर्गके इन्द्रकी आज्ञाकारिणी हैं।

प्रथम पद्म नामका हृद १००० योजन लंबा ५०० योजन चौडा और १० योजन गहरा है।

दूसरा हृद २००० योजन लंबा १००० योजन चौडा और २० योजन गहरा है।

तीसरा तिगिंछ हृद ४००० याजन लंबा २००० योजन चौडा और ४० योजन गहरा है। ये तीनों हृद प्रथम तीन देवियोंके अधिकारमें हैं। उत्तरके तीनों हृद जिनका विस्तार दक्षिणके तीनों हृदोंके तुल्य है वाकीकी देवियोंके अधिकारमें हैं। हृदोंमें एक २ योजन विस्तार वाले कमल हैं उन कमलोंपरही सुन्दर आकार वाले देवियोंके महल बने

हुए हैं। परिवारके कमलोंपर सामानिक और पारिपत्क जातिके जो देव रहते हैं उनमें उत्तम पारिपत्क देव ३२००० हजार मध्यम ४०००० और जघन्य ४८००० हैं। उन हृदोंमें इनके रहनेके कमलोंकी संख्या १४११५ है। हर एक कमलपर उन देवोंके महल हैं। इनके सामानिक देव ४००० हैं छहोंके एकसे हैं।

१. नंदनवन २. सौमनसवन ३. भद्रसालवन ४. पांडुकवन इन चारोंमें रहने वाले देव लोकपाल कहलाते हैं। इन वनोंमें वसने वाले लोकपाल क्रमसे सोम, यम, वरुण और कुवेर कहलाते हैं। ये चारों सौधर्म इन्द्रके लोकपाल हैं। एक २ लोकपालके साढे तीन करोड व्यतरी देवांगनाएं हैं। सोम और यमकी आयु ढाई पल्यकी और वरुण और कुवेरकी आयु दो और ३ पल्यके भीतर होती है। इनके भवन मेरु पर्वतके ऊपर हैं और स्वर्गमें भी हैं। इनके हर एकके भवन ६६६६०० होते हैं।

छहों देवियोंकी सेनाका विवरण—

कक्षा नं.	वृषभ १	घोडा २	रथ ३	हाथी ४	पयादा ५	गन्धर्व ६	नर्तकी ७
१	४०००	८०००	१६०००	३२०००	६४०००	१२८०००	२५६०००
२	८०००	१६०००	३२०००	६४०००	१२८०००	२५६०००	५१२०००
३	१६०००	३२०००	६४०००	१२८०००	२५६०००	५१२०००	१०२४०००
४	३२०००	६४०००	१२८०००	२५६०००	५१२०००	१०२४०००	२०४८०००
५	६४०००	१२८०००	२५६०००	५१२०००	१०२४०००	२०४८०००	४०९६०००
६	१२८०००	२५६०००	५१२०००	१०२४०००	२०४८०००	४०९६०००	८१९२०००
७	२५६०००	५१२०००	१०२४०००	२०४८०००	४०९६०००	८१९२०००	१६३८४०००
८	५०८०००	१०१६०००	२०३२०००	४०६४०००	८१२८०००	१६२५६०००	३२५१२०००

सेना का कुल मीजान ६४५१६००० इतनी सेना एक २ गणिका की होती है।

लौकांतिक देवोंका वर्णन—

ब्रह्म नामका ५ वां स्वर्गका अंत है आलय कहिये निवास स्थान जिनका, ऐसे देव लौकांतिक देव कहलाते हैं। अथवा संसारका अंत जिनका हो उन्हें लौकांतिक देव कहते हैं। क्योंकि ये देव एकबार गर्भवासमें मनुष्य जन्म लेकर निर्वाण प्राप्त करते हैं, इसीसे इन देवोंको लौकांतिक देव कहते हैं। लौकांतिक देव आठ प्रकारके होते हैं—

सारस्वत ७०७	आदित्य ७००७
वान्हि ७०७	अरुण ९००९
गर्दतोय ९००९	तुपित ११०११
अव्याबाध ११०११	अरिष्ट ११०११

ये आठ प्रकारके देव ब्रह्मलोककी पूर्वादिक आठों दिशाओंमें वसते हैं।

यहां इतना विशेष जानना चाहिये—जो अरुण नामक समुद्रमें से संख्यात योजनके मूलमें विस्ताररूप समद्रवत् वलयाकार अंधकारका समूह उत्पन्न हुआ है सो अति-तीव्र अंधकारमय परिणमा है सो ऊपर क्रमसे बढता हुआ मध्यमें और अंतमें संख्यात योजनका मोटा है सो ब्रह्म-स्वर्गका पहिले पटलका अरिष्ट नाम विमानके अधोभाग को प्राप्त होकर कुक्कुटकी कुटीवत् अवस्थित होकर उसके ऊपर अरिष्ट नामक इन्द्रक विमानके [illegible] रूप चारों

उत्कृष्ट आयुसे अधिक होती है।

कल्पवासिनी देवियों की आयु—

सौधर्म स्वर्गमें ५ पल्य, ईशानमें ७ पल्य, सानत्कुमारमें ९ पल्य, माहेन्द्रमें ११ पल्य, ब्रह्ममें १३ पल्य, ब्रह्मोत्तरमें १५ पल्य, लांतवमें १७ पल्य, कापिष्टमें १९ पल्य, शुक्रमें २१ पल्य, महाशुक्र में २३ पल्य, सतारमें २५ पल्य, सहस्रारमें २७ पल्य, आनतमें ३४ पल्य प्राणतमें ४१ पल्य, आरणमें ४८ पल्य, और अच्युतमें ५५ पल्यकी आयु होती है। सोलह स्वर्गोंके ऊपर देवियां नहीं होती हैं।

दक्षिणका इन्द्र, उसकी पट्टरानी महादेवी नामकी शची, दक्षिणके लोकपाल ये एक भवावतारी होते हैं। बाकीके एक भव लेवें या ज्यादा लेवें नियम नहीं है। परंतु लौकांतिक देव और सर्वार्थसिद्धिके देव एक भवसे ज्यादा नहीं धारण करते।

देवोंका स्वासोच्छ्वास और आहार विधि-

जिस देवकी जितने सागरकी आयु होती है वह देव उतने पक्ष बीतनेपर श्वासोच्छ्वास लेता है, तथा उसके उतनेही हजार वर्ष बीतनेपर आहार की इच्छा पैदा होती है। जब इच्छा पैदा होती है, उसके अनुकूल उनके कंठमेंसे

अमृत झड जानेसे इच्छा सांत होजाती हैं। ऐसा देवोंके पुण्यका संयोग है।

देवोंके उत्पन्न होने वादकी विधि—

एक अंतमुहूर्तमें छह पर्याप्ति पूर्ण कर सर्वांग सुंदर शरीरसहित शोभायमान होजाता है। देव जवभी उपजता है तब शासक देव वाजे बजाते हैं। जय २ शद्ध करते हैं। तब अवधि ज्ञानसे वह विचार करता हैं। पीछे अपने विभवको देखकर सुखी होता है। वादमें अमृतकुंडमें स्नानकर श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजन करता है। ऐसा नियम है। सम्यग्दृष्टि हो या मिथ्यादृष्टि हो। पीछे मिथ्यात्वरूपमें वदल जाता है।

उपजते समय देव मिथ्यादृष्टि भी हो तो भी भगवान जिनेन्द्रदेवकी अभिषेकपूर्वक पूजन करें ही करें। सम्यग्दृष्टि देव तो विना संवोधन कियेही पूजन करें। इस प्रकार देवपर्याय संवंधी वर्णन किया, कहीं २ उनके वैभवकाभी वर्णन किया देवोंमें शासनभी होता है तथा पुण्यवान देवोंके वैभवको देखनसेभी मानसिक पीडा होती है इससे देवगतिमें भी सुख नहीं होता है।

देवायुके आस्रवका सवैया—

देव धर्म गुरुस्थान आयतन, पूजादान शास्त्र अनुराग
 व्रततप संयम शीलभावना दयादान मृदुवचन सुहाग ।
जलरेखा समक्रोध बालतप कामनिर्जरा मंद सराग
 इत्यादिक देवास्रवहेतुक कहे गुरु उर धारि विराग ॥
इस प्रकारके कर्तव्य करने वालोंके देवायुका आस्रव होता है।

देवगतिमें दुःखोंका वर्णन—

देवनकेंभी मानसीक दुख अन्य ऋद्धि देखें दुख होय ।
 मित्रवल्लभा वियोगके दुख इष्टवियोग शोक दुख होय ॥
वाहन अरू अपमान होनका आज्ञा अरु ऐश्वर्य जु होय
 एक स्थानमें खडे होनका इन्द्रसभा प्रवेश न होय ॥
अवधि विक्रिया विभव ऋद्धिको देखे हीन अधिक उ माही ।
 मुरझावें षट्मास प्रथमही माला ताकर रूदन कराहिं ।
देवलोकसे चयन होनकर थावर पशु गर्भ दुख पाय ।
 इत्यादिक दुख देवगतीके कहूं नहीं सुन चतुगति माहिं ॥

अनुदिश और उत्तरोंके नाम—

१ आर्चि २ अर्चिमालिनी ३ वैर ४ वैरोचन ५ सोम ६ सोमरूप ७ अंबु ८ स्फटिक ९ आदित्य इस प्रकार अनुदिशके नव विमान ।

(१) विजय (२) वैजयंत (३) जयंत (४) अपराजित

(५) सर्वार्थसिद्धि । ये पांच अनुत्तरोंके नाम हैं ।

सर्वार्थसिद्धिके देव तो नियमसे एक भवावतारीही होते हैं । बाकीके नव अनुदिश और चार अनुत्तर विमान वाले देव एक भव भी लेवें दो भव भी लेवें पर इससे ज्यादा भव नहीं लेते । दूसरे भव तो नियमसे मोक्ष प्राप्त करते हैं ।

इस प्रकार देवोंके निकायोंमें आयुके अंतके छह मास रह जाते हैं तवही इनके आगामी भवकी आयुकर्मका वंध होता है । और ये लोग ३२ गुणोंसे युक्त होते हैं । इनके परभवकी आयु ५ प्रकारकी वंधती है जैसे—

देव मरे गति पंच लहाय,
भू, जल, तरुवर, नर, पशु थाय ।

देव पृथिवीकाय जीव होजाते हैं । जलकाय होजाते है । व वृक्षमें जाकर उत्पन्न होजाते हैं और मनुष्योंमें भी उत्पन्न होते हैं तथा पशु भी होजाते हैं । इतनी बात जरूर है कि देव मरकर फिरसे देव नहीं होते और न मरकर नारकियोंमें जन्म लेते हैं ।

इस प्रकार चारों निकायोंके देवोंका यथाशास्त्र वर्णन किया ।

देवायुके आस्रवका सवैया—

देव धर्म गुरुस्थान आयतन, पूजादान शास्त्र अनुराग
व्रततप संयम शीलभावना दयादान मृदुवचन सुहाग।
जलरेखा समक्रोध बालतप कामनिर्जरा मंद सराग
इत्यादिक देवास्रवहेतुक कहे गुरु उर धारि विराग॥

इस प्रकारके कर्तव्य करने वालोंके देवायुका आस्रव होता है।

देवगतिमें दुःखोंका वर्णन—

देवनकेंभी मानसीक दुख अन्य ऋद्धि देखें दुख होय।
मित्रवल्लभा वियोगके दुख इष्टवियोग शोक दुख होय॥
वाहन अरू अपमान होनका आज्ञा अरु ऐश्वर्य जु होय
एक स्थानमें खेड होनका इन्द्रसभा प्रवेश न होय॥
अवधि विक्रिया विभव ऋद्धिको देखे हीन अधिक उमाही।
मुरझावें षट्मास प्रथमही माला ताकर रूदन कराहिं।
देवलोकसे चयन होनकर थावर पशु गर्भ दुख पाय।
इत्यादिक दुख देवगतीके कहूं नहीं सुन चतुगति माहिं॥

अनुदिश और उत्तरोंके नाम—

१ आर्चि २ अर्चिमालिनी ३ वैर ४ वैरोचन ५ सोम ६ सोमरूप ७ अंबु ८ स्फटिक ९ आदित्य इस प्रकार अनुदिशके नव विमान।

(१) विजय (२) वैजयंत (३) जयंत (४) अपराजित

(५) सर्वार्थसिद्धि। ये पांच अनुत्तरोंके नाम हैं।

सर्वार्थसिद्धिके देव तो नियमसे एक भवावतारीही होते हैं। बाकीके नव अनुदिश और चार अनुत्तर विमान वाले देव एक भव भी लेवें दो भव भी लेवें पर इससे ज्यादा भव नहीं लेते। दूसरे भव तो नियमसे मोक्ष प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार देवोंके निकायोंमें आयुके अंतके छह मास रह जाते हैं तबही इनके आगामी भवकी आयुकर्मका बंध होता है। और ये लोग ३२ गुणोंसे युक्त होत हैं। इनके परभवकी आयु ५ प्रकारकी बंधती है जैसे—

देव मरे गति पंच लहाय,
भू, जल, तरुवर, नर, पशु थाय।

देव पृथिवीकाय जीव होजाते हैं। जलकाय होजाते हैं। व वृक्षमें जाकर उत्पन्न होजाते हैं और मनुष्योंमें भी उत्पन्न होते हैं तथा पशु भी होजाते हैं। इतनी बात जरूर है कि देव मरकर फिरसे देव नहीं होते और न मरकर नारकियोंमें जन्म लेते हैं।

इस प्रकार चारों निकायोंके देवोंका यथाशास्त्र वर्णन किया।

मनुष्यगति वर्णन—

मण्णंति जदो णिच्चं मणेण णिउणा मणुक्कडा जम्हा
मण्णुब्भवा य सव्वे तम्हा ते माणुसा भणिदा ॥ १४८ ॥
जीवकाण्ड ॥

अर्थ—जो नित्यही हेय, उपादेय, तत्व अतत्व, धर्म अधर्मका विचार करें, और जो मनके द्वारा गुण दोषादिका विचार स्मरण आदि कर सकें जो पूर्वोक्त मनके विषयमें उत्कृष्ट हों, तथा युग की आदिमें जिन्हें आदिनाथ भगवान तथा चौदह कुलहरोंनें व्यवहारका उपदेश दिया हो इसलिये जो आदीश्वर भगवान तथा कुलहरोंकी संतान कहे जाते हों उनको मनुष्य कहते हैं।

मनुष्य कहां २ पाये जाते हैं ?

पुष्कर नामा तीसरा द्वीप सोलह लाख योजन-विस्तारवाला है। इस द्वीपके वीचोंवीच वलयाकृति चारोंतरफ सुवर्णवर्ण मानुषोत्तर नामा पर्वत है वह सत्तरह सौ इकईश योजन ऊंचा है एक हजार वाईस योजन मूलमें चौडा है। चार सौ तेतीस योजन एक कोसकी इसकी पृथ्वीमें नीव है। सात सौ तेईस योजनका इसका मध्यका विस्तार है। चार सौ चोवीस योजनका ऊपरका विस्तार है। मनुष्य लोककी तरफ भीति समान सपट सूधा है इस पर्वतके होने

से पुष्कर द्वीपके दो भाग होगये हैं इसीसे इस द्वीपको पुष्करार्ध कहते हैं सो मानुषोत्तर पर्वत के इसी तरफ अढाई द्वीपमेंही मनुष्य पाये जाते हैं। जंबूद्वीप, धातकी द्वीप, लवणोदधि, कालोदधि समुद्र और आधे पुष्कर द्वीप पर्यंतही मनुष्य हैं। अढाई द्वीपके आगे ऋद्धिधारी तथा विद्याधारोंका भी गमन नहीं है। उपपाद समुद्घात वा मरणांतिक समुद्घात विना अन्यका गमन नहीं है।

मनुष्य दो प्रकारके होते हैं (१) आर्य [२] म्लेच्छ। आर्य मनुष्य दो प्रकारकें होते हैं (१) ऋद्धिप्राप्त (२) अनृद्धि प्राप्त। आठ प्रकारकी ऋद्धियोंमेंसे कोई ऋद्धि जिनके उपजी होय वे तो ऋद्धि प्राप्त आर्य हैं और जिनके कोई ऋद्धि उत्पन्न न हुई हो उन्हें अनृद्धि प्राप्तार्य कहते हैं।

अनृद्धि प्राप्तार्योंके भेद व उनकी पहिचान—

अनृद्धिप्राप्तार्य पांच प्रकारके होते हैं १ क्षेत्रार्य, २ जात्यार्य, ३ कर्मार्य, ४ चारित्रार्य, ५ दर्शनार्य। काशी अयोध्या कोसलादि आर्य देशोंमें उत्पन्न मनुष्य क्षेत्रार्य हैं।

इक्ष्वकुवंश भोजवंशादिमें उत्पन्न हुए जाति आर्य हैं। कर्म आर्य तीन प्रकारके होते हैं १ सावद्यकर्मार्य २ अल्प सावद्य कर्मार्य ३ असावद्य कर्मार्य।

सावद्य कर्मार्य छह प्रकारके हैं—असि, मसि, कृषि,

विद्या, शिल्प, वाणिज्य ।

तलवार आदिक आयुध धारणकर जीविका करनेवाले असि कर्मार्य हैं।

आय व्ययको लिखकर आजीविका करनेवाले मषि-कर्मार्य हैं।

हल दांतला इत्यादि खेतीके उपकरणोंसे खेती करके जीविका करनेमें प्रवीण कृषिकर्मार्य हैं ।

आलेख्य गणितादिक ७२ कलामें प्रवीण विद्या-कर्मार्य हैं ।

धोबी, नाई, कुम्हार, लुहार, सुनार इत्यादिक शिल्पार्य हैं ।

घृतादि रस, शाल्यादि धान्य, कार्पास वस्त्रादिक, मुक्ताफल माणिक्यादिक नानाप्रकारके द्रव्यके संग्रह करने-वाले वणिककर्मार्य हैं । ये छहों अविरती होनेसे सावद्य-कर्मार्य हैं। विरताविरत परिणत जे श्रावक अल्पसावद्य-कर्मार्य हैं । सकलव्रती साधु असावद्यकर्मार्य हैं ।

चारित्रार्य दो प्रकारके हैं, १ अभिगतचारित्रार्य, २ अनभिगतचारित्रार्य ।

विना उपदेशही चारित्र मोहके उपशम, क्षय, क्षयोप-शमसे आत्माकी उज्वलतासेही चारित्रपरिणामको ग्रहण करें ऐसे उपशांतकषाय गुणस्थानको धारण करनेवाले तथा

क्षीणकषायी जीव अभिगतचारित्रार्य हैं। अंतरंगमें चारित्र मोहके क्षयोपशमसे बाहरमें उपदेशके निमित्तसे संयमरूप परिणामको धारण करनेवाले अनभिगत चारित्रार्य हैं।

दर्शनार्य दश प्रकारके हैं और वे आज्ञामार्गादि भेद सेही दश प्रकारके हैं जिनका वर्णन ऊपर होचुका है। इस प्रकार अनृद्धिप्राप्तार्य ५ प्रकारके होते हैं।

ऋद्धि प्राप्तार्य आठ प्रकारके होते हैं— बुद्धि, क्रिया, विक्रिया, तप, वल, औषध, रस और क्षेत्र। इनमेंसे बुद्धि ऋद्धि १८ प्रकार है—केवल ज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान, बीजबुद्धि, कोष्टबुद्धि—पादानुसारिणी, संभिन्न-संश्रोतृ, दूरास्वादनसमर्थता, दूरदर्शनसमर्थता, दुरस्पर्शन दूरघ्राण दूरश्रोतृसमर्थता, दशपूर्वित्व, चतुर्दशपूर्वित्व अष्टांगनिमित्तज्ञता, प्रज्ञाश्रमणत्व, प्रत्येकबुद्धत्व, वादित्वं। इनमेंसे केवलज्ञान, अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान इनका लक्षण पहिले कह दिया गया है। बाकीका स्वरूप कहते हैं—

जैसे जोते हुए खेतमें कालादिकी सहायतासे बोया गया एक बीज अनेक करोड बीजका देनेवाला होता है। उसी तरह नोइन्द्रियावरण और वीर्यांतरायके क्षयोपशमकी अधिकतासे एक बीजपदको ग्रहण करनेसे अनेक पद और उनके अर्थको जानना होजाय सो बीजबुद्धि ऋद्धि है।

जैसे एक कोठेमें रक्खे हुए न्यारे २ बहुत प्रकारके

धान्यके बीजादिक हैं। वे बहुत समयतक कोठेमें जितनेके तितने रक्खे रहते हैं, न तो घटते हैं, और न बढते हैं, न परस्पर मिलते हैं, जब सम्हाले जाते हैं तो वैसेके वैसे मिलते हैं। उसी प्रकार परके उपदेशसे ग्रहण किये गये जो बहुतसे शब्द अर्थ बीज उनका बुद्धिमें ज्योंका त्यों अवस्थान रहै एकभी अक्षर तथा अर्थ घटे बढे नहीं अक्षर आगे पीछे होंय नहीं सो कोष्ठबुद्धि ऋद्धि है।

ग्रंथके आदि मध्य व अंतके एक पदके श्रवण से संपूर्ण ग्रंथ व अर्थ का निश्चय हो जाना सो पादानुसारित्व ऋद्धि हैं।

चक्रवर्ती का कटक बारह योजन लंबा नव योजन चौडा पडता है। उसमें हाथी, घोडा, ऊंट, बैल धनुप आदिके नानाप्रकारके अक्षर अनाक्षरात्मक शब्द होते हैं उन को एक साथ जानना, एक साथ उत्पन्न हुए शब्दोंको तपके बलसे जीवके सब प्रदेशोंमें श्रोतेन्द्रियावरण कर्मका क्षयो पशम होता है इससे अलग २ श्रवण करना सो संभिन्न-संश्रोतृ ऋद्धि है।

तप विशेपसे प्रगट हुआ जो असाधारण रसनेन्द्रिय श्रुतज्ञानावरण वीर्यांतरायका क्षयोपशम और आंगोपांग नाम कर्मका उदय जिसके ऐसे मुनिके रसनाका विपय नौ योजन प्रमाण, उसके बाह्य रूप से रसके स्वाद के

जानने का सामर्थ्य सो दूरास्वादन सामर्थ्य ऋद्धि है। इसी प्रकार स्पर्शेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, श्रोत्रेन्द्रिय चक्षुरिन्द्रिय इनके विषयके क्षेत्रसे बाह्य बहुत क्षेत्रके स्पर्श गंध शब्द रूपके जाननेकी सामर्थ्यका होना सो पाचों इन्द्रिय संबंधी पंच ऋद्धिएं हैं।

महारोहिणी आदिक विद्यादेवता तीनबार आवें और हरएक अपना २ स्वरूप सामर्थ्य प्रगट करें ऐसी वेगवान विद्यादेवताओंके लाभादिसे जिनका चारित्र चलायमान न हो वे दशपूर्व रूप दुस्तर समुद्रके पारको प्राप्त होने वाले मुनि उनके दशपूर्वित्व ऋद्धि होती है। संपूर्ण श्रुतकेवलीपना सो चतुर्दशपूर्वित्व ऋद्धि है

अंतरिक्ष-भौम-अंग-स्वर व्यंजन-लक्षण-छिन्न-स्वप्न नामके अष्टांग निमित्तज्ञान हैं।

सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्रों के उदय अस्तादिको देख कर भूत भविष्यतके फलका कहना सो अंतरिक्षनिमित्तज्ञान है। (२) पृथ्विकी कठोरता कोमलता सचिक्कणता रूक्षतादिक देख विचारकर वा पूर्वादिक दिशामें सूत्र पडते देखकर हानि, वृद्धि, जय, पराजय, इत्यादिका जानना, तथा पृथ्विमें रहने वाले स्वर्ण चांदीका प्रकट जानना सो भौमनिमित्त ज्ञान है (३) अंग उपंगादिके दर्शन स्पर्शादिकर त्रिकालभावी सुख दुःखादिका

जानना सो अंगनिमित्तज्ञान है। [४] अक्षर अनक्षर रूप शुभ अशुभके श्रवण कर इष्ट अनिष्ट फलका प्रगट करना सो स्वरनिमित्त ज्ञान है। (५) शिर, मुख, गर्दन, आदिमें तिल, मुसल, सन इत्यादिको देखकर त्रिकाल संबंधी हिताहितका जानना सो व्यंजन निमित्त ज्ञान है। (६) श्रीवृक्ष, स्वस्तिक, भृंगारकलश, आदि चिन्ह शरीर में देखने से तीन कालमें पुरुषके स्थान, मान, ऐश्वर्यादि विशेषको जानना सो लक्षणनिमित्त ज्ञान है (७)वस्त्र शस्त्र, छत्र, उपानत, अशन, शयनादिमें देवमनुष्य राक्षसादिसे तथा शस्त्र कंटकमुखी आदिद्वारा छेदे गये हों उनके देखने से त्रिकाल संबंधी लाभ अलाभ सुख दुख का जानना सो छिन्ननिमित्त ज्ञान है (८) वात पित्त श्लेष्म दोषोंसे रहित पुरूषके पिछली रात्रिमें चन्द्रमा सूर्य पृथ्वी पर्वत समुद्र के मुखमें प्रवेशादि होना सो शुभस्वप्न है। घृत तैल से अपने शरीर का लेप करना तथा गधा ऊटके ऊपर चढकर दक्षिण दिशामें गमन करना आदि अशुभ स्वप्न है। इनके देखने से आगामी काल में जीवन मरण सुख दुःखादिका प्रगट करने वाला स्वप्न नामा निमित्तज्ञान है। इन आठ प्रकार के निमित्त ज्ञान का ज्ञाता हो सो अष्टांगनिमित्तज्ञ ऋद्धि है। कोई अतिसूक्ष्म अर्थके स्वरूपका विचार जैसा हो उसमें चौदह पूर्व के धारी ही निरूपण कर सकें अन्य

नहीं कर सके ऐसे सूक्ष्म अर्थका जो संदेह रहित निरूपण करना सो प्रकृष्ट श्रुतज्ञानावरण और वीर्यांतरायके क्षयोपशम से प्रकट भई जो प्रज्ञाशक्ति उसको प्रज्ञाश्रमणत्व ऋद्धि कहते हैं।

दूसरेके उपदेशके विनाही अपनी शक्ति विशेपसे ज्ञान संयम शक्तिके विधानमें निपुणताका होना सो प्रत्येक बुद्धता है। इन्द्रभी आकर वाद करे तो उसकोभी निरुत्तर कर दे पर आप न रुके, वादीके छिद्रको जान ले सो वादित्वर्द्धि है। इस प्रकार १८ तरहकी बुद्धिऋद्धि है।

विक्रियर्द्धि दो प्रकारकी होती है १ आकाशगामित्वर्द्धि २ चारणर्धि। इनमेंसे चारणर्द्धि अनेक प्रकारकी है। जलके ऊपर भूमिकी तरह चरणोंका उठाना धरना करते भी जलकायके जीवोंको बाधा नहीं होना जलचारणर्धि है। भूमिसे चार अंगुल ऊंचे आकाशमें जंघा उठाकर शीघ्रतासे सैकडों योजन चलनेमें समर्थ होना सो जंघाचारण है। इसी प्रकार तंतुचारण, पुष्पचारण, पत्रचारण, श्रेणीचारण, अग्निशिखाचारण, इत्यादि चारणर्द्धि हैं। जो पुष्पफलादिके ऊपर चलते हुए भी पुष्प, फल, पत्र, अंकुर, अग्नि इत्यादिकोंके जीवोंको बाधा न होय सो सब चारणर्धि हैं। पर्यंकाशन बैठ कायोत्सर्गसे खडे २ पैरोंके उठाने धरने विना आगमनमें गमन करनेमें कुशल जो मुनि उनके

आकाशगमनऋद्धि होती है।

विक्रियर्द्धि अनेक प्रकारकी होती है—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, अप्रतिघात, अंतर्धान, कामरूपित्व इत्यादि। अणुमात्र शरीरका करना सो अणिमा है। जिससे कमलके छिद्रमें प्रवेशकर वहां बैठ चक्रवर्तीकी विभूति रचे ऐसी सामर्थ्य हो जाती है।

मेरुसे भी महान शरीर करनेकी सामर्थ्य सो महिमा है। वज्रसे भारी शरीरका करना सो गरिमा है। वायुसे भी लघुतर शरीर करनेकी सामर्थ्य करना सो लघिमा है। भूमिपर बैठकर मेरुकी शिखर व सूर्यविमानादिकका स्पर्श करना सो प्राप्तिऋद्धि है। जलमें पृथ्वीकी तरह चलनेकी सामर्थ्य और भूमिपर जलकी तरह उन्मज्जन निमज्जन करनेकी सामर्थ्य सो प्राकाम्यऋद्धि है। त्रिलोकके प्रभुत्व रचनेकी सामर्थ्य सो ईशत्व ऋद्धि है। देव दानव मनुष्यादिके वश करनेकी सामर्थ्य सो वशित्वर्द्धि है। पर्वतादिमें आकाशकी तरह गमनागमन करनेकी सामर्थ्य सो अप्रतिघातर्द्धि है। अदृश्य होनेकी सामर्थ्य सो अंतर्द्धानर्द्धि है। एक साथ अनेक आकार रूप करनेकी सामर्थ्य सो काम रूपित्वर्द्धि है। इस प्रकार अनेक प्रकार विक्रयर्द्धि है तप ऋद्धि सात प्रकार है—जो एक उपवास वा बेला,

तेला, पंचोपवास, पक्षोपवास, आदिमेंसे कोई योगका आरंभ हुआ हो तो भी मरणपर्यंत उपवासोंसे हीन पारणा नहीं करे, कोई कारणसे अधिक उपवास होजाय तो उससे मरण पर्यंत कमती उपवास कर पारणा नहीं करना ऐसा सामर्थ्य प्रकट होना सो उग्रतपर्द्धि है ॥१॥ महान उपवासादिके करते हुए भी मन, वचन, कायका बल बढताही जाय, दुर्गंध रहित मुख रहे, कमलादिकी सुगंधवत सुगंधित स्वास निकले और शरीरकी दीप्ति प्रकट हो सो दीप्तितपर्धि है ॥ २ ॥ तपे हुए लोहेके कडाहेमें पडे हुए जलके कणकी तरह आहार सूख जाय, मलरुधिरादि रूप नहीं परिणमे, ऐसे आहार करते हुएभी नीहार नहीं हो सो तप्तऋद्धि है ॥३॥ सिंहविक्रीडितादि महान तपके करनेमें तत्पर सो महान् तपर्द्धि है ॥४॥ वात पित्त श्लेष्म सन्निपातसे उत्पन्न हुए ज्वर कास स्वास नेत्रशूल कोढ प्रमेहादिक अनेक प्रकारके रोग हों तो उनसे संतापित है देह जिनका तो भी अनशन कायक्लेशादिक तपसे नहीं चिगते और भयानक श्मशान, पर्वतके शिखिर, गुफा, दहाडा, कंदरा, शून्य ग्रामादिक में दुष्ट राक्षस पिशाचादि के प्रवर्ते वेतालरूप विकारोंके होते हुए भी तथा कठोर स्यालिनीके रुदन तथा निरंतर सिंहव्याघ्रादि दुष्ट जीवोंके भयानक शब्द जहां हमेशा होते रहते हैं ऐसे भयंकर

स्थानोंमें निर्भय होकर वसना। ऐसा घोर तप ऋद्धिका प्रभाव है ॥५॥ पहिले कहे हुए रोगोंसे युक्त और अति भयंकर स्थानोंमें वसते हुए भी तपके योग वढानेमें तत्पर सो घोर पराक्रम ऋद्धिके धारक हैं ॥६॥ वहुत कालसे ब्रह्मचर्यके धा क मुनियोंके अतिशयरूप चारित्रमोह कर्म के क्षयोपशमसे नाश होगये हैं खोटे स्वप्न जिनके ऐसे मुनि घोर ब्रह्मचर्य ऋद्धिके धारक हैं ॥७ इस प्रकार सात प्रकारकी तप ऋद्धियोंके स्मरण करनेमात्रसे करोडों विघ्न नाशको प्राप्त होते हैं और अपरिमित शक्ति प्रकट होती है।

मन वचन कायके भेदसे वलर्द्धि तीन प्रकारकी है–

मनःश्रुतज्ञानावरण और वीर्यांतरायके क्षयोपशमके प्रकर्ष होते हुए अंतर्मुहूर्तमें सारे श्रुतके अर्थके चिंतवनकी सामर्थ्य जिनके हो वे मनोवलर्द्धिके धारक हैं ॥१॥ मनः इन्द्रियावरण और जिह्वाश्रुतज्ञानावरण तथा वीर्यांतरायके क्षयोपशमके अतिशय होते हुए अंतर्मुहूर्तमें सकल श्रुतके उच्चारण करनेका सामर्थ्य हो वा निरंतर उच्च स्वरसे उच्चारण करते हुए भी पसीना नहीं उत्पन्न हो और कंठ वा स्वरभंग नहीं हो सो वचनवलऋद्धि है ॥२॥ वीर्यांतराय के क्षयोपशमसे असाधारण कायका वल प्रकट होते मासिक, चातुर्मासिक वार्षिक प्रतिमायोग धारतेभी शरीर

खेदरूप नहीं हो सो कायबल ऋद्धि है ॥३॥ औषध ऋद्धि आठ प्रकारकी है—आम, क्ष्वेल, जल, मल, विट्, सर्वौषधि, आस्याविष, दृष्टिविष। असाध्य भी रोग होय तो जिनके हाथ चरण आदिके स्पर्श होतेही सब रोग चले जांय सो आमर्पोषधि ऋद्धि है ॥ १ ॥ जिनके थूक, लार, कफादिके स्पर्शसे ही रोग मिटजाय सो क्ष्वेलौषधि ऋद्धि है ॥ २ । जिनके देहके पसेवके रजके स्पर्शसे रोग मिटजाय सो जलौषधि ऋद्धि है ॥ ३ ॥ जिनके कर्ण, दंत, नासिका, नेत्रोंका मल ही समस्त रोगोंके दूर करने का कारण हो सो मलौषधि ऋद्धि है । ४ ॥ जिनका मल मूत्र ही औषधि रूप हो सो विडौषधि ऋद्धि है ॥ ५ ॥ जिनका अंग, उपांग, नख, दंत केशादिकके स्पर्श होने पर समस्त रोग दूर हो जाय सो सर्वौषधि ऋद्धि है ॥ ६ ॥ तीव्र विषका मिला हुवा आहार जिनके मुखमें प्रवेश होते ही विषरहित होजाय तथा जिनके वचनसे ही विष कर व्याप्त जीवोंका विष दूर होजाय सो आस्याविष ऋद्धि है ।

जिनके देखनेसे महान विषधारी जीवों के विष दूर हो जाते हैं तथा किसीको विष चढा होय उसका विष दूर हो जाय सो दृष्टिविष ऋद्धि है ॥ ८ ॥ रसऋद्धि छह प्रकार है- उत्कृष्ट तपस्वी क्रोधी होकर कभी कह दे कि

तुम मरजाओ तो तत्काल विप चढकर मरजावे (परन्तु वे ऐसा कहते नहीं हैं) उसको आस्यविपार्द्धि कहते हैं ॥ १ ॥ कभी ऋद्धिधारी मुनि क्रोधयुक्त दृष्टिसे देख लेवें तो विप चढकर मरजाय इसको दृष्टिविप ऋद्धि कहते हैं ॥ २ ॥ जिनके हाथमें पहुंचा हुवा विरस भी भोजन क्षीररस रूप परिणम जाय तथा जिनका वचन दुर्बलोंको दूधकी तरह पुष्ट करे सो क्षीररसर्द्धि है ॥ ३ ॥ उसी तरह मिष्टरस रूप हो जानेको मधुस्रावी ऋद्धि कहते हैं ॥ ४ ॥ घृतरस रूप हो जानेको घृतस्रावी रसर्द्धि कहते हैं। ५ । अमृत-रस रूप परिणमनेको अमृतस्रावी रसार्द्धि कहते हैं ॥ ६ ॥ क्षेत्रर्द्धि भी दो प्रकार की होती है— (१) अक्षीणमहान-सर्द्धि (२) अक्षीणालयर्द्धि। लाभांतरायके प्रकर्ष क्षयोपशम वाले अतिसंयमवान मुनिको जिस भाजनसें भोजन देवे उसी भाजनमें चक्रवर्तीका समस्त कटक भोजन कर लेवे तो भी उस दिन की भोजन सामग्री नहीं घटे सो अक्षीण-महानसर्द्धि है ॥ १ ॥ ऋद्धिवाले मुनि जिस स्थानमें बैठे होय उसमें देव, राजा, मनुष्यादिक बहुतसे लोग आकर बैठ जांय तो भी सकडापन नहीं होता परस्परमें बाधा नहीं होती सो अक्षीणमहालयार्द्धि है ॥ २ ॥ ऐसे आठ प्रकारकी ऋद्धि जिन्हें प्राप्त हों वे ऋद्धिप्राप्तार्य हैं।

म्लेच्छ दो प्रकारके होते हैं (१) अन्तर्द्वीपज (२)

कर्मभूमिज।

अन्तरद्वीपज-लवणसमुद्रकी आठ दिशाओं और आठों-दिशाओंके आठ अन्तरालोंमें पाये जाते हैं, तथा हिमवान, शिखरी कुलाचल और दोनों विजयार्ध इन चारों पर्वतोंके दोनों तरफके आठों कोनोंके अन्तमें ऐसे चौवीस अंतर्द्वीप हैं, वे जंबूद्वीपकी वेदीसे चारों दिशाओंमें तिर्यक् पांच सौ योजन समुद्रमें जानेपर वहां सौ योजन विस्तार वाले चार दिशाके द्वीप हैं और चारविदिशाके वेदीसे ५ सौ योजन आगे द्वीप हैं वे पचास योजन विस्तारवाले हैं। आठ दिशाओंके अंतरालके द्वीप लवण समुद्रकी वेदीसे साढे-पांचसौ योजन आगे जाने पर पचास योजन विस्तार वाले हैं। पर्वतके अंतके आठ द्वीप हैं वे लवण समुद्रकी वेदीसे छहसौ योजन दूर हैं। पच्चीस योजन विस्तार वाले हैं। इनमें पूर्व दिशाके द्वीपमें एक जंघावाले एक टांगके मनुष्य उत्पन्न होते हैं। पश्चिम दिशाके द्वीपमें पूंछवाले मनुष्य उत्पन्न होते हैं। उत्तर दिशाके द्वीपमें वचन रहित गूंगे उत्पन्न होते हैं। दाक्षिण दिशामें सींगवाले उत्पन्न होते हैं। चारों विदिशा के द्वीपोंमें क्रम से शूशा समान कर्ण वाले और शांकुली समान कर्णवाले तथा कर्ण-प्रावरण--एक कानको बिछाले एक कानको ओढले ऐसे और लम्बेकानवाले मनुष्य उत्पन्न होते हैं। आठों अन्तर

दिशाओंमें घोडा सरीखे मुखवाले, सिंह सरिखे, भैंसा-सरीखे, शूकर सरिखे, व्याघ्र सरीखे, घुग्घु सरिखे, काक-सरिखे, वानर सरिखे मुखवाले मनुष्य होते ह । शिखरी पर्वतके अंतके संमुख द्वीपों में मेघ सरीखे, विजली-सरीखे मुखवाल मनुष्य होते हैं । हिमवान पर्वतके दोनों तरफके अंतमें मत्स्यमुख कालमुख मनुष्य हैं। उत्तर विजयार्ध पर्वतके दोनों तरफके अंतमें हाथीके समान मुखवाले तथा दर्पण मुखवाले मनुष्य हैं । दक्षिण विजयार्ध के दोनों अंतमें गायके मुखसमान और मेढाके मुख समान मुखवाल मनुष्य हैं इनमें एक जघावाले इकटगे हैं वे मिट्टी खाते हैं । गुफाओंमें रहते हैं। बाकीके वृक्षों के फल फूल खानेवाल हैं। वृक्षोंके नीचे रहते हैं। संपूर्ण अंतर्द्वीपोंके मनुष्योंकी एक एक पल्यकी आयु होती है। चौवीसों अंतर्द्वीप जलसे एक योजन ऊंचे हैं। जिस प्रकार लवण समुद्रमें दोनों तटके अंतर्द्वीप ४८ हैं उसी प्रकार कालोदधि समुद्रमें अडतालीस हैं। इस प्रकार संपूर्ण छयानवे अंतर्द्वीपोंमें कुयोगभूमियां मनुष्य हैं। कर्मभूमि के म्लेच्छ शक, यवन, शवर, पुलिंदादिक अनेक जाति के हैं। कर्मभूमि के १७० क्षेत्र हैं उनमें १७० तो आर्यक्षेत्र हैं और साढे आठ सौ म्लेच्छखंड है उनमें रहने वाले म्लेच्छ ही हैं। भरत क्षेत्र के ५ म्लेच्छ खंडों में

रहने वाले म्लेच्छ, जातिसे म्लेच्छ न होकर, कर्म से म्लेच्छ होते हैं। लब्धिसारमें उनको म्लेच्छ कहा है, सो चारित्रकी अपेक्षा कहा है। जब चक्रवर्ती वहां जाकर ३२००० स्त्रियोंसे विवाह करते हैं तब वह स्त्रियां और उनकी संतान या उनके साथ आनेवाले पुरुष वे यहां भरतक्षेत्रमें आकर मुनिका रूप धारणकर पांच महाव्रतों को धारण कर लेते हैं, मुनि होजाते हैं, ये भरत संबंधी म्लेच्छ कहलाते हैं। इनके सिवाय भरतक्षेत्रमें रहनेवाले जाति वा कर्मसे भी म्लेच्छ हुआ करते हैं और वे ऊपर बतलाए हुए शक यवनादि हैं।

आगे सुभोगभूमियोंको बतलाते हैं—

उत्तम मध्यम और जघन्यके भेदसे भोगभूमि तीन तरहकी मानी गई हैं। बीस कोडाकोडी सागरका एक कल्पकाल होता है। उत्सर्पिणी अवसर्पिणीके भेदसे काल के दो भेद बतलाये गये हैं जिनका व्याख्यान ऊपर किया गया है तो भी पुनः प्रकरणवश संक्षेपमें बतलाया जाता है। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके जो ६ भेद कालकी अपेक्षा कहे गये हैं उनमें अवसर्पिणीके प्रथम कालमें

उत्कृष्ट भोगभूमि होती है, दूसरे कालमें मध्यम भोगभूमि होती है, तथा तीसरे कालमें जघन्य भोगभूमि होती है। भोगभूमिमें दश तरहके कल्पवृक्ष होते हैं। पहिले कालके मनुष्य देवकुरु उत्तरकुरुके मनुष्योंके समान होते हैं दूसरे कालमें हरिक्षेत्रके मनुष्योंके समान होते हैं। तीसरे कालमें हैमवत क्षेत्रके मनुष्योंके समान होते हैं। तीनों भोगभूमिमें आयुका प्रमाण तीन पल्य, दोपल्य और एक पल्यका होता है। शरीरका उत्सेध तीन कोश, दो कोश और एक कोशका होता है। आहार तीन दिन, दो दिन और एक दिनके अंतरमें होता है। इनके मल मूत्र पसेवादि नहीं होते हैं, रोग नहीं होता, मरण समयमें वेदना नहीं होती, मरण समय पुरुषको उपवासी वा स्त्रीको छींक आती है। अन्य किसी तरहकी वेदना नहीं होती है। बाल वृद्ध-पनेका क्लेश नहीं होता है। भोगभूमिमें व्रतसंयम नहीं होते कोई २ के सम्यक्त्व भी होता है। लडाई झगडे नहीं होते। पृथकरूप और अपृथकरूप ऐसी दो प्रकारकी विक्रिया होती है। मरने बाद शरीर कपूरवत् उड जाता है। मरण पीछे सम्यग्दृष्टि तो सौधर्म ईशान स्वर्गमें देव होजाते हैं और मिथ्यादृष्टि जीव भवनत्रिकमें जन्म धारण करते हैं। भोगभूमिके तिर्यंचभी मरणकर देवलोकमें उत्पन्न होते हैं। वे परस्परमें ईर्षा व वैरभाव करके रहित होते हैं। तिर्यंच

चार अंगुल ऊंचे महामिष्ट तृण अमृतके समान भक्षण करते हैं। वहां घाम गर्मी शर्दीकी बाधा नहीं होती, मणिमई भूमिका है, वर्षा होती नहीं, स्वामी सेवकका भाव नहीं। छह कर्मके क्लेशसे जीविका नहीं। कल्पवृक्षोंके दिये मनवांछित भोजन, वस्त्र, आभरण, वाहन, महल, पात्र, वादित्र समस्त भोग उपभोगकी सामग्री भोगते हैं। जहांपर व्यभिचारादिक निंद्यकर्म नहीं है। विकलत्रय जीव नहीं हैं। जहांके तिर्यंच महाभद्रपरिणामी वैरविरोधरहित थलचर नभचरही हैं जलचर नहीं हैं। ऐसे भोग भूमिका वर्णन किया।

चतुर्थकाल ४२००० वर्ष कम एक कोडा कोडी सागरका होता है। इस कालमें ही पूर्ण रूपसे कर्म भूमिकी रचना होती है। केवल ज्ञानकी उद्भूति इसी कालमें होती है। चतुर्थ कालमें पैदा हुए जीव पञ्चम कालमेंभी केवल ज्ञान उत्पन्न कर मोक्ष प्राप्त करते हैं। इस कालमें मनुष्योंकी उत्कृष्ट आयु चौरासी लाख करोड पूर्वतक की होती है। जघन्य १२० वर्षकी होती है। इस कालमें मनुष्यके शरीरकी अवगाहना ५२५ धनुष्य और जघन्य २ धनुष तककी होती है। इस कालमें जीव नित्याहारी होते हैं। जीवके शरीरकी कांति स्वर्णसमान होती है। इस कालसे संयमाचरणादि रूप प्रवृत्ति होती है। मनुष्यों

की असि मषी आदि षट् कर्म रूप प्रवृत्ति इसी कालमें होती है इसीसे ये कर्मभूमि कही जाती है। क्योंकि भोगभूमिमें तो कल्पवृक्षोंसे मनुष्योंकी वृत्ति चलती है परंतु कर्मभूमिमें षट्कर्म विना किसीका काम चलता नहीं। जीव अपनी आत्मिक सिद्धि करनेके लिये धर्मसाधन इसी कालमें कर सकता है। और कालोंमें या तो धर्माचरणका मौका मिलताही नहीं, यदि मिलताभी है तो सच्ची आत्मिक सिद्धि नहीं होती। केवल विषय भोगोंकी ही सिद्धि बनती है। इस कालके जीव विशेष पुण्यवान होते हैं। मोक्ष भी इसी कालमें होती है। चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र, आदि पदवीधारी जीव भी इसी चतुर्थ कालमें पैदा होते हैं।

चौथे कालकी अवधि पूर्ण होनेबाद २१००० वर्षका पांचवां काल प्रारंभ होता है। इस कालमें कर्मभूमिका ही रचना रहती है लेकिन धर्माचरण क्रम २ से शिथिल होता जाता है। इसकी आदिमें मनुष्योंकी आयु उत्कृष्ट रूपमें १२० वर्षकी होती है और जघन्यायु २० वर्षतककी होती है। इस कालमें मनुष्योंके शरीरका उत्सेध आदिमें तो ७ हाथका होता है बादमें क्रम २ से घटकर २ हाथका रह जाता है। इस कालमें जो जीव पैदा होवेंगे वे

इष्टवियोगी और अनिष्टसंयोगी ही होवेंगे। किसी समय कुछ समयके लिये क्षणिक शांति भी प्राप्त कर सकें तो कर सकें, अन्यथा शांतिका मिलना वडा कठिन है। इस कालके जाव दुखी विशेष और पुन्यात्मा थोडे होंगे। श्रीभगवान महावीर स्वामीके मोक्ष गये पीछे छह सौ पांच वर्ष पांच माहके वीते पीछे विक्रम नामका शक राजा हुवा। उसके वाद ३९४ वर्ष सात माह वीते वाद कलंकी राजा हुवा। उसने मुनियोंके ग्रास पर कर लगाया जिससे मुनिने समाधि कीनी मरकर देव हुवा। राजाको असुरने मारा, तव राजाके कुटुम्बियोंने जैन धर्म धारण किया। इस तरह इस कालमें कलंकी और उपकलंकी राजा होंगे। कलंकी तो धर्मका मूल घातक होगा और उपकलंकी धर्मको घातेगा तो सही, पर प्रेम पूर्वक घातेगा जवरदस्ती नहीं। सो ये कलंकी उपकलंकीके ५०० सौ वर्षका अंतराल रहेगा। इस कालमें २१ कलंकी और इतनेही उपकलंकी होवेंगे। अखीरमें तीन वर्ष साढे आठ माह बाकी रहनेपर धर्मका सर्वथा नाश हो जावेगा। मनुष्य मांस भक्षीही होवेंगे। जो पुण्यात्मा होंगे वे स्वर्गमें जावेंगे। सो भी अष्टम स्वर्ग तक जा सकेंगे आगे नहीं। पापके उदय से नरकमें जावेंगे तो तीसरे तकही जावेंगे। इस कालके अंत तक धर्म राजा और अग्निका सर्वथा नाश होजावेगा। इस प्रकार इस कालके २१००० वर्ष वीत

जाने पर अतिभयंकर पाप कर्मके भोगनेके लिये २१००० वर्षका छट्ठा काल प्रारंभ होगा। इस कालके प्रारंभमें मनुष्योंकी उत्कृष्ट आयु २० वर्षकी होगी जघन्यरूपमें १५ वर्ष की। शरीरका उत्सेध शुरुमें, २ हाथका अखीरमें १ हाथका होगा। लोभी, कषाई, कृष्ण लेश्याकेधारक मांस भक्षी रौद्र परिणामी, विपरीत आचरणी धर्म परांमुख जीव ही पैदा होंगे जो मरकर नरक तिर्यंचगतिमें जन्मेंगे और वहांसे आकर इस कालमें इस क्षेत्रमें जन्म लेंगे।

इस कालमें राजा प्रजाका कोई व्यवहार न होगा, मा, बहिन, बहु, बेटी, काका, बाबा, पिता, नाना, मामा, दादा, दादी, मौसा, मौसी, फूफा, साला, बहनोई, भानजा, भतीजा, आदिका कोई व्यवहार नहीं होगा। इस समय अन्याय और अविचारित प्रवृत्ति करने वाले जीवही पैदा होंगे। इस कालमें जिनवाणीका सुनने सुनाने वाला कोई नहीं होगा। सभी मनुष्य नग्न रहेंगे। मांस मिट्टीके भक्षी होंगे। इस प्रकार छट्ठे कालके पूर्ण होनेमें जब ४९ दिन बाकी रहेंगे तब ७ प्रकारकी वर्षा होगी जैसे, १- संवर्तकनामा पवनका चलना, २-अत्यंत शीत ३-क्षाररस ४-विष ५-कठोर अग्नि ६-धूली ७-धूवां इस प्रकारके उपद्रवसे मनुष्य व तिर्यंच इनमेंसे कोईको तो देव या विद्याधर

उठा ले जावेंगे, कोई २ स्वयं गंगा सिंधु नदी और इनकी वेदी तथा छोटे २ विलोंमें जीव जा ठहरेंगे। इसके पीछे जब उत्सर्पिणी काल आवेगा तब ४९ दिन तक फिर वैसी ही ७ प्रकारकी वर्षा होती है- १. जलकी, २. दुग्धकी, ३. दहीकी, ४. घृतकी, ५. इक्षुरसकी, ६. शर्कराकी, ७. अमृतरसकी। एक प्रकारकी वर्षा ७ रोज तक होती है। सात तरहकी वर्षा ४९ दिन तक होती है। जिससे वह जमीन शीतल होजाती है। इससे जो पहिले गंगा सिंधु नदियोंकी वेदियों व विजयार्ध पर्वतकी गुफाओं में प्रविष्ट होगये थे वे सब बाहर आजाते हैं। पहिले वहां जो ह्रासता हुई थी उसकी वृद्धि होजाती है। इसीको लोग कहा करते हैं कि प्रलयके बाद ब्रह्माजी पुनः सृष्टिकी रचना करते हैं। सो ये कार्य अढाई द्वीपके दशों क्षेत्रोंमें हुआ करती है। अन्य जो कर्मभूमियां हैं उनमें नहीं। और जो इस भरतक्षेत्रमें म्लेच्छ खण्ड हैं उनमें भी नहीं होती है।

ध्यानमें रहे कि विजयार्ध पर्वत पर विद्याधरोंकी जो दो श्रेणी हैं (१) दक्षिण (२) उत्तर श्रेणी, इन दोनों श्रेणियोंमें जो ६० और ५० नगरी हैं उन नगरियोंमें करोडों गांव लगते हैं, वहां पर सदा चतुर्थ कालकी रचना रहती है। वृद्धि वा ह्रास नहीं होता है। उन नगरियोंमें नाना विद्याओंके जानकार विद्याधर मनुष्य रहते हैं।

इस प्रकार सामान्यतया जब अतिदुःखमा कालके २१००० वर्ष बीत जाने पर दूसरा काल दुषमा नामका आता है वह भी २१ हजार वर्षका ही होता है। इस कालके २० हजार वर्ष बीत चुकनेके बाद १००० वर्ष बाकी रहेंगे तब सोलह कुलकर होवेंगे उनके नाम— (१) कनक [२] कनकप्रभ [३] कनकराज [४] कनकध्वज [५] कनक-पुंगव (६) नलिन (७) नलिनप्रभ (८) नलिनराज [९] नलिनध्वज (१०) नलिनपुंगव (११) पद्म [१२] पद्मप्रभ (१३) पद्मराज (१४) पद्मध्वज (१५) पद्मपुंगव (१६) महापद्म। इनमें श्रीमान क्षायिक सम्यग्दृष्टि राजा श्रेणिक का जीव नरकसे निकलकर परमपूज्य प्रथम तीर्थंकर देव महापद्म होवेगा। ये सोलह कुलकर लोगोंको धर्मरूप प्रवृत्ति याने क्षत्रियादिक रूप कुलकी प्रवृत्ति सिखावेंगे। इसके बाद दुःखमसुषम नामका तीसरा काल आवेगा उसमें तीर्थंकरा-दिक महापुरुष होवेंगे। विशेष कथन जाननेके लिये तिलोय-पण्णत्ति या त्रिलोकसारका स्वाध्याय करना चाहिये।

यहांतक कर्मभूमिका और भोगभूमिका संक्षेपमें वर्णन किया, अब भरतक्षेत्र और ऐरावतक्षेत्रके सिवाय अढाई द्वीपमें जो भोगभूमियां हैं उनका कथन करते हैं—

इस अढाई द्वीपमे ५ मेरू पर्वत माने हैं उनके नाम-

[१]सुदर्शनमेरु [२]विजयमेरु [३]अचलमेरु (४)मंदिरमेरु (५) विद्युन्मालीमेरु । इन पांचों मेरुके भरत ऐरावतमें जब पहिला दूसरा या तीसरा काल आता है तब तक यहां भोगभूमिही रहती है।

प्रश्न— भोगभूमि कहां कहां और किस २ प्रकार होती हैं इसका खुलासा कीजिये ?

उत्तर— अढाई द्वीपके क्षेत्र जो ४५ लाख योजन विस्तार वाले गोलाकार हैं उनमें ६ वर्षपर पर्वत पूर्वसे पश्चिम तक लंबे इस प्रकार पडे हैं जिनसे जंबूद्वीपादिके ७-७ विभाग होगये हैं। इसका खुलाशावार वर्णन ऊपर आचुका है इससे वहांसे जानना चाहिये। यहां सिर्फ थोडासा दिग्दर्शन करा दिया जाता है। जंबूद्वीपके बीचों-बीच मेरु पर्वत है, उसके आजू-बाजू पर्वत व क्षेत्रादिक हैं जिनका वर्णन सिद्धांत ग्रंथोंमें विस्तार रूपसे है यहांभी नीचे एक नक्शे द्वारा परिचय दिया जाता है।

जंबू द्वीप के १००,००० योजन विस्तारका विभाग—

संख्या	नाम क्षेत्र व पर्वत	विस्तारयोजन	उंचाई	गहराई	रंग व भूमि
१	भरत क्षेत्र	५२६ $\frac{६}{१९}$	०	०	कर्मभूमि
२	हिमवन पर्वत	१०५२ $\frac{१२}{१९}$	१००	२५	सुवर्ण
३	हैमवत क्षेत्र	२१०५ $\frac{५}{१९}$	०	०	जघन्य भोगभूमि
४	महाहिमवान पर्वत	४२१० $\frac{१०}{१९}$	२००	५०	चांदीका
५	हरिक्षेत्र	८४२१ $\frac{१}{१९}$	०	०	मध्यम भोगभूमि
६	निषिध पर्वत	१६८४२ $\frac{२}{१९}$	४००	१००	तपा हुआ सोना

७	विदेह क्षेत्र	३३६८४ ४/१९	०	०	कर्म भूमि
८	नीलकुलाचल	१६८४२ २/१९	४००	१००	वैडूर्यमणि
९	रम्यक क्षेत्र	८४२१ १/१९	०	०	मध्यम भोगभूमि
१०	रुक्मिकुलाचल	४२१० १०/१९	२००	५०	चाँदी समान
११	हैरण्यवत क्षेत्र	२१०५ ५/१९	०	०	जघन्य भोगभूमि
१२	शिखरि पर्वत	१०५२ १२/१९	१००	२५	सुवर्णवत
१३	ऐरावत क्षेत्र	५२६ ६/१९	०	०	कर्मभूमि

१००,००० योजन विस्तार

इस प्रकार इस जंबूद्वीपमें जो सुमेरु पर्वत पडा है उसके उत्तरी भागमें एक तरफ तो जंबूवृक्ष है जो भरतक्षेत्रकी तरफ है। दूसरी तरफ शालमली वृक्ष है जो ऐरावत क्षेत्रकी ओर है। इस जंबूवृक्षके क्षेत्रमें और शालमली वृक्षके क्षेत्रमें सदाही उत्तम भोगभूमि है। हरिक्षेत्र और रम्यकक्षेत्रमें मध्यम भोगभूमि है तथा हैमवतक्षेत्र और हैरण्यवत क्षेत्रमें सदा जघन्य भोगभूमि है। इनमें कभी भी समयका पलटना नहीं होता है। हां इतना जरूर है कि भरत क्षेत्र तथा ऐरावत क्षेत्रमें कालकी पलटना होती है। इन दोनों क्षेत्रोंमें प्रथम कालमें उत्तम द्वितीय कालमें मध्यम और तृतीय कालमें जघन्य भोगभूमि होती है पीछे चौथे, पांचवें और छट्टे कालमें उत्तम, मध्यम और जघन्य कर्मभूमिकी रचना होती है। भरत ऐरावत क्षेत्रमें जब चौथा काल रहता है तब त्रेसठ सलाकाके पुरुषोंका या १६९ पुण्य पुरुषोंका जन्म हुवा करता है।

प्रश्न—वे १६९ पुरुष या ६३ शलाका पुरुष कौन २ होते हैं उनके नामादि कहिये ?

उत्तर-जो १६९ पुण्य पुरुष माने गये हैं उनमें शलाकाके पुरुष भी आजाते हैं। उनका खुलासा इस प्रकार है-

१४ कुलकर २४ तीर्थंकर २४ उनके पिता, २४ उनकी माताएं १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, ९ वलभद्र, ९नारद, ११रुद्र, २४ कामदेव इसतरह १६९जीव एक उत्सर्पिणी कालमें होते हैं। इतनेही अवसार्पिणीमें होते हैं। दोनों काल २० कोडाकोडी सागरके होते हैं। उनमें दो बार १६९-१६९ जीव पैदा होते हैं। इनमें कोई जीव तो चरम शरीरी होते हैं। कोई जीव थोडे काल पीछे मोक्ष जाते हैं परंतु ये जरूर है कि ये जीव थोडे कालमें मोक्ष जरूर ही पाते हैं।

जिस तरह भोगभूमिसे कर्मभूमि क्रमानुसार आती है उसी प्रकार कर्मभूमिसे भोगभुमि भी क्रमसेही आती है। इसका विशेष जानना हो तो तिलोयपण्णत्ति या त्रिलोक सार ग्रंथ देखना चाहिये।

मनुष्य गतिमें जब यह जीव जन्म लेता है तब इसको कौन २ दुःख उठाने पडते हैं उसका भी यहां थोडासा दिग्दर्शन कराया जाता है। क्योंकि यह जीव इस मनुष्य जन्मको पाकर उन दुखोंको भूल गया जो इसने थोडे समय पहिले पाये थे। और अब भी पारहा है।

—०—

मनुष्य इन पापोंसे नरकमें जाता है।

सवैया—

बहु आरंभी और परिग्रही हिंसक धर्मद्रोही स्वामि,
मित्रद्रोही विश्वास घाती चोर कृतघ्नी पर हरनाम।
यतिघाती अन्यायमारगी वनतरु घास जलाये ग्राम,
जीभ लोलुपी मद्य मांस मधु कुगुरु कुदेव कुधर्मही नाम॥१
जुवा मार्गी झूट वेश्या अभक्ष्य भक्षी तीव्रकषाय,
क्रोधी मानी मायी लोभी कल्पित ग्रंथ रचे दुखदाय।
जीव घात अरु यज्ञ होमकर निशि भोजन आरंभ कराय,
युद्धकरण वा आतिशबाजी पापोपदेश निपुणता थाय॥२॥

मनुष्य मनुष्यगतिमें इस प्रकार दुःख पाता है—

मनुष्य गतिमें गर्भदुःख अरु जन्मत मात पिता मर जाय,
पर उच्छिष्टसे क्षुधा तृषादिक दासपना अपमान कराय।
लवण तेल घृत धातू मिट्टी उपल काष्ट परस्थान धराय,
भूख प्यासकर वीस कोशकी दीर्घ भारधर मंजिल कराय॥१
पेट भरनके कारण उद्यम वस्तर धोवे छापे रंग,
सीवे वस्त्र बुने अरु पीसे दल अरु कूटे बुने पलंग।
घास अरु लकडी कंडा भांडे वेंचे ढेर बनाय उतंग,
चीरे फाडे काष्ट बुहारे ढोवे मल तरमू जन अंग॥२॥

सुवरणकार कुम्हार लुहार रु भडभूजा भट्टी चलवान,
चोरी छल अरु झूठ रु चुगली घरघर मांगत रुदन करान।
रस्ता लूटनकर संग्राम अरु विप गमनी जाय उदधि महान,
चित्रकार वादित्र गीत नृत नीच राज सेवा जु करान॥३॥
गुड अरु खांड तैल घृत लवण रु मेवा अरु औषधि पकवान,
मानक मोती सुवरण चांदी लोहा तांबा पीतल आन।
जूआ रोपण गुमास्तगीरी करे दलाली कष्ट करान,
कोई शिष्य व महंत होकर कोई दीन हो पेट भरान॥४॥
तथा एक अरु दोय तीन दिन अंतर भोजन मिलता खान,
रोकन बांधन बंदीग्रहमें हितुवियोग रोग दुर्ध्यान।
अंधा लूला वधिर पांगला गूंगा मूरख कम अंगान,
नार कलहनी अंधी लूली कटुक भाषिणी विड रूपान॥५॥
क्रोधी पुत्र पुत्री विडरूपी रोगी भूखे रुदन करान।
महा दुष्ट भाई अति वैरी दुष्ट पड़ोसी हो बलवान
लोभी दुष्टी क्रोधी कृपणी अवगुण ग्राही स्वामि मिलान,
दुष्ट कृतघ्नी चोर अधर्मी सेवक आज्ञाकारी नान॥६॥
राजा मन्त्री कोतवाल अन्याय मारगी दुष्ट मिलान,
अन्धी लूली लंगडी पुत्री और कुरूपी अति दुख दान।
तथा गुणवती पुत्रीका गुणवान जमाई मरण कराय,
मात पिता के मरने का दुख धन होते निर्धनता धाय॥७॥

माथे ऋण अरु सुत हो विसनी तथा गुणी सुत मरण कराय,
मित्र होयकर छिद्र प्रकाश तथा कलंक अपजस लग जाय।
देश निकाला राज दण्ड अरु पंच दण्ड हो मरण कराय,
इत्यादिक ये मनुष गतिके दुःख प्राप्त हो धर परियाय ॥८॥

गर्भ से लेकर वृद्ध अवस्था तक के दुःख

गर्भाशयमें जब जावे, नारक सम बहु दुख पावे।
छूट जो कोड सुई को, कर तप्त छेदे तन कोई को ॥१॥
जो दुख होवे तन माहीं, तासों अटगुन दर्शाहीं।
मल मूत्रस्थान विच रहता, मुख अधो दुःख बहु सहता ॥२॥
चावल सम चौदह दिन का, चेंटी सम इकइस दिनका।
तहां कर पग नाहीं पसारे, रुधिरादिक करहिं अहारे ॥३॥
यों नव दशमास वडे हैं, फिर निकसत पीर सहे हैं।
जन्मे जब संकट पावे, जिम यंत्री तार कडावे ॥४॥
नहिं शक्ति हलन चलने की, पय पान दुःख मेंटनकी।
मल मूत्र रुधिर लिपटाहीं, तडफ रोवे भू माहीं ॥५॥
मच्छर मक्खी कृमि खटमल, चोंटे तन रोवे पल पल।
मल मूत्र चये सोही खावे, ताकर तन रोग वधावे ॥६॥
दूखे शिर तन अरु गर्दन, नहिं जान सके शिशु दुख मन।
समझे तब भूख पितु माता, पावे पय औषधि साता ॥७॥
इस विधि दुख बालक पनका, फिर योवन स्त्री सुत धनका।
जो पुत्र कदापि न होवे, तो रोवत ही दिन खोवे ॥८॥

जो नार होय कलहारी, तो दिन भर करे खुआरी ।
या पुत्र पुत्री हो मरते, तो दिन भर दुख अति भरते ॥९॥
या पुत्र रोगी होजावे, तो लाखों द्रव्य बहावे ।
हो पुत्र विसनी दुखचारी तो दुख पावे अति भारी ॥१०
पुत्र स्त्री गुणवंत मर जावे, जब पागल सब होजावें,
विधवा पुत्री विभचारिणि, तो संकट पावे मन आवनि॥११
जो धन नहि हो घरमाहीं, तो कुटुंब न बात कराही ।
या धनीसे निधनी हो जावे, तो रात दिना दुख पावे ॥१२
जो हाट हवेली न होवे, तो जग आदर नहिं होवे ।
क्षुत् शीत उष्णके दुःखं, योवनमें नाहिं सुक्खं ॥१३
फिर बहु दुख वृद्धापनका, प्रत्यक्ष जो है नेत्रनिका ।
दृग अंध श्रवन बहिरापन, मुख लाल वहे तन कंपन ॥१४॥
अन आदर सब परिवारा, सुत मित्र भृत्यहिं दारा ।
कफ खांसी कर तडफे हैं, बहु नाशन पीड सहे हैं ॥१५।
मांगे जल कोई न देता, सब चाहें ये कब मरता ।
कोउ पकड बैठाय उठावें, तो भी कछु बात न आवे ॥१६॥
स्त्री सुत बांधव सारा, पूछें कहां द्रव्य तुम्हारा ।
जो कुछ हो सो बतलाओ, तुम तो पर लोक सिधाओ ॥१७।
जब हों कंठागत प्राणा, कछु कह ना सके दुख माना ।
यों वृद्ध अवस्था माहीं, दुख भोगे मरण कराहीं ॥१८॥

इस प्रकार मनुष्य गतिमें यह जीव महान संकट पाता है एक क्षण मात्र भी सुख नहीं पाता। ऐसे मनुष्यपनेमें दुख ही है। फिर भी यह मनुष्य पर्याय ही इस जीवको परम सुख देने वाली होती है। अच्छे से अच्छे जो कुछ कार्य यह जीव करना चाहे इसी पर्यायमे कर सकता है। संसारमें जितनेभी श्रेष्ट व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने लोकातिशायी काम किये हैं कर रहे हैं और आगे करेंगे वे सब मनुष्य ही हैं और आगे होंगे। नर देह बिना कोई जीव अपना भला नहीं कर सकता। जिन्होंने मनुष्य पर्याय धारण कर धर्म साधन किया उन्हों ने ही नरभव पाना सफल किया।

प्रश्न—कृपा कर कहिये कि वे कौन२ मनुष्य हैं जिन्हों ने नर भवको सफलकिया है?

उत्तर—आपको पहले बतलाया जा चुका है कि इस कालमें १६९ पुण्यात्मा पुरुष हुएहैं उनमेंसे बहुतोंने इस भवसे ही मुक्ति प्राप्त की है और बहुतसे शीघ्र मुक्ति प्राप्त करेंगे।

प्रश्न— उनके नाम हमको स्पष्ट रीतिसे समझाइये?

उत्तर—वे एकसौ उनसत्तर पुरुष इस तरहसे हैं-तृतीय कालमें जब पल्य का ८ वां भाग अवशेष रहा तबसे कर्मभूमि की प्रवृत्ति हुई उसी समय १४ कुलकरोंकी उत्पत्ति हुई। उनके नाम यथाक्रमसे इस प्रकार थे (१) प्रतिश्रुति [२] सन्मति [३] क्षेमंकर [४] क्षेमंधर [५] सीमंकर [६] सीमंधर

(७) विमलवाहन (८) चक्षुष्मान (९)यशस्वी (१०) अभि-चन्द्र (११) चन्द्राभ (१२) मरुदेव (१३) प्रसेनजित [१४] नाभि। ये सब्बे सत्पात्रि दानके प्रभावसे मनुष्यायु बांधकर क्षायक सम्यक्त्व प्राप्त कर क्षत्रियकुलमें उपजे। इन्होंने कर्म भूमिके प्रारंभमें जनताको कुलकी रचना बतलाई इसीसे कुलकर ये नाम पाया। इनमेंसे कितनों ने तो जातिस्मरण और किन्हींने अवधिज्ञान से जाना १८०० धनुषसे लेकर ५२५ धनुषका उत्सेध प्रमाण शरीराकार समचतरस्त्रसंस्थान वज्र वृषभनाराचसंहनन, ताये स्वर्ण के समान क्रांति धारक, शरीर पाया, जितना भी कर्म भूमि का कार्य था वह सब क्रम प्राप्त कुलकरों ने जनताको सब प्रकार सिखाया।

जब तीसरे कालका चौरासी लाख पूर्व तीन वर्ष साडे आठ माह बाकी रहे उस समय चैत्र वदी ९ को वर्तमान २४ तीर्थंकरोंमें से प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथका जन्म इक्ष्वाकुवंशमें राजा नाभिकी महारानी मरुदेवीके उदरसे हुवा। २४ तीर्थंकरोंके नाम इस प्रकार हैं १ ऋषभनाथ २ अजितनाथ ३ संभवनाथ ४ अभिनंदननाथ ५ सुमति ६ पद्मप्रभ ७ सुपार्श्वनाथ ८ चन्द्रप्रभ ९ पुष्पदंत १० शीतल ११ श्रेयांस १२ वांसुपुज्य १३ विमलनाथ १४ अनन्तनाथ १५ धर्मनाथ १६ शांतिनाथ १७ कुंथुनाथ १८ अरहनाथ १९ मल्लिनाथ २० मुनिसुव्रत २१ नमिनाथ २२ नेमिनाथ

२३ पार्श्वनाथ २४ महावीर ।

इनका खुलासा इस प्रकार है- (एक नकशा जो इस पुस्तक में है वह देखो)

इस प्रकार केवल ज्ञानको प्राप्त करनेवाले आत्माएं कई प्रकारके होते हैं—१ तीर्थंकरकेवली २ सामान्य केवली ३ दंडकपाट केवली ४ मूककेवली ५ उपसर्गकेवली ६ अंतःकृतकेवली । १—तीर्थंकर केवली उन्हें कहते है जिन्होंने पूर्वभवमें सोलह कारण भावनाएं भाकर महान पुण्य उपजाकर सब जीवोंसे वात्सल्यता धारणकर उनका हित करना चाहा इसलिये उन आत्माओंने ऐसा तीर्थंकर पद प्राप्त किया जिससे तीन लोकके जीवोंनें अपना भला किया। जिनके जन्म समय नारकी जीवोंको भी सुख मिला। विशेष रूपसे इनकी विभूति का नमूना तो सांसारिक दशा में होताही है पर समोसरणके देखनेसे मालूम किया जाता है। इनके द्वारा उपदिष्ट पदार्थके श्रवणसे भव्यात्माओंका कल्याण होता है। इनके गणधर होते हैं। इनका मुख्य चिन्ह समोसरणही होता है। इनके आगे २ धर्म चक्र चलता है।

सामान्य केवली— ये चरमशरीरीही होते हैं। कई बातों में ये तीर्थंकरोंके समानही होते हैं। इनके समोसरणकी

रचना न होकर सिर्फ गंधकुटीकीही रचना होती है। इनके गणधर जरूर होते हैं परंतु तीर्थंकर जैसी मुख्यता नहीं होती।

[३] दंडकपाट केवली-जिनके आयुकर्मके छह मास शेष रहनेपर केवल ज्ञान पैदा होता है वे नियमसे दंड-कपाट करतेही हैं। बाकीके करें या न करें औरके लिये नियम नहीं है।

[४] मूककेवली—इनके केवलज्ञान होनेके पीछे वचनवर्गणा नहीं खिरती हैं। क्योंकि उनके वचन योगके परमाणु सत्तामेंही नहीं रहते। क्योंकि केवल ज्ञान होनेके पहिलेही वचन वर्गणाएं खिर चुकती हैं इसीसे इन्हें मूककेवली कहते हैं।

उपसर्गकेवली—जो बडे २उपसर्गों को सहनकर केवल ज्ञान प्राप्त करते हैं। जैसे देशभूषण कुलभूषण या गजकुमार सुकोशल, पान्डव आदिने प्राप्त किया था। अन्तकृत्केवली-जिनको एक अंतर्मुहूर्त केवलज्ञान पैदा हुए हुआ हो, केवलज्ञान होतेही तमाम कार्मोंको नाशकर मोक्ष होगई हो। केवलियोंकी आत्मा शरीर सहित केवलज्ञान पैदा होतेही जमीनसे ५००० धनुष आकाशके प्रदेशमें ऊंची चढ जाती है समोसरणकी एक रत्नि ऊंची २००० सीढियां होती हैं। समोसरणमें १२ सभाएं होती हैं। चारमें तो देवागनाएं, चारमें देव एकमें तिर्यंच, एकमें मनुष्य, एकमें मुनि और एकमें श्राविकाएं व अर्जिकाएं होती हैं ऐसा जानना चाहिये।

प्रश्न—समोसरनमें कौन जीव नहीं जाते व किसकी रोक टोक है ?

उत्तर--सिद्धांतमें उन जीवोंकी रोक टोक समोसरणमें जानेकी मानी है जिन जीवोंके मिथ्यात्वका तीव्रोदय होता है। अभव्यत्व और असंज्ञीपन तथा अनध्यवसाय, संदेह तथा विविध प्रकारकी विपरीतता सहित होते हैं वे समोसरणमें नहीं जाते। भगवान केवलीके पुण्य प्रतापसे एक जीव दूसरे जीवको स्पर्श नहीं कर सकता, ऐसा वहां अतिशय है।

समोसरणमें मानस्तंभोंका आकार समोसरणमें तीर्थंकरोंके शरीरकी अवगाहनासे बारह गुणा होता है इस प्रकारके मानस्तंभोंको देखकर मनुष्य तिर्यंचोंका और देवोंका मान भंग होजाता है ऐसा अतिशयका महत्व है।

भगवान जिनेन्द्रके समोसरणमें पूजक लोग संमुख रहकरही पूजन करते हैं। सो भी गणधरादि महर्षि तक वहांपर पूजन दो तरहकी करते हैं १ द्रव्यपूजावाला द्रव्य से पूजा करता है २ भाव पूजावाला भावसे पूजा करता है जैसे गृहत्यागी, साधुवर्ग।

तीर्थंकर भगवानके और भी कई प्रकारके माहात्म्य हैं। कहांतक वर्णन किया जाय, यथार्थ वर्णन करनेके लिये भगवान गणधरभी समर्थ नहीं है तो हम सरीखे मंदज्ञानी कहांतक समर्थ हो सकते है। भगवानकी तीनों

कालोंमें दिव्यध्वनि तीन २ मुहूर्ततक खिरती है जिससे जीवोंका कल्याण होता है। भगवानके पुण्यमयी अतिशयसे सौ योजन तक चारों दिशाओंमें दुर्भिक्ष नहीं होता है। और अनंत प्रकारके अतिशय पैदा होते हैं। विशेष जाननेके अन्य ग्रंथोंका स्वाध्याय करना चाहिये।

तीर्थंकरोंके माता पिता—

तीर्थंकरोंके माता पिता स्वर्गोंसे आते हैं और माता स्वर्ग ही जाती है। परंतु पिताओंमेंसे कोई तो स्वर्ग जाते हैं और कोई मोक्ष जाते हैं।

बारह चक्रवर्तियोंका कथन—

१. भरत चक्रवर्तीका शरीर ५०० धनुषका और आयु ८४०००० पूर्वकी थी.

२. सगर चक्रवर्तीका शरीर ४५० धनुषका और आयु ७२ लाख पूर्वकी थी

३. मघवा चक्रवर्तीके शरीरका उत्सेध ४२॥ धनुष और आयु ५ लाख वर्षकी थी.

४. सनत्कुमार चक्रवर्तीके शरीरका उत्सेध ४१॥ धनुष और आयु ३ लाख वर्षकी.

५. शांतिनाथ चक्रवर्तीके शरीरका उत्सेध ४० धनुप और आयु १ लाख वर्षकी.

६. कुंथुनाथ चक्रवर्तीके शरीरका उत्सेध ३५ धनुप और आयु ९५ हजार वर्षकी.

७. अरहनाथ चक्रवर्ती के शरीर का उत्सेध ३० धनुष और आयु ८४ हजार वर्षकी.

८. सुभौम चक्रवर्तीके शरीरका उत्सेध २८ धनुष और आयु ६०००० हजार वर्ष की.

९. महापद्म चक्रवर्ती के शरीर का उत्सेध २२ धनुष और आयु ३०००० हजार वर्षकी.

१०. हरिषेणके शरीरका उत्सेध २० धनुष और आयु १० हजार वर्ष की.

११. जय चक्रवर्ती के सरीर का उत्सेध १५ धनुष और आयु ३ हजार वर्ष की.

१२. ब्रह्मदत्त के शरीर की अवगाहना ७ धनुष की और आयु ७ सौ वर्ष की.

इसमेंसे मघवा और सनत्कुमार चक्रवर्ती तो स्वर्ग गये हैं और सुभौम और ब्रह्मदत्त ये दोनों नरक गये और बाकी के ८ मोक्ष गये ।

चक्रवर्ती के उत्पत्ति का समय

१. ऋषभदेव के समय में भरत चक्रवर्ती हुए थे ।

२. अजित जिनके समय में सगर चक्रवर्ती हुए थे ।

३. भगवत शान्तिनाथ के पहिले मघवा तथा सनत्कुमार चक्रवर्ती हुए हैं । एवं ५. ६. ७. शान्तिनाथ, कुंथु नाथ, अरहनाथ ये तीनों अपने २ तीर्थंकरत्वके समयमेंही हुए हैं ।

८. सुभौम चक्रवर्ती भगवान मल्लिनाथ स्वामीके समयमें हुए हैं।

९. महापद्म चक्री मल्लिनाथ और मुनिसुव्रत नाथके वीचके समयमें हुए।

१०. मुनिसुव्रत और नमि जिनके वीचमें हरिषेण चक्रवर्ती हुए हैं।

११. नमि और नेमनाथ स्वामीके समयके वीचमें जय चक्री हुए हैं।

१२. नेमिनाथ और पार्श्वनाथ स्वामीके वीचमें ब्रह्मदत्त चक्री हुए हैं।

ये सभी चक्री ६ खंड पृथिवीके स्वामी होते हैं। इन की स्त्रियां ९६००० हजार होती हैं और ३२ हजार मुकुट वन्ध राजा आज्ञाकारी होते हैं। १८ करोड घोडे, ८४ लाख हाथी, नव निधि और चौदह रत्नोंके स्वामी होते हैं,। संसारके मनुष्योंमें ये ही पुरुष उत्कृष्ट सम्पात्तिवान होते हैं, दूसरा नहीं। ९ निधियां तो अचेतन ही होती हैं, उनके नाम १. काल २. महाकाल ३. माणवक ४. पिंगल ५. नैसर्प ६. पद्म ७. पांडु ८. शंख ९. रत्न। ये निधियां ऋतु-योग्य द्रव्य, भाजन, धान्य, आयुध, वाहन, वादित्र वस्त्र, हर्म्य, आभरण और हर एक प्रकारके रत्न देते हैं। इनके एक कोडाकोडी हल होते हैं। ३२ हजार सेवा करने वाले

गणवंध देव होते हैं । तीनसो साठ रसोइया होते हैं । ३६० शरीर रक्षक होते हैं, १४ प्रकारके रत्न होते हैं जिनमें सात तो सजीव होते हैं और सात ही निर्जीव होते हैं ।

सजीव ७ रत्नों के नाम

१. अश्व–पवनञ्जय २. विजयगिरी–हाथी ३. भद्र-मुख–गृहपति ४. कामवृष्टि–स्थपति ५. अयोध्य–सेनापति ६. सुभद्रास्त्री–पट्टरानी ७. बुद्धिसमुद्र–पुरोहित ।

अजीव रत्नों केनाम

१ छत्र २ असि ३ दंड ४ चक्र ५ कांकणी ६ चिन्ता-मणि ७ चर्मरत्न ।

चक्रवर्तीके बंधुवर्ग ३॥ करोड होते हैं । तीन करोड गौएं होती हैं । ८४ लाख रथ होते हैं । ८४ करोड उत्तम योद्धा होते हैं । कितनेही देव और विद्याधर मनुष्य जिनकी सेवा करनेके लिए सदा तत्पर रहते हैं । जिनके आधीन ८८ हजार म्लेच्छ राजा होते हैं । इनके जो दशांगभोग होते हैं उनके नाम—१ दिव्यपुर २ रत्न ३ निधि ४ चमू ५ भाजन ६ भोजन ७ शय्या ८ आसन ९ वाहन १० नाट्यशाला ।

इन चक्रवर्तीयोंके विभवका कहां तक वर्णन किया जाय। इनके राज्यकालको कहते हैं—

१ भरत चक्रीका राज्यकाल ६१ हजार वर्ष कम ६ लाख पूर्व का है।

२ सगर चक्रीका राज्य काल ३० हजार वर्ष कम ७० लाख पूर्वका है।

३ मघवा का ३९० लाख नव्वे हजार वर्षका है।

४ सनत्कुमारका ९० हजार वर्षका है। [५] शांतिनाथका २४२०० वर्षका [६] कुंथुनाथका २३१५० वर्ष [७] अरहनाथका२०६०० वर्षका [८] सुभौमका ४९५०० वर्षका [९] पद्मका१८७०० वर्षका [१०] हरिषेणका ८८५० वर्षका (११) जयसेनका १९०० वर्षका और (१२) ब्रह्मदत्त चक्रीका राज्यकाल ६०० वर्षका बतलाया गया है।

चक्रवर्तियोंका संयमकाल—

भरतका १००००० वर्षका, सगरका १००००० वर्षका, मघवाका ५००००, सनत्कुमारका १०००००, शांतिलाथका २५००० वर्षका, कुंथुनाथका २३७५० वर्षका, अरहनाथका २१००० वर्षका, पद्म का१०००० वर्ष, हरिषेणका ३५० वर्ष और जयसेनका ४०० वर्षका काल था। रहे दो चक्री १ सुभौम २ ब्रह्मदत्त सो ये दोनों सातवें नरक गये हैं। मघवा और सनत्कुमार दो सनत्कुमार कल्पमें (स्वर्गमें) गये, बाकीके ८ चक्री मोक्ष

गयेहैं। सभी चक्रवर्ती सुवर्ण कैसी प्रभावाले होते हैं।

नारायण, प्रतिनारायण और बलभद्र—

बलभद्र ९—१ विजय २ अचल ३ धर्म ४ सुप्रभ ५ सुदर्शन ६ नन्दी ७ नन्दिमित्र ८ राम और ९ पद्म (बलदाऊ)

नारायण ९—

१. त्रिपृष्ट २. द्विपृष्ठ ३ स्वयम्भु ४ पुरुषोत्तम ५ पुरुषसिंह ६ पुंडरीक ७ दत्त ८ नारायण ९ कृष्ण।

प्रतिनारायण ९—

१ अश्वग्रीव २ तारक ३ मेरक ४ मधुकैटभ ५ निशुम्भ ६ बलि ७ प्रहरण ८ रावण ९ जरासिंधु।

इनके शरीरकी उंचाई—

१. ८० धनुष २. ७० धनुष ३. ६० धनुष ४. ५० धनुष ५. ४५ धनुष ६. २९ धनुष ७. २२ धनुष ८. १६ धनुष और ९. की १० धनुषकी थी।

नारायण प्रतिनारायणोंकी आयुका प्रमाण—

प्रथमसे लेकर ९ वें तककी आयुका प्रमाण इस भांति था— ८४ लाख वर्ष, ७२ लाख, ६० लाख, ३० लाख, १० लाख, ६५ हजार वर्ष, ३२ हजार वर्ष, १२ हजार वर्ष और १००० वर्षकी क्रमसे जाननी चाहिये।

१ की ८७ लाख वर्ष, २ की ७७ लाख वर्ष, ३ ६७ लाख वर्ष, ४, ३७ लाख वर्ष ५, १७ लाख वर्ष की ६, ६७ हजार वर्षकी ७, ३७ हजार वर्षकी ८, १७ हजार वर्षकी और ९ वें की १२०० वर्ष की आयु थी।

ये नौ प्रतिवासुदेव अपनी आयुधशालाके उपजे हुए अपनेही चक्रसे वासुदेवके हाथसे मरते हैं। और नियमसे नरकों में जाते है।

प्रथम नारायण सप्तम नरक गया। इसके पीछे पांच नारायण छटवे नरक गये। सप्तम नानायण पांचवे नरक गया। आंठवां नारायण चौथे नरक गया और अंतिम नारायण तीसरे नरक गया है। इसी प्रकार इनके शत्रु प्रतिनारायण भी उन्हीं नरकोंमें गये हैं। जो क्रम नारायणोंका वतलाया, वही क्रम प्रति नारायणोंका समझना चाहिये।

नारायणोंके आयुधोंके नाम—

१. शक्ति २ धनुष ३ गदा ४ चक्र ५ कृपाण ६ शंख और ७ दंड।

बलदेवोंके आयुध—

१ मूसल २ हल ३ रथ और ४ हार इस तरह इनके पास चारही आयुध होते हैं। सब नारयण निदानबंध

करनेवाले होते हैं और बलदेव विदान रहित होते हैं। पहिले ८ बलदेव मोक्ष गये हैं और नवमां बलदेव ब्रम्ह स्वर्ग गया है। जब कृष्णका तीर्थ आवेगा तब वहभी मोक्ष जायगा।

नारायणोंका विभव या राज्यशासन

जैसे चक्रवर्ती छह खंडका राजा होता है एक भरत और ५ म्लेच्छ खंड, उसी तरह नारायण प्रतिनारायण भरत (आर्यखंड) और उसीसे लगे हुए दो म्लेच्छ खंड ऐसे तीन खंडका शासक होता है। पहिले प्रतिनारायण राजा होता है फिर इसको मारकर नारायण राज्य करते हैं ऐसाही शास्त्रोंमें वर्णन है।

१ त्रिपृष्ठ नारायणका जो कुल समय ८४ लाख वर्ष बतलाया है, उसमें कुमारकाल २५००० वर्ष, २५००० वर्ष, विजयकाल १००० वर्ष, पूर्ण राज्यकाल ८३४९००० वर्षका है।

२. द्विपृष्ठका समय कुल ७२ लाख वर्षका है जिसमें कुमार काल २५००० वर्षका, मंडलीक काल २५००० वर्षका, विजयकाल १०० वर्षका पूर्ण राज्यकाल ७१४९९०० वर्षका है।

स्वयंभू नारायणका समय ६० लाख वर्षका है जिसमें कुमारकाल १२५०० वर्षका, मंडलीककाल १२५०० वर्ष

का, विजयकाल ९० वर्षका, और पूर्ण राज्यकाल ५९७४-९१० वर्षका है।

४ पुरुषोत्तम नारायणका समय ३० लाख वर्षका है जिसमें कुमारकाल ७०० वर्ष मंडलीक काल १३०० वर्ष विजयकाल ८० वर्ष, पूर्ण राज्यकाल २९९७९२० वर्षका है।

५ पुरुषसिंहका समय १० लाख वर्षका है। जिसमें कुमारकाल ३०० वर्ष, मंडलीक काल १२५० वर्ष विजय काल ७० वर्ष, पूर्ण राज्यकाल ९९८३८० वर्षका है।

६ पुंडरीक नारायणका समय ६५ हजार वर्षका है जिसमें कुमारकाल २५० वर्ष, मंडलीककाल २५० वर्ष, विजयकाल ६० वर्ष कुलराज्यकाल ६४४४० वर्षका है।

७ दत्त नारायणका समय ३२ हजार वर्षका है जिसमें कुमारकाल २०० वर्ण मंडलीककाल ५० वर्ण, विजयकाल ५० वर्ष, कुलराज्यकाल ३१७०० वर्षका है।

८. लक्ष्मण नारायणका समय १२ हजार वर्षका है जिसमें कुमारकाल १०० वर्ष, मंडलीककाल ३०० वर्ष, विजयकाल ४० वर्ण कुल राज्यकाल ११५६० वर्णका है।

९. कृष्ण नारायणका समय १ हजार वर्षका है जिसमें कुमारकाल १६ वर्ष, मंडलकिकाल ५६ वर्ष विजयकाल ८ वर्ष, पूर्णरालज्यका ९२० वर्षका है।

अथ रुद्रोंका वर्णन किया जाता है—

रुद्र ग्यारह होते हैं १. भीमवली २. जितशत्रु ३. रुद्र ४. वैश्वानर ५. सुप्रतिष्ठ ६. अचल ७. पुंडरीक ८. अजितंधर ९. अजितनाभि १०. पीठ ११. सात्यकिपुत्र। ये रुद्र तीर्थंकरोंके समयोंमें होते हैं। सब रुद्र १० वें पूर्वका अध्ययन करते समय विषयोंके निमित्त तपसे भृष्ट होकर सम्यक्त्व रूपी रत्नसे वंचित होकर घोर नरकोंमें पड़ते हैं।

अथ इनका खुलासा करते हैं—

१. भीमावली रुद्र= का शरीर ५०० धनुप होता है आयु ८३ लाख पूर्वकी जिसमें कुमारकाल २७६६६६६ पूर्व और संयमकाल २७६६६६८ पूर्व, तप भंग करके २७६६६६६ पूर्व तक रहकर सप्तम नरक गया।

२. जित शत्रुका शरीर ४५० धनुपका, आयु ७१ लाख पूर्वकी, जिसमें कुमारकाल २३६६६६६ पूर्व, संयमकाल २३६६६६८ पूर्व, संयम भ्रष्ट होकर रहे २३६६६६६ पूर्व फिर मरकर सप्तम नरक गया।

३. रुद्रका शरीर १०० धनुपका, आयुप्रमाण २ लाख पूर्व. जिसमे कुमारकाल ६६६६६ पूर्व संयमकाल ६६६६८ पूर्व, तपभंगकाल ६६६६६ पूर्व, फिर मरकर छट्टे नरक गया।

४. वैश्वानर–के शरीरकी ऊंचाई ९० धनुष, आयुका प्रमाण १ लाख पूर्व जिसमेंसे कुमारकाल ३३३३६ पूर्व,

संयमकाल २३३३४ पूर्व, संयमभङ्ग काल २३३३३ पूर्व, मरकर छट्ठा नरक गया।

५. सुप्रतिष्ठके शरीरकी ऊंचाई ८० धनुष, आयुका प्रमाण ८४ लाख वर्ष, जिसमेंसे कुमारकाल २८ लाख वर्ष, संयमकाल २८ लाख वर्ष, संयमभङ्गकाल २८ लाख वर्षका, मरकर छट्टे नरक गया।

६. अचलरुद्रके शरीरकी ऊंचाई ७० धनुष, आयुका-प्रमाण ६० लाख वर्ष, जिसमेंसे कुमारकाल २० लाख वर्ष संयमकाल २० लाख वर्ष और संयमभंगकाल २० लाख वर्षका मरकर छट्टे नरक गया।

७. पुंडरीकरुद्रके शरीरकी ऊंचाई ६० धनुष, आयुकाप्रमाण ५० लाख वर्ष, जिसमें से कुमारकाल १६६६६६६ वर्षका, संयमकाल १६६६६६८ वर्ष, संयमभंगकाल १६६६६६६ वर्षका मरकर छट्टे तरक गया।

८. अजितधररुद्रके शरीरकी ऊंचाई ५० धनुष, आयुका प्रमाण ४० लाख वर्ष, जिसमेंसे कुमार काल १३३३३३३ वर्ष, संमयकाल १३३३३३४ वर्षका और संमयभंगकाल १३३३३३३ वर्षका, मरकर पांचवें नरक गया।

९. आजित नामी रुद्रके शरीरकी ऊंचाई २८ धनुष, आयुका प्रमाण २० लाख वर्ष, जिसमें कुमार काल ६६६६-६६ वर्ष, संयमकाल ६६६६६६८ वर्षका और संयमभंग काल

६६६६६६ वर्षका, मरकर चौथे नरक गया।

१०. पीठ रुद्रके शरीरकी ऊंचाई २४ धनुष, आयुका प्रमाण १० लाख वर्ष, उसमें कुमार काल ३३३३३३ वर्षका संयमका काल ३३३३३४ वर्षका और संयमभंगका काल ३३३३३३ वर्षका, मरकर चौथे नरक गया।

११. सात्यकीपुत्र रुद्रके शरीरकी ऊंचाई ७ हाथ, आयु प्रमाण ६९ वर्ष। तिसमें कुमार काल ७ वर्षका संयमकाल ३४ वर्षका और संयमभंगका काल २८ वर्षका, मरकर तीसरे नरक गया। ये ग्यारहों रुद्र भव्यात्मा ही होते हैं और कालान्तरमें नियमसे मोक्ष जाते हैं।

इस प्रकार रुद्रोंका वर्णन हुआ

नारदोंका वर्णन–

नारद ९ होते हैं उनके नाम– [१] भीम [२] महाभीम (३) रुद्र [४] महारुद्र (५) काल (६) महाकाल (७) दुर्मुख (८) नरकमुख और (९) अधोमुख। ये सब अतिरौद्र परिणामी, दूसरोंको रुलाने वाले, पापके निधान, कलह प्रिय महायुद्ध है प्रिय जिनको, अपमानको न सहन करने वाले, महामानी, वासुदेवके तुल्य नरक जाने वाले आयु शरीर रंग ढंग अटल ब्रह्मचर्य और भव्यात्मा होते हैं। ये भी कालन्तर में नियमसे मोक्ष जाते हैं।

२४ कामदेव

कामदेव २४ होते हैं- [१] बाहुबली (२) अमित तेज [३] श्रीधर [४] दशभद्र [५] प्रसेजति [६] चन्द्रवर्ण (७) आग्निमुक्ति (८) सनत्कुमार चक्रवर्ती [९] वत्सराज (१०] कनकप्रभ [११] मेघवर्ण [१२] शांतिनाथ तीर्थंकर [१३] कुंथुनाथ तीर्थंकर [१४] अरहनाथ तीर्थंकर [१५] विजयराज [१६] श्रीचंद्र [१७] राजानल (१८) हनुमान [१९] बलराजा [२०] वसुदेव २१) प्रद्युम्न (२२) नागकुमार (२३) श्रीपाल (२४) जम्बूस्वामी।

इन कामदेवोंका विशेष वर्णन प्रथमानुयोगके ग्रंथोंमें मिलता है परन्तु इसमें हमको विशेष ज्ञात नहीं हुआ इसीसे इनका विशेष कथन नहीं किया। फिरभी ये जीव भव्य होते हैं और कोई २ तो तद्भवमोक्षगामी होते हैं और कोई कोई कालान्तरमें मोक्ष जावेंगे इनकी सुन्दरता अनुपम होती है महान पुण्यात्मा होते हैं।

प्रश्न—इस प्रकारके जो १६९ मनुष्य बतलाये गये हैं उन सबको भव्य प्रकृति वालेही कहा जाता है, परन्तु यह मालूम नहीं होसका कि इन्होंने ऐसा कौनसा पुण्यकार्य किया जिससे इनको ये पदवियां प्राप्त हुई ? कृपाकर इसकाभी खुलाशा कीजिये ?

उत्तर— १६९ पुरुषोंका विवरण इस प्रकार है कि इन

जीवोंने इस प्रकारके कर्तव्य किये ह जिनसे इनको ये दर्जे प्राप्त हुए हैं। इनके दो भेद हैं [१] पुण्यपुरुष तो १६९ इनमें १०६ तो पुण्यात्माही हैं [२] रहे ६३ शलाकाके पुरुष सो इनके पद इस तरहके हैं—

[१] १४ कुलकर तो मुनिदानके प्रभावसे क्षायिक-सम्मक्त्व प्राप्त कर युगकी आदिमें इन्होंने धर्मकी प्रवृत्ति कीनी, कर्मभूमिका मार्ग बतलाया, जनताको कर्मभूमिके प्रवर्तक षट्कर्मोंका उपदेश दिया जिससे लोगोंकी जीविकाकी व्यवस्था हुई। वे षट्कर्म- १. असि २. मषी ३. कृषि ४. वाणिज्य ५. विद्या और ६. शिल्प हैं।

[२] तीर्थंकर देवके माता २४ और पिता २४ मिलकर ४८ हुए। उन्होंने महान घोर तपस्या की, जिसके प्रभावसे वा निदानसे तीर्थंकर सरीखे पुत्रोंके माता पिता हुए।

[३] २४ कामदेवोंने भी पूर्व पर्यायोंमें विशेष तपश्चरण किया जिससे अलौकिक लावण्यता पाई और कामदेव रूपमें उत्पन्न हुए।

[४] ११ रुद्रोंने पूर्व जन्ममें घोर वेदना सहित तपकर विषयोंका निदान कियां इससे रुद्ररूपमें उत्पन्न हुए।

[५] नारद इन्होंने प्रेमसे तप न कर क्रोध सहित तप किया, जिससे नारद रूपमें हुए।

इस प्रकार इन १०६ पुरुषोंने जिनमतका श्रद्धान तो

किया और सम्यग्दर्शन भी प्राप्त किया परन्तु मोहकर्मके निमित्तसे विषयोंमें आशक्तताकी वांछासे समयपर मोक्ष न प्राप्त कर सके।

६३ शलाकाके पुरुषोंका विवरण— १. तीर्थंकर २. चक्रवर्ती ३. नारायण ४. प्रतिनारायण और बलभद्र। इनका खुलाशा इस तरह है—

[१] तीर्थंकर देवोंने सम्यग्दर्शन प्राप्तकर सोलहकारण भावनाओंका चिंतवन किया और संसारी जीवोंके साथ अनंत वात्सल्यभाव दिखलाया जिससे उनका पुण्य अतिशय रूपसे वृद्धिको प्राप्त हुआ और तीर्थंकर प्रकृतिको बांधकर तीर्थंकर देव हुए जिसकी महिमा अचिन्त्य है चारज्ञान धारी पूर्ण श्रुत पारगामी गणधर देवगणधरदेव भी जिसका यथार्थ वर्णन नहीं कर सके।

२ चक्रवर्ती—पूर्व पर्यायमें इन जीवोंने ऐसी तपस्या की, जो सामान्य आदमियोंसे कदाचित भी नहीं हो सकती है। इनके तीन भेद हैं १ एक तो मोक्ष जानेका समय नहीं आया २ देवोंकी विभव देख उम्मीदवार रहे ३ संसारमें अभी जन्म मरण करना बाकी रहा था।

प्रश्न—तीर्थंकर देव जिन सोलह कारण भावनाओंका चिंतवन करते हैं वे कौन २ सी हैं और उनका स्वरूप क्या है?

उत्तर–तीर्थंकर प्रकृतिके बंधका आरंभ तो कर्मभूमियां मनुष्यके ही होता है, अन्य गतिमें नहीं होता है। मनुष्य गतिमेंभी केवली या श्रुतकेवलीके पादमूलमेंही आरंभ होता है। क्योंकि दूसरे स्थानमें उस जातिके विशुद्ध परिणाम होते ही नहीं हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व या द्वितीयोपशम सम्यक्त्व अथवा क्षायोपशमिक या क्षायिक सम्यक्त्व इन चारों प्रकारके सम्यक्त्वमें तथा चतुर्थ गुणस्थानसे अष्टम गुणस्थानतकही तीर्थंकर प्रकृतिको बांधता है इसके आगे पीछे इस प्रकृतिका बंध नहीं होता है। सोभी सोलह कारण भावना भानेवालेकेही होता है अन्यके नहीं। इन भावनाओंके नाम इस प्रकार हैं १ दर्शनविशुद्धि २ विनयसंपन्नता ३ शीलव्रतेष्वनतिचार ४ आभीक्षण ज्ञानोपयोग ५ संवेगभावना ६ दानभावना ७ शक्तितस्तप भावना ८ साधुसमाधि ९ वैयावृतकरण भावना १० अर्हद्भक्ति ११ आचार्यभक्ति १२ बहुश्रुत उपाध्यायभक्ति १३ प्रवचन-भक्ति १४ षडावश्यकापारिहाणि १५ मार्गप्रभावना और १६ प्रवचनवत्सलत्व। इस प्रकार इन सोलह भावनाओंका भाव सहित अनुभव करनेवाला आत्माही तीर्थंकर प्रकृति का उपार्जन कर सकता है, अन्य प्रकारसे तीर्थंकर प्रकृति का बंध नहीं होता है।

प्रश्न—इन सोलहकारण भावनाओंका स्वरूप यथा-

क्रमसे अलग २ समझाइये ?

उत्तर— पहिली भावना दर्शनविशुद्धि है उसका स्वरूप इस प्रकार है—

१ दर्शनविशुद्धि— सम्यग्दर्शनकी निर्मलताही दर्शन विशुद्धि कहलाती है। सच्चे आप्त आगम गुरुका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। १८ दोषोंसे रहित सर्वज्ञ वीतराग और हितोपदेशी ही सच्चा देव कहलाता है। भूख, प्यास, जन्म, मरण, बीमारी, बुढापा, शोक, भय, विस्मय, अरति, चिंता, राग, द्वेष, स्वेद, खेद, निद्रा, मद, मोह ये१८ दोष माने गये हैं, ये दोष जिसमें न पाये जाय वही वीतराग है। जो लोक अलोक रूप समस्त पदार्थोंको त्रिकालवर्ती संपूर्ण गुणपर्यायोंसहित एक समयमें एक साथ जाने सो सर्वज्ञ कहलाता है। जो सब जीवोंको विना किसी तरहकी इच्छाके भलाई करनेका उपदेश करता है उसको परमहितोपदेशक कहते हैं। इन तीन विशेषणों सहितको आप्त कहते हैं।

जो शास्त्र भगवान आप्तका कहा हुआ हो, जिसका वादी प्रतिवादी कोई भी उल्लंघन न कर सके, जिसके कथित विषय प्रत्यक्ष और अनुमानसे विरुद्ध न हों, जिससे छह कायके जीवोंका हित होता हो, कुमार्गका दूर करनेवाला

हो उसे सच्चा शास्त्र कहते हैं।

जिसके विषयोंके सेवनकी इच्छाएं न हों, जो सब तरहके आरंभ और परिग्रहसे रहित हों, निरंतर ज्ञानाभ्यासमें ध्यानमें, तपमें आसक्त हों, वही वीतरागी मोक्षमार्गी गुरु हैं। ऐसे आप्त आगम गुरुमें दृढश्रद्धान होना सो सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शनके २५ मल (दोष) होते हैं, वे जिसमें नहीं होते तथा अपने गुणों-अंगों सहित हो सो दर्शनविशुद्धि है। सम्यग्दृष्टि-तीनमूढता-आठमद-शंकादिक आठदोष और छह अनायतनोंसे रहित होता है। सात प्रकारके भयोंमेंसे कोई प्रकारका भय नहीं रखता इन सबका लक्षण लिखने पर ग्रन्थका रूप बढता है इसलिये जिन्हें इनका ज्ञान कहना कहना होवे रत्नकरण्डादि ग्रन्थोंका स्वाध्याय करें या हमारे संयमप्रकाशका अध्ययन करें।

२. विनयसंपन्नता—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमें तथा इनके धारण करने वालोंमे आदर सत्कार भक्ति करना, देवगुरु धर्मका प्रत्यक्ष परोक्ष विनय करना, सो विनय संपन्नता है।

३. शीलव्रतेष्वनतिचार—अहिंसादि व्रतोंके पालनेके लिये क्रोध, मान, माया, लोभ कषायका अभाव रूप आत्मस्वभावका करना सो शील है। स्पर्शनादि इन्द्रियजनित

सम्पूर्ण विषयोंसे राग छूटकर वीतराग रूप होना व्रत है। ऐसे शील और व्रतोंमें मन, वचन कायकी निर्दोषतासे अतिचार रहित प्रवर्तना सो शीलव्रतेष्वनतिचार भावना है।

[४] आभीक्ष्णज्ञानोपयोग-निर्दोष ग्रन्थोंको पढना-पढाना उपदेशकरना, श्रुतज्ञान के अर्थमें हमेशा उपयोग लगाना सो आभीक्ष्णज्ञानोपयोग है।

(५) संवेगभावना—शरीर संबंधी क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, रोगादिजनित तथा मन संबंधी दुःख इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग, वांछितका अलाभ इत्यादि संसारके दुखोंसे भयभीत होकर परम वीतरागताका चिंतवन करना सो संवेग भावना है।

[६] शक्तितस्त्याग—अपने और दूसरोंके उपकारके लिये आहार, औषध, शास्त्र और अभय दानका अच्छे भावोंसे भक्तिपूर्वक देना, क्योंकि दान व तप करनेमें शक्तिको छिपानाभी नहीं और शक्तिसे अधिक भी नहीं करना जिससे शरीरादिक विगड भ्रष्ट होजाय ऐसा नहीं करना सो शक्तितस्त्याग भावना है।

(७) अपनी सामर्थ्यको न छिपाकरके भगवान जिनेन्द्र के मार्गके अनुकूल अनशनादिक तप करना तथा ऐसे विचारना जो ये शरीर दुखका कारण है, कृतघ्न है, इस देहको यथेष्ट भोजन देकर पुष्टकरना अयोग्य है तो भी

ज्ञान चारित्रादि रत्नोंके संचय करनेको महान उपकारी है इसलिये विपयोंसे विरक्त होकर अपने प्रयोजनके लिए परिमित शुद्ध आहार देकर यथाशक्ति मार्गसे अविरोध कायक्लेशादि तपकरना श्रेष्ठ है सो शक्तितस्तप भावना है।

[८] साधुसमाधि—अनेक व्रत और शीलोंकरके सहित जो मुनि उनके कोई कारणसे विघ्न आवें तो उसको दूर करना, जैसे अनेक, वस्तुओंसे भरे हुए भंडारमें आग्नि लग गई हो तो उसको जिसतरह बुझाना होसके उसीतरह बुझाकर उसमें रहनेवाले सामानकी रक्षा कीजाती है। उसीतरह साधुपर किसी तरहका विघ्न या दुख आगया हो तो उसको जिस किसी प्रकार दूर करदेना सो साधुसमाधि भावना है।

[९] वैयावृत्यकरण—गुणवान साधुओंके कोई कारण से दुख या रोग आजाय तो निर्दोष विधानसे उसको दूर करना, सेवा टहल करना, पैर दावना तथा और २ भी समयानुसार जो २ वाधाएं हों उनको दूरकरना सो वैयावृत्यकरण भावना है।

१० अर्हद्भक्ति- केवलज्ञानही हैं नेत्र जिनके ऐसे अर्हत भगवानके अनंत चतुष्टयादिमें प्रेम करना सो अर्हद्भक्ति भावना है।

[११] आचार्य भक्ति—मुनियोंके संपूर्ण संघके अधिपति, दीक्षा प्रायश्चित्य आदि विधानके विधाता ऐसे आचार्य

परमेष्ठीके गुणोंमें अनुराग करना सो आचार्यभक्ति है।

[१२] वहुश्रुत भक्ति—दूसरोंकी भलाई करनेमें है चित्तकी वृत्ति जिनकी और अपने सिद्धांत और परमतके विस्तारको जाननेवाले जो वहुश्रुत–उपाध्याय परमेष्ठी, उनके गुणोंमें अनुराग करना सो वहुश्रुतभक्ति है।

[१३] प्रवचनभक्ति—श्रुतज्ञानके गुणोंमें प्रेम करना सो प्रवचनभक्ति है।

[१४] आवश्यकापरिहाणि–सामायिक, स्तव, वंदना प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग मुनियोंकी ये छह आवश्यक क्रियायें हैं सो इन छह आवश्यक क्रियाओंकी हानि नहीं करना उनमें समयानुसार प्रवृत्ति करना सो आवश्यकापरिहाणि भावना है।

[१५] मार्गप्रभावना— अज्ञानके उद्योतका अत्यंत तिरस्कार करनेवाली, स्याद्वादरूप सम्यग्ज्ञान सूर्यकी प्रभा रूप जिनधर्मका सत्याथ प्रभाव दिखलानेवाली प्रभावना करना जिससे देवादिकोंके भी आसन कंपायमान होजाय ऐसा महान तपकर तथा भव्य रूप कमलोंके वनको प्रफुल्लित करनेवाली जिनेन्द्रकी पूजनकर समीचीन धर्मका प्रभाव प्रकट करना सो मार्गप्रभावनांग है।

(१६) प्रवचनवत्सलत्व— जैसे गाय अपने वछड़ेमें हींस २ कर प्रेमका परिचय देती है उसी तरह अपने

साधर्मी भाइयोंको देखकर छल कपट रहित उनमें प्रेमका व्यवहार करना प्रेमसे चित्तका आर्द्र होजाना सो प्रवचन-वत्सलत्व भावना है।

इस प्रकार ये सोलह भावनाएं संपूर्ण तथा कुछ कम दर्शनविशुद्धि सहित चिंतवनकी हुई तीर्थंकर नामकर्मके आस्रवकी कारणरूप होती हैं।

इस प्रकार इन सोलहकारण भावनाओंको जो जीव भावसहित भाता है वह जीव सारे संसारके शिरपर अपने चरण रखता है। इस प्रकार तीर्थंकर भगवानने समोसरण आरोहणकर प्राणी मात्रको अपने आत्माके कल्याण करनेके लिये उपदेश दिया जिससे जीवोंका महान कल्याण हुवा है।

प्रश्न—तीर्थंकर भगवानने जीवोंको कल्याणकारी उपदेश दिया उससे जीवोंको क्या लाभ हुवा?

उत्तर—भगवानके उपदेशसे तीन लोकके जीवोंका आत्मकल्याण हुवा। कितनेही जीवोंने व्रतग्रहण किये। कितनेहीने मुनिव्रत स्वीकारकर संसारमार्गका त्याग किया कितनेही जीवोंने मिथ्यात्वका त्यागकर सम्यक्त्व ग्रहण किया।

प्रश्न—वह उपदेश कैसा है? कैसे धारण किया जाता है? और उसका कैसे आचरण किया जाता है? सो सब कहो?

उत्तर— वह उपदेश मुनिधर्म व श्रावक धर्मके निरूपणरूपसे दो तरहका है। श्रावक लोग पापोंका एक देश त्याग करते हैं इसलिये उनका व्रत एक देश त्यागरूप होता है और मुनिवर्ग पापोंका सर्वथा त्याग करते है इसलिये मुनिधर्म सर्वथा त्यागरूप होता है।

सबसे पहिले यहांपर श्रावक धर्मका निरूपण किया जाता है—

सबसे पहिले श्रावक शब्दकी निरुक्ति की जाती है स माने (श्रद्धा) व माने (विवेक) क माने [क्रिया] इस प्रकार जिस आत्माके अंदर श्रद्धा, विवेक और क्रिया ये तीनों कर्तव्य पाये जाय उसको श्रावक कहते हैं। जिसमें इन तीनों निरुक्तियोंकी कमी पाई जाय उसको श्रावक नहीं कहते हैं। इसलिये श्रावकका कथन यहां भिन्न २ प्रकारसे किया जाता है। श्रावकके ३ भेद माने गये हैं १ पाक्षिक २ नैष्ठिक ३ साधक। फिर इनके भी आगे जाकर तीन २ भेद किये गये हैं पहिले पाक्षिक के तीन भेद वतलाये जाते हैं १. उत्तम पाक्षिक २. मध्यम पाक्षिक ३ जघन्यपाक्षिक।

१. जघन्य पाक्षिक श्रावक—बालक जन्म लेनेके बाद जब पैंतालीस दिनका हो जाता है तब उसके माता पिता

उसका धर्म संस्कार करनेके लिये परंपरासे चले आये धर्मका अनुयायी बनानेके लिये बडेही उत्सवके साथ गाजे बाजे सहित श्रीजिनमंदिरजीमें ले जाते हैं और उसको वहां श्रावकत्व रूपसे दीक्षित करते हैं उसको जघन्य पाक्षिक कहते हैं।

प्रश्न— बच्चेको क्या दीक्षा दी जाती है इसको स्पष्ट कीजिये?

उत्तर— सबसे पहिले उस बच्चेके कानमें पंच परमेष्ठी वाचक णमोकार मन्त्रको सुनाया जाता है णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो-लोए सव्व साहूणं। क्योंकि जैन संसारमें सबसे पहिले आद्य मंगल इसी णमोकार मंत्रकोही माना गया है। इसका उच्चारण उसको सुनाकर पीछे हिंसापोषक जो ५ पदार्थ अर्थात—१. बडफल २. पीपलफल ३. ऊमरफल ४. कठूम्बरफल ५. पाकरफल इनको पंचोदुम्बर फल कहते हैं इनका त्याग कराते हैं। इनके सिवाय ६. मांसका त्याग ७. मदिरा (शराब, गांजा, अफीम, चरस, चन्डू आदि) का त्याग ८. मधु-शहदका त्याग ये तीन मकार कहे जाते हैं इस प्रकार ८ प्रकारके पदार्थोंके त्यागको आठ मूलगुण कहते हैं इनको धारण कराते हैं। बिना इन आठ मूलगुणोंको धारण किये कोई भी श्रावक नहीं कहलाता है।

प्रश्न—जो आपने कहा सो ठीक है परन्तु वह बालक अभी कुल ४५ दिनका ही तो होता है कुछ समझता भी नहीं है फिर आठ प्रकारके पदार्थोंको त्याग कैसे करता होगा ?

उत्तर— आपका कहना सब ठीक है पर हमारे यहां जैन धर्ममें सबसे पहले इस प्रकारकी त्रसहिंसाके त्याग करानेका उपदेश है। जबतक इस प्रकारकी त्रसहिंसाका त्याग न कराया जायगा तबतक कोई भी व्यक्ति जैन कहलानेका अधिकारी ही नहीं हो सकता है। इस लिये इन चीजोंका दया पालन करनेके लिये वा यथार्थ धर्माचरणके लिये, वा कुलपरम्परासे चले आये इस आचरणको अखण्ड बनाये रखनेके लिये त्याग कराकर उसको जैनधर्मकी दीक्षा दी जाती है। वह बालक जबतक आठ वर्षका नहीं हो जाता तबतक इस प्रतिज्ञाका निर्वाह कराना माता पिता पर ही निर्भर रहता है।

प्रश्न-इनके सिवाय और कोई व्रत तो नहीं होते हैं ?

उत्तर—ऊपर कहे हुए आठ चीजोंके त्यागके सिवाय तीन व्रत और होते हैं अर्थात्-मिथ्यादेव, मिथ्याशास्त्र और खोटे गुरु इनके सेवन करने रूप विचारका त्याग। तथा सच्चे देव, शास्त्र और गुरुके ग्रहण करनेका विचार, इस तरह सब मिलकर ग्यारह व्रतोंका ग्रहण होना चाहिये।

उपचारसे इनको ग्रहण करने वाला ही जघन्य श्रावक कहलाता है।

प्रश्न–आपने ऊपर जो ११ व्रत कहे हैं कृपाकर इनका भिन्न २ रूपसे खुलासा कीजिये जिससे हरएक व्यक्ति ऐसे पापोंसे बच सके?

उत्तर–ऊपर जो ११ प्रकारके पदार्थ बतलाये हैं उनका खुलासा इस प्रकार है।

पन्चोंदंबर फलोंका स्वरूप

बड, पीपल, ऊमर, कट्टमर और पाकर ये पांच प्रकारके वृक्षोंके हरे फलोंमें सूक्ष्म और स्थूल ऐसे दो तरहके त्रस जीव होते हैं जो व्यक्ति इन फलोंका भक्षण करता है वह अनन्त जीवोंकी हिंसा करता है। इस रहसे द्रव्यहिंसा हुई, और जो व्यक्ति इन फलोंको सुखाकर खाते हैं उनके हमेशा अत्यन्त तीव्र रागरूप परिणाम रहते हैं इसलिये भावहिंसा होती है अतएव सूखे तथा गीले दोनों तरहके फलोंके भक्षण करनेमें महान हिंसा होती है। भव्य जीव इस तरहकी हिंसाओंसे बचनेका प्रयत्न करते रहते हैं।

मद्यपानका स्वरूप

मद्य-नाना प्रकारके पदार्थोंको सडाकर बनाया जाता है सडाते समय उन पदार्थोंमें बडे २ जानवर उत्पन्न होजाते हैं उनको घानीमें डालकर पेला जाकर उन चीजोंका रस

निकाला जाता है जिससे उस रसमें उन जीवोंके कलेवरका रस पीप और खून सरीखा मिलजाता।

उस इकठे किये हुए रसमें सदा उसी रंगके अनंत जीव पैदा होते रहते हैं। जो लोग उसका सेवन करते हैं उनकी संज्ञा नष्ट तो होती ही है, साथमें अनन्त जीवोंके मारनेका घोर पाप संबंध करता है। मद्यके पीनेसे काम, क्रोध मद, मोह, भय, भ्रम आदि उत्पन्न होजाते हैं। अभक्ष्य भक्षणभी इसीसे होता है। अगम्य गमन करना, दुराचार सेवन करना इसी मद्यपानसे होता है। मद्यपान करनेवाला संसार समुद्रमें गोते लगाने वाला होता है। ऐसा जीव धर्म सेवनसे पराङ्मुख रहता है। सदाचारसे दूर रहता है। वेश्यागमनादिको पाप नहीं मानता। मा, बहिन, बेटी और स्त्रीमें भेद नहीं करता, लज्जा दूर होकर बेशर्माई छाजाती है। आर्त रौद्रध्यानकी परिणति बनी रहती है। शास्त्रोंमें लिखा है कि मद्यकी एक बूंदमें इतने जीव हैं कि भ्रमर बनकर यदि उडने लगें तो सारे जम्बूद्वीपमें नहीं समासकते, एक बूंदमें इतने जीव होते हैं तो जो लोग बोतलोंकी बोतलें गटक जाते हैं और सारी पर्यायमें कितने प्रमाणमें पी-जाते हैं उस सब पापको यदि इकट्ठा किया जाय तो भारी वजन होजाता है। ऐसे पापका फल नरकोंमें भोगना पडता है जहां पर ऐसे जीवोंके मुहमें गर्म गर्म तांबेके पानीको

पिलाया जाता है, तेलकी उबलती हुई कडाईमें डाल दिया जाता है, शूलीपर चढाया जाता है, करोतसे काट-कर दो टुकडे किये जाते हैं। घानीमें पेलाजाता है, भाडमें भूंजाजाता है, घनोंसे कूटा जाता है इत्यादि और भी भयं-कर २ दुख भोगने पडते हैं। इसलिये धर्मात्मा सज्जनोंको इस मद्यसेवनसे हमेशा बचना चाहिये। कितनेही भोले भव्य जीनेके मोहमें ऐसी २ दवाइयोंका सेवन कर बैठते हैं जिनमें मद्यके रसका संमिश्रण रहता है। ऐसे भाई मद्य-सेवनके पापसे कदापि नहीं बच सकते हैं। और घोर पापके भागी होते हैं। धर्मात्माओंको ऐसे पापसे हमेशा बचते रहना चाहिये।

मांस भक्षण निषेध—

त्रसजीवके शरीरको मांस कहते हैं "मांसं जीवशरीरं" ऐसा वचन है। विना त्रसजीवके घात किये मांसकी उत्पत्ति नहीं होती है। स्वयमेव मरे हुये जीवके मांसमें भी एक अन्त-र्मुहूर्तमें अनन्तानन्त जीव उसी रंगके पैदा होजाते हैं। मांस की डली चाहे कच्ची हो पकी हो या पकरही हो उसके छूने मात्रसे अनन्तानन्त निगोत जीवोंके घात करनेका पाप लगता है। मांस भक्षी जीव महानिर्दयी और रौद्र परिणामी होते हैं। वे गाय, भैंस, बैल, बकरा, बकरी, मेंडा, हिरण,

मछली, कछवा, मगर, घाडियाल, चिडिया, कबूतर आदि जानवरोंको वडे प्रेमसे मारकर खाजाते हैं। ऐसे हिंसानन्दी लोग दिन रात शिकार खेलनेमें और मारकर खाने खिलानेमें वडा हर्ष मानते हैं। उनकी आंखें हमेशा लाल बनीरहती हैं चेहरा अत्यन्त भयङ्कर आकृति धारण किये हुये रहता है। मांसकी डली जो एक इंच लम्बी चौडी मोटी हो उसमें एक साथ ३१५०० जीव पैदा होजाते हैं। वे जीव नौ तरहके होते हैं उनके नाम व संख्या निम्न लिखित होती है १. विध्याणु ३५००, २. गच्छाणु ३५००, ३. चन्द्राणु ३५००, ४. चतुष्काणु ३५००, ५. मालाणु ३५००, ६. पुग्लाणु ३५००, ७. रोगाणु ३५००, ८. चित्राणु ३५०० और ९ शलाकाणु ३५००। इतने जीव तो पैदा होते ही रहते हैं। जो मांसाहारी होते हैं वे शराबी, वेश्यागामी, परस्त्री लंपटी आदि जरूर होते हैं। तीन लोकमें सुख शांतिकी जननी दया उनके पास रह भी नहीं सकती। अहिंसा (दया) ही धर्मका मूल है, परस्परमें विश्वास पैदा करनेवाली होकर सुख और शांति पैदा करनेवाली होती है। परंतु मांसाहारीके पास अहिंसा ठहर नहीं सकती। मांसाहारीभी नरक निगोदके दुःखोंको कई सागरों पर्यंत भोगते हैं। इसलिये धर्मात्मा सज्जनोंको चाहिये कि मनुष्य पर्यायकी सफलता प्राप्त करनेके लिये

पिलाया जाता है, तेलकी उबलती हुई कडाईमें डाल दिया जाता है, शूलीपर चढाया जाता है, करोतसे काट-कर दो टुकडे किये जाते हैं। घानीमें पेलाजाता है, भाडमें भूंजाजाता है, घनोंसे कूटा जाता है इत्यादि और भी भयं-कर २ दुख भोगने पडते हैं। इसलिये धर्मात्मा सज्जनोंको इस मद्यसेवनसे हमेशा बचना चाहिये। कितनेही भोले भव्य जीनेके मोहमें ऐसी २ दवाइयोंका सेवन कर बैठते हैं जिनमें मद्यके रसका संमिश्रण रहता है। ऐसे भाई मद्य-सेवनके पापसे कदापि नहीं बच सकते हैं। और घोर पापके भागी होते हैं। धर्मात्माओंको ऐसे पापसे हमेशा बचते रहना चाहिये।

मांस भक्षण निषेध—

त्रसजीवके शरीरको मांस कहते हैं "मांसं जीवशरीरं" ऐसा वचन है। विना त्रसजीवके घात किये मांसकी उत्पत्ति नहीं होती है। स्वयमेव मरे हुये जीवके मांसमें भी एक अन्त-र्मुहूर्तमें अनन्तानन्त जीव उसी रंगके पैदा होजाते हैं। मांस की डली चाहे कच्ची हो पक्की हो या पकरही हो उसके छूने मात्रसे अनन्तानन्त निगोत जीवोंके घात करनेका पाप लगता है। मांस भक्षी जीव महानिर्दयी और रौद्र परिणामी होते हैं। वे गाय, भैंस, बैल, बकरा, बकरी, मडा, हिरण,

मछली, कछवा, मगर, घडियाल, चिडिया, कबूतर आदि जानवरोंको वडे प्रेमसे मारकर खाजाते हैं। ऐसे हिंसानन्दी लोग दिन रात शिकार खेलनम और मारकर खाने खिलानेमें बडा हर्ष मानते हैं। उनकी आंखें हमेशा लाल बनीरहती हैं चेहरा अत्यन्त भयङ्कर आकृति धारण किये हुये रहता है। मांसकी डली जो एक इंच लम्बी चौडी मोटी हो उसमें एक साथ ३१५०० जीव पैदा होजाते हैं। वे जीव नौ तरहके होते हैं उनके नाम व संख्या निम्न लिखित होती है १. विध्याणु ३५००, २. गच्छाणु ३५००, ३. चन्द्राणु ३५००, ४. चतुष्काणु ३५००, ५. मालाणु ३५००, ६. पुग्लाणु ३५००, ७. रोगाणु ३५००, ८. चित्राणु ३५०० और ९' शलाकाणु ३५००। इतने जीव तो पैदा होते ही रहते हैं। जो मांसाहारी होते हैं वे शरावी, वेश्यागामी, परस्त्री लंपटी आदि जरूर होते हैं। तीन लोकमें सुख शांतिकी जननी दया उनके पास रह भी नहीं सकती। अहिंसा (दया) ही धर्मका मूल है, परस्परमें विश्वास पैदा करनेवाली होकर सुख और शांति पैदा करनेवाली होती है। परंतु मांसाहारीके पास अहिंसा ठहर नहीं सकती। मांसाहारीभी नरक निगोदके दु खोंको कई सागरों पर्यंत भोगते हैं। इसलिये धर्मात्मा सज्जनोंको चाहिये कि मनुष्य पर्यायकी सफलता प्राप्त करनेके लिये

मांसाहार बिलकुल त्यागें।

मधु निषेध—

मधु (शहद) मक्खियोंका उगाल होता है। मधु-मक्खियां नानाप्रकारके वृक्षोंके फूलोंसे मधुको इकट्ठा करती हैं। जिस रसको मधुमक्खियां पुष्पोंसे चूसती हैं उसको उगाल रूपमें मधुछत्तामें इकट्ठा करती हैं। उस मधुमें असंख्याते कीडे उत्पन्न होते रहते हैं। जिस समय मधुको छत्तेसे संचित करते हैं उस वक्त उस छत्तेको दोनों हाथोंके बीचमें करके जोरसे मसकते हैं जिससे तमाम जानवरोंके शरीरसे पीप और खून उस मधुमें इकट्ठा हो जाता है। फिरभी उस रसमें नवीन जानवर उत्पन्न होते रहते हैं। और मरते रहते हैं। मधुभक्षी मांसभक्षीही होते हैं। बहुतसे भाई दवाई सेवन करनेके लिये मधु सेवन करते है परंतु वे मधुके रूपको भूल जाते है। यदि एक वक्त भी मधु-संचय करनेकी क्रियाको देख ली जावे तो खाना तो दूर रहा देखनाभी पसंद नहीं करेंगे।

मधुभक्षियोंकी प्रवृत्ति पापमय होनेसे घोर नवीन पापोंको बांधते हैं जिनका फल कुगतियोमें भोगना पडता है। धर्मात्मा सज्जनोंका कर्तव्य है कि मधुका भक्षण तो अलग रहा पर स्पर्श भी न करें।

प्रश्न—पांच उदुंबर और तीन मकारका स्वरूप तो समझमें आगया परंतु सच्चे देव शास्त्र गुरूका स्वरूप नहीं समझाया कृपाकर इनकाभी स्वरूप समझाइये ?

उत्तर— शास्त्रोंमें सच्चे देव, शास्त्र और गुरुका जो स्वरूप बतलाया गया है वही यहांपर प्रतिपादन किया जाता है।

सच्चा देव वही होसकता है जो वीतरागी सर्वज्ञ और हितोपदेशी हो. जो भूख प्यास बीमारी बुढापा जन्म मरण राग द्वेष चिंता आदि दोषोंसे युक्त होगा वह वीतरागी नहीं हो सकता, जो इन्द्रियोंके द्वाराही पदार्थोंका ज्ञान करनेवाला हो वह दूरवर्ती, अंतरित और सूक्ष्म पदार्थोंका ज्ञाता न हो सकनेसे सर्वज्ञ नहीं हो सकता। जो राग द्वेष विशिष्ट होकर पदार्थोंका यथार्थ ज्ञाता न हो वह दूसरोंकी भलाईका उपदेश नहीं दे सकता। इसलिये जो अठारह दोषोंसे रहित हो, तीन लोकवर्ती तमाम पदार्थोंके त्रिकालवर्ती गुण पर्यायोंका यथार्थ जानकार हो तथा सच्चा हित कारी उपदेश देनेवाला हो वही सच्चा देव हो सकता है। इन तीन विशेषणोंसे रहित सच्चा देव नहीं हो सकता है।

सच्चा शास्त्र—शास्त्र सच्चा वही हो सकता है जो सच्चे देवके द्वारा कहा गया हो जिसका खंडन किसीके

द्वारा न हो सके। जो कुमार्ग और सुमार्ग का ठीक २ ज्ञान करावे मिथ्यात्व खंडन कर पदार्थके स्वरूपका ठीक २ जैसाका तैसा स्वरूप समझावे। जो विषयोंका पोषण करता है अथवा काम, भोग चौरकर्म आदिको पुष्ट करता है वह कदापि शास्त्र नहीं कहला सकता है। उसको तो शस्त्र कहना चाहिये।

सच्चा गुरु–जो पाच इन्द्रियोंके विषयोंकी इच्छाओंसे रहित हो, जिसमें छह कायके जीवोंका घात होता है ऐसे आरंभसे रहित हो अंतरंग वहिरंग परिग्रहसे रहित हो, जिसका चित्त ज्ञान ध्यान और तपमें लीन रहता हो इन विशेषणोंसे युक्त ऐसा तपस्वीही सच्चा गुरु कहलाता है।

प्रश्न—आपने ऊपर जो आठ मूल गुणोंका वर्णन किया है सो आठ मूल गुण इसी प्रकारके होते है या इनमें कुछ मतभेद है कृपाकर स्पष्ट समझाइये?

उत्तर–आचार्यके मतभेदसे मूलगुण कई प्रकारके माने गये हैं उनका भिन्न २ रूप इस प्रकार है। भगवान समंतभद्र स्वामीने रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें पांच अणुव्रत पालन करनेके साथ ३ प्रकारके मकारका त्याग करनाही आठ मूल-गुण वतलाये हैं। आदि पुराणके कर्ता स्वामी जिनसेनने पांच अणुव्रतोंके साथ मद्य, मांस और द्यूतके त्यागको आठ

मूलगुण कहा है।

यशस्तिलकके कर्ता सोमदेव सूरिने मद्य, मांस- मधुके त्यागके साथ पांच उदुंबर फलोंके त्यागको आठ मूलगुण कहा है, इसी प्रकार देवसेन आचार्यने भाव संग्रहमें इन्हीं आठोंके त्यागको आठ मूलगुण कहा है। पंचाध्यायी में भी यही आठ मूलगुण बतलाये हैं।

पंडित प्रवर आशाधरजीने इन सबसे विलक्षणही आठ मूलगुण बतलाये हैं—

१ मद्यत्याग २ मांसत्याग ३ रात्रि भोजन त्याग ४ पंच उदुंबर फल त्याग ५ मधुत्याग ६ त्रिकाल वंदन ७ जीवोंकी दया पालना ८ जल छानकर पीना।

लाटी संहितामें भी पंचोदुंबर फल त्यागके साथ मद्य मांस, त्यागको आठ मूलगुण बतलाया ह।

अमितगति आचार्यने नौ प्रकारके मूलगुण बतलाये हैं- पांच तो क्षीर वृक्ष फल त्याग, और मद्य, मांस मधु तथा रात्रि भोजन त्याग ऐसे नौ भेद बतलाये हैं।

इस प्रकार ग्रंथोंमें अलग २ कथन मिलता है परंतु आचार्योंका आशय सबका एकही है। जीवोंकी रक्षा करना इसलिये इनमें कथन शैलीका तो फरक है परंतु भावमें किसी तरहका भेद नहीं है। इस तरह पाक्षिक श्रावकके जघन्यभेदका वर्णन किया।

मध्यम पाक्षिक श्रावक लक्षण—

ऊपर जघन्य पाक्षिक श्रावकके ११ गुणोंका वर्णन किया गया है सो वह बालक जब तक ८ वर्षका नहीं हो जाता तब तक तो उसके माता पिता पर उसके व्रतोंकी रक्षा करनेका भार रहता है। जब वह आठ वर्षकी आयु वाला होजाता है तब अपनें व्रतोंका आप पालन करनें वाला हो जाता है। यदि उसके व्रतोंमें कोई दूषण लगता है तो उसक भागी उसके माता पिता नहीं होते हैं। इसका खुलासा इस तरहसे है—

वह जब अन्तर्मुहूर्त सहित आठ वर्षका होकर अपने व्रतों को समझकर आप धारण कर लेता है तब उस व्रतके ३४ भेद होते हैं क्योंकि वह मध्यम श्रावक व्यवहार दृष्टिसे अपने आपको व्यवहार सम्यग्दृष्टि मानता है इसलिये इस समय पर उसे इतने व्रत और धारण करने चाहिये। उन्हींका उल्लेख यहां पर किया जाता है।

जघन्य श्रावक दशामें जो पांच उदुम्बर फल, तीन मकार और सच्चे देव, शास्त्र और गुरुका अनुयायी होना ऐसे ११ व्रत बतलाए हैं उनको तो उसने पहिले धारण किया है अब वह ७ व्यसनका और त्याग करता है। उन सात व्यसनोंमें से मद्य-मांस और मधुका त्याग तो वह करही चुका बाकी वेश्या-शिकार-चोरी-परस्त्री और जुआ इन पांचों

को और छोडता है। क्योंकि इनका सेवन करना महा अन्याय है। बाकी सम्यग्दर्शनके २५ मल और टालता है। क्योंकि वह जिनेन्द्र देवके मार्गका अनुयायी है।

व्यवहार सम्यग्दर्शनको धारण करनेके लिये सम्यक्त्व के आठ अंगोंका पालन करना जरूरी है १. निःशंकित २. निःकांक्षित ३. निर्विचिकित्सित ४. अमूढदृष्टि ५. उपगूहन ६. स्थितिकरण ७. वात्सल्य ८. प्रभावना। आठ मदोंका त्याग करता है १. जाति मद २. कुलमद ३. रूपमद ४. धनमद ५. बलमद ६. तपमद ७. विद्याका मद ८. ऋद्धि का मद। ६-अनायतनका त्याग करता है— १. कुदेव २ कुशास्त्र ३ कुगुरु ऐसे तीन, और तीनही इनके सेवक इन छहोंकी सेवा सुश्रूषा व विनय आदरका त्याग। तथा ३ मूढताओंका त्याग १ लोक मूढता २ देवमूढता ३ पाखण्डिमूढता। सम्यक्त्वके ४ व्यवहार चिन्ह हैं उनका पालन करता है १ प्रशम २ संवेग ३ अनुकंपा और ४ आस्तिक्य इस प्रकार मध्यम श्रावकमें ४५ गुण हुवा करते हैं।

प्रश्न—आपने जो ४५ गुण ऊपर बतलाये हैं उनका खुलासा स्पष्टीकरण कर दीजिये?

उत्तर—सुनिये। सबसे पहिले मैं सात व्यसनोंका स्वरूप वर्णन करता हूं—

१ जुआ खेलना—रुपै, पैसे, कौडियां लगाकर नक्की,

मूंठ, चौपड, तास, गंजफा, संतरंजादिका हार जीतपर दृष्टि रखते हुए शर्त लगाकर खेलना, वा दिल बहलानेके लियेभी इन खेलोंको खेलना जुआ कहलाता है। जुआ खेलनेवाला जुआरी कहलाता है। जुआरीका कोई विश्वास नहीं करता है। जुआरी लोग अपने धन दौलतको खोते सो तो खोतेही है पर अपनी इज्जत भी खोदेते हैं। जुआरी के परिणाम सदा आर्त रौद्ररूप रहते हैं जिससे नाना-प्रकारके अशुभ कर्मोंका बंध करते हैं जिनका फल नरक तिर्यंच गतियोंमें भोगना पडता है इस लोकमें जुआरी खुद नानाप्रकारके कष्ट भोगता सो तो भोगताही है भवि-ष्यतमें अपने नन्हे २ प्राणसे प्यारे बच्चोंको भी महान कष्टमें डालता है। जुआके दुष्परिणाम कहांतक कहे जांय इसका तो त्यागही करना श्रेष्ठ है। जितने पाप होते हैं वे सब जुआमें संभव हो सकते हैं।

मांस मदिराका वर्णन ऊपर किया जा चुका है इसलिये पुनः उनका वर्णन यहां नहीं किया जाता है।

वेश्या सेवन—वेश्या बजारू व्यभिचारिणी स्त्रीको कहते हैं। उसके साथ लेन देन करना, उसके घर आना जाना आदि वेश्या सेवन कहलाता है। वेश्या सेवन करनेवाले का इस लोकमें अपवाद तो होताही है पर ऐसे दुर्मोच्य

अशुभ कर्मोंका बंध होता है जिनका फल नानाप्रकारसे अशुभ गतियोंमें भोगना पडता है। वेश्यागामीके शरीरमें भयंकर रोग पैदा होजाते हैं। वेश्या मांस भक्षण करनेवाली, शराब पीनेवाली, झूट बोलनेवाली, नींच ऊंचका विचार न करनेवाली, संगति करनेवालेकी कीर्तिको नाश करनेवाली, मनमें निरंतर संभोग चाहनेवाली, पैसेसे प्रेम करनेवाली, क्रूर स्वभाववाली, नर्ककी सखी होती है, जिसके छूनेसे स्नान करना पडता है। ऐसी वेश्याका संगम महान अनिष्ट पैदा करनेवाला होता है इसका त्याग करना श्रेष्ठ है।

शिकार खेलना–जंगलमें रहनेवाले हिरण, वाघ, रीछ, सुअर, रोझ, खरगोस आदि स्वच्छंद फिरनेवाले जांनवर, आकाशमें उडनेवाले चिडिया, कबूतर आदि जानवर तथा पानीमें रहनेवाले मगर मच्छ आदि जानवरोंको बंदूक, तलवार, बरछी आदिसे मारना सो शिकार करना कहलाता है। इसी प्रकार सांप बिच्छू, खटमल, ज्यूं आदिका मारना भी शिकारमेंही गर्भित है। आजकल बडे २ क्षत्रियादि लोग भी शिकार करनेके प्रेमी होगये हैं जो क्षत्रिय पुराने जमानेमें निशस्त्र, असहाय, रणमें घासका तिनका मुंहमें दाबनेवाले, लडते २ पीठ दिखानेवाले, युद्ध भूमिमें भागने वालेका कभी वध नहीं करते थे बल्कि शरणमें आये हुए

की रक्षा करते थे वही क्षत्रिय निराश्रितों, दीन, असहायोंके वध करनेमें अपनी वीरता समझने लगे हैं। शिकारी अशुभ कर्मोंको बांधकर नरकोंमें भयंकर दुख भोगते हैं। इस आदतसे बचना सर्व श्रेष्ठ है।

चोरी करना—प्रमादसे विना दी हुई अन्यकी वस्तुको ग्रहण करना या किसीकी गिरी हुई, पडी हुई, रक्खी हुई या भूली हुई चीजको उठा लेना या उठाकर किसी दूसरेको दे देना चोरी कहलाती है। जिस मनुष्यकी कोई चीज चोरी चली जाती है उसके मनमें वडा दुःख होता है। चोरी करते समय चोरके परिणाम वडे मलीन रहते हैं अतएव चोरी करना वहुत बुरा है। चोरी करनेसे अशुभ कर्मोंका वंध होता है, इस लोकमें अपवाद, राजदंड, पंच-दंड, आदि मिलते हैं और परलोकमें नरक निगोदादिके दुख भोगने पडते हैं।

परस्त्री सेवन—शास्त्रानुकूल विवाही हुई अपनी स्त्रीसे भिन्न जितनी दूसरेकी विवाही हुई स्त्रियां हैं वे सव परस्त्री कहलाती हैं उनके साथ मन वचन कायसे व्यभिचार सेवन करना परस्त्रीसेवन कहलाता है। स्त्री यदि अपने पतीको छोडकर अन्य पुरुषोंसे व्यभिचार सेवन करती हैं तो पर-पुरुष सेवन कहलाता है। विवेकी सज्जन लोग तो स्त्रीमात्र को पुत्री, वहिन, और माताकी तरह देखते हैं। जो अपनेको

ब्रह्मचर्य पालनेमें असमर्थ पातेहैं वे एक स्त्रीके साथ विवाह करते हैं, शेषका त्याग करते हैं। परस्त्री सेवीको चोरीका दोष लगता है। उसकी संतान नहीं जिन्दा रहतीहै। राजदंड मिलता, पंचोंकी भर्त्सना सहनी पडतीहै। इतने दुःखोंसेही पार पडता है सो नहींहै। नरक निगोदादिमें भी महाभयंकर दुख भोगने पडतेहैं इसलिये परस्त्रीसेवन का त्याग करना सर्वश्रेष्ठ है।

प्रश्न—इन सातों व्यसनोंके सेवन करनेमें कौन २ प्रसिद्ध हुए हैं ?

उत्तर—सातों व्यसनोंके सेवन करनेमें निम्न लिखित व्यक्ति प्रसिद्ध हुए हैं—

(१) जुआ- जुआ खेलनेमें महाबलवान पांडव प्रसिद्ध हुए हैं जिन्होंने बडे २ दुःख उठाये राजपाट छोडना पडा, यहांतक कि रानी द्रोपदीको भी पराधीन होना पडा।

२ मांस सेवन करनेसे राजा बकने बडे २ दुख उठाये और आखीरमें नरक जाना पडा।

३ मदिरा पान करनेसे यादवोंके द्वारा द्वारका नगरी का बुरा हाल हुआ जिसमें छप्पन कोडि यादवोंमेंसे सिर्फ दो भाईही बचे बाकीके सब नगरीके साथ स्वाहा होगये जिसकी कथा शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है।

४ वेश्या व्यसनमें—चारुदत्त सेठ प्रसिद्ध हुवा जिसने

वसंत सेना वेश्याके चक्करमें पडकर अपनी ३२ करोड दीनारकी संपत्तिसे हाथ धोया था जिसका अपवाद शास्त्रों में कहा गया है ।

५ आखेट—ब्रह्मदत्त चक्री जब शिकार करनेके लिये गया तब उसके शरीरकी वहां क्या हालत हुई ? आर्त परिणामोंसे मरकर सप्तम नरकमें पहुंचा जो ३३ सागरतक महान दुःख भोगगा ।

६ चोरीके करनेसे शिवभूति नामका पुरोहित जो सत्यवादी बन रहा था। महा निंद्यकार्य कर राज्य द्वारा उसने कैसे २ दुःख उठाये ? इसका वर्णन शास्त्रोंसे जानना चाहिये ।

७ परस्त्री सेवन—रावणने परस्त्री सेवन किया नहीं पर रमण करनेकी भावना करने मात्रसे लक्ष्मण के द्वारा मरणकर नरक गया और संसार में उसका महान अपजस हुवा ऐसा अपजस हुवा जिसकी कालिमा यावच्चंद्रदिवाकर धुल नहीं सकती है ।

भव्यात्माओंको चाहिये कि इन व्यसनोंके सेवनमें दुख समझकर हमेशांको इनका त्याग करें। जिससे दुखको छोडकर उनको सच्चे सुखका अनुभव हो सके ।

अतिचारोंका दिग्दर्शन—

सिद्धान्तमें श्रावकके लिये ३ बातें त्याज्य बतलाई गई

हैं (१) मिथ्यात्व (२) अन्याय और [३] अभक्ष्य। अभीतक हमने सामान्यरूपसे इन्ही तीनों बातोंका दिग्दर्शन कराया है। उनका खुलासा जैसे मिथ्यात्वमें तो कुदेवादिकका पूजना २ अन्यायमें सप्तव्यसन जुआ आदिका सेवन ३ अभक्ष्यमें पांच उदुंबर और तीन मकारका सेवन करना अब इनके अतिचारोंका संक्षेपमें वर्णन किया जाता है—

१. मिथ्यात्वके पांच अतिचारोंका वर्णन ऊपर सम्यक्त्वके अधिकारमें हो चुका है।

२. अन्यायमें सप्तव्यसनके अतिचारोंका वर्णन निम्न लिखित हैः--

१. द्यूतके अतिचार छोडने चाहिये जैसे–जुआके खेल नहीं देखना चाहिये, परस्परमें दौड करके व दौड कराकर अथवा तास चौपडादिके खेल देखकर मनमें हर्ष मानना या हारजीत मानना सो सब अतिचार हैं

२. वेश्यासंबंधी अतिचार छोडने चाहिये-वेश्याके गीत वादित्र नाच हाव भाव रूप प्रवृत्ति देखना, सुनना, उनके स्थानमें जाना, वेश्यासक्त पुरुषोंकी सोवत करना, उनसे लेन देन करना सोसब वेश्यासेवन त्यागव्रतके अतिचार हैं।

३. चोरीत्याग व्रतके अतिचार निम्न प्रकार हैं— राजदरबारका जोर दिखाकर अपने दायदारोंसे अन्याय पूर्वक हिस्सा नहीं लेना, न्यायसे लेनेमें दूषण नहीं है।

और न अपने भाई वहिनोंके हिस्साको छिपावे, जो कुछ उनका हक होवे सो उनको ठीक २ दे देवें।

४ शिकार के अतिचार—कपडे, पुस्तक, कागजादि-कों पर मनुष्योंकी वा पशुओंकी तसवीरोंके कान नाक पेट हाथ पैर छेदना, आंखफोडना तथा आटेके मिट्टीके शकरके लकड़ीके कागजके मोमके पुतले खिलौने मनुष्यके आकारके वा तिर्यंचोंके आकारके बनाना उनकी वलीदेना उनके कान नाक काटना, आंखफोडना, खिलौनोंका व्यापार करना आदि शिकारत्यागव्रतके अतिचार हैं।

५ परस्त्री त्यागव्रतके अतिचार–कुमारीसे रमण करना किसी वालिकाका हरण करना, किसीस्त्री का अपनी वरजोरिसे शीलभंग करना, गंधर्व विवाह करना परस्त्रीसे हंसी मजाक करना।

अभक्ष्योंके अतिचार नीचे लिखे अनुसार छोड देना चाहिये–जोलोग अभक्ष्य भक्षणका त्याग करते है उनको चाहिये कि अपने व्रतमें स्थिर रहने के लिये–ऐसे फल न खायें जिसके गुण दोषकी ठीक २ जानकारी न करली गई हो। वहुतसे ऐसेभी फलहैं जिनको हम अच्छी तरह जानते हैं जैसे-सुपारी वदाम नारियल पिस्ता दाख खारक चिरोंजी मूंगफली इनको विना फोडे नहीं खाना चाहिये। कितनेही वक्त इनमें चलते फिरते भीतर वाहर

बैठे हुए बडे २ त्रस जीव देखे जाते हैं। उसी तरह जामुन, बैंगन, सेमफल, बेर, अखरोट आदि फल भी ऐसे होते हैं जिनमें जीव जंतु प्रत्यक्ष देखे जाते हैं. इन्हेंभी विना चीरे फाडे न खावे चौंलाफली भी उसीमें है।

मांस त्यागके अतिचार—चमडेके स्पर्शका पानी पीना, चमडेके कुप्पोंमें भरे गये ऐसे घी तेल हींग आदि पदार्थों का सेवन करना, चमडेके बने हुए पात्रोंमें रक्खे हुए निमक, आटा, हल्दी आदि मसाले वगैरह खाना, जिनमें चमडा लग रहा ऐसे चालनी सूपडा काममें नहीं लेना चाहिये।

मद्यके अतिचार—आठ पहरके ऊपरकी दही दूध अचार मुरब्बा ये नहीं खाने चाहिये। फूली हुई चीजें वा कांजी (सडा हुवा मांड) को भी नहीं खाना चाहिये। शराब पीनेवालोंके हाथका भोजन नहीं खाना चाहिये। जिन पात्रोंमें शराब रक्खी जाती है उनमें कोई रक्खी हुई चीज नहीं खानी चाहिये। शरावके हाथसे स्पर्शकी हुई कोई भी खाद्य वस्तु नहीं काममें लानी चाहिये। महुआ भी नहीं खाना चाहिये।

मधु [शहद] के अतिचार—जिन फूलोंमेंसे त्रस जीव अलग नहीं किये गये हों—नीम नींबू. केतकी, कचनार, केवडा तथा और भी फूल छोड देने चाहिये। गोभीके फूलभी इसी कोटीमें हैं इन सबका त्याग करना चाहिये।

शहदको आंखमें भी नहीं आंजना चाहिये ।

इस प्रकार सप्त व्यसन और उनके अतिचारोंको टालना चाहिये । पाक्षिक श्रावक और शुद्ध सम्यग्दर्शनमें इतनाही फरक है कि पाक्षिक श्रावक सम्यग्दर्शनके दोषों को पूर्ण रूपसे नहीं टाल सकता है, किन्तु शुद्ध सम्यग्दृष्टि उन दोषोंको बडींही सावधानीसे बचाता है ।

अब सम्यग्दर्शनके २५ दोषोंका संक्षेपसे दिग्दर्शन करा देते हैं—

शंकादिक आठ दोषों के नाम— १ शंका २ कांक्षा ३ विचिकित्सा ४ मूढदृष्टि ५ अनुपगूहन ६ अस्थिति करण ७ अवात्सल्य, ८ अप्रभावना ।

१ शंका–जैनधर्म या जिन भगवानके द्वारा कहे गये तत्वोंमें शंका रखना कि ये ऐसा है कि नहीं ? भगवानने जो कुछ कहा सो सब सच्चा है कि नहीं ? ऐसी शंका करना शंका दोष है ।

२ कांक्षा–सांसारीक सुख हमको मिले ऐसी इच्छासे धर्म सेवन करना कांक्षा दोष है ।

३ विचिकित्सा– धर्मात्मा जीवोंको रोग सहित व उनकी दीनावस्था देखकर उनसे ग्लानि करना वा शरीर के स्वरूपका विना विचार किये उनमेंसें निकलने वाला मल

मूत्र युक्त अवस्था देखकर धर्मात्माओंसे घृणा [नफरत] करना सो विचिकित्सा दोष है।

४ मूढदृष्टि— अपने मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयरूप कुबुद्धिसे किसीके द्वारा बतलाये हुए चमत्कारको देखकर भले प्रकार उनकी श्रद्धा कर लेना वा सराहना, । सो मूढ दृष्टि दोष है।

५ अनुपगूहन—धर्मात्मा पुरुषोंके दोषको देखकर सारी जनतामें कहते फिरना उस निमित्तसे उनकी निंदा करना दूसरे लोग उनको बुरा समझें इस दृष्टिसे उन दोषोंको प्रकाषमें लाना सो अनुपगूहन दोष है।

६ अस्थितिकरण—खुदको या दूसरोंको धर्ममार्गसे च्युत होते या शिथिल होते देखकर उसी प्रशस्य मार्गमें स्थिर नहीं करना, बल्कि कषायवश उनको गिरानेकी कोशिश करना सो अस्थितिकरण दोष है।

७ अवात्सल्य— धर्मसे वा धर्मात्मासे प्रेम नहीं करना, उनको कुछ नहीं समझना, उनको देखकर चित्तमें घृणा पूर्वक द्वेषादि कषाय व्यक्त करना सो अवात्सल्य दोष है।

८ अप्रभावना—जो धर्मको नहीं समझते या धर्मायतनोंसे प्रेम नहीं करते हैं वे धर्म कार्योंमें क्यों योग देने लगे ? धर्मके कार्योंसे घृणा रखना, धर्म कार्योंको देखकर

सराहना नहीं करना, धर्म कार्योंमें सम्मिलित नहीं होना, दूसरोंको धर्म कार्योंसे विमुख करना, धर्म कार्योंमें पैसे खर्च नहीं करना आदि अप्रभावना दोष है। इन आठों दोषोंसे उल्टे सम्यक्त्वके आठ गुण या अंग होते हैं।

आठ मद होते, तीन मूढताएं छह अनायतन इनका वर्णन पहिले किया जा चुका है वहांसे जानना चाहिये।

इन पच्चीस दोषोंके रहनेसे सम्यग्दर्शन जो अपनी आत्माकी खास स्वभावरूप भाव परिणति है वह नाश हो जाती है। और अनंत संसारको बढानेवाली मिथ्यात्वकी परिणति हो जाती है। ऐसी मिथ्यात्व परिणतिको गृहीत मिथ्यात्व कहते हैं। इन दोषोंसे वचनेका हरएक गृहस्थका कर्तव्य होना चाहिये। क्योंकि गुण और दोष संसर्गसेही होते हैं जिनकी संगति की जाती है दिन रात उनका संसर्ग रहने से आत्मिक परिणतिसे विमुखता होही जाती है। जिससे यह जीव संसारके घोर अंधकारमें पडकर अनंत दुख उठाया करता है। इसलिये ऐसी संगति हरगिज नहीं करनी चाहिये।

इतनी बात जरूर है कि जब हम अपने धार्मिक तत्वोंको अच्छी तरह समझकर अच्छी तरह अपने अच्छे बुरेको समझकर तत्वका ठीक २ निर्णय करने लग जाय

तो दूसरे सिद्धान्तोंके संसर्गमें जानेमें कोई दोष नहीं है। यदि अपनी दृढता नहीं हो पावे और अन्य सिद्धान्तोंमें हम लग जायंगे तो इसमें शक नही कि हमारी प्रवृत्ति अन्यथा हुए बिना रह नहीं सकती। इससे बिना दृढ प्रतीतिके अन्य संगतिमें जाना कदापि अच्छा नही है।

सम्यग्दृष्टिके चार चिन्ह और होते हैं जिनसे जाना जाता है कि 'ये सम्यग्दृष्टिहै— [१] प्रशम [२] संवेग (३) अनुकंपा और [४] आस्तिक्य। यद्यपि इनका परिचय ऊपर आचुका है। फिरभी प्रकरणवश संक्षेपमें लिखा जाता है।

२. प्रशम— जो आत्मीक स्वरूप रूप शांतिके विघात करने वाले अनंतानुबंधी क्रोधादि कपायके तीव्र परिणामरूप परिणतिकी उत्कटताका अभाव और रागादि परिणामोंकी मंदताके सद्भावकी प्राप्ति होना सो प्रशम है।

२, संवेग—संसार शरीर और इन्द्रियोंके विषयोंसे भयभीतता होना जिससे जीव सांसारिक दुख पावे ऐसी कृतिसे भयभीतता और आत्माके स्वरूपसे प्रेम होना सो संवेग है।

३, अनुकंपा—अपनी आत्माको तथा अन्य प्राणियोंको दुखी देखकर अपने मनमें ऐसी दया उत्पन्न होजावे और ऐसी भावना करे कि "ये बेचारे प्राणी कैसे सुखी होजावें"

"इनका दुख कब दूर होगा" ऐसे विचारोंको अनुकंपा कहते हैं।

४. आस्तिक्य—वीतराग देवने जीवादि पदार्थोंका जैसा स्वरूप वर्णन किया वे वैसे ही हैं, क्योंकि भगवान जिनेन्द्र अन्यथावादी कदापि नहीं होते हैं, ऐसे विचारोंको आस्तिक्य कहते हैं।

सम्यक्त्वकी भावना रूप इन चार गुणोंके और भी आठ तरहके परिणाम होते हैं। १. संवेग २. निर्वेद ३. निंदा ४. गर्हा ५. उपशम ६. भक्ति ७. वात्सल्य ८. अनुकंपा।

१. संवेग–धर्म कार्योंमें अत्यन्त रूचि रखना।

२. निर्वेद–संसार शरीर भोगोंसे वैराग्यरूप परिणाम होना।

३. निंदा–गुणोंके होते हुए भी अपनी निन्दा करना।

४. गर्हा–आत्मामें कर्मोंके बन्ध होनेकी गर्हा करना।

५, उपशम–क्रोधादि कषायोंकी मंदता रखना अर्थात परिणामोंमें शान्ति रखना।

६. भक्ति—नास्तिकपनके भाव रखना।

७. वात्सल्य— धर्म और धर्मात्माओंसे आल्हाद रूप परिणाम रखना

८अनुकंपा—संसारके प्राणियों पर चाहे वे त्रस जीव हों या स्थावर एकेन्द्रिय जीव हों उनपर

दयाभावकरना सो अनुकंपा है।

इस प्रकारके व्यावहारिक गुणोंको धारण करने वाले श्रावकोंको चाहिये कि वे इस प्रकार संसारमें रहते हुये भी जो सात प्रकारके भय होते हैं उसका भी भय दूर करें।

सात प्रकारके भयोंके नाम व उनके लक्षण ऊपर बतलाये गये हैं वहांसे जानें। एवं माया मिथ्या और निदान ऐसी तीन शल्य होती हैं, उनका भी परिहार करना चाहिये यदि तीन शल्योंमेंसे कोईसी शल्य होती है तो व्रतका पालन ठीक २ न हो सकनेसे व्रताचरण करता हुआ भी श्रावक अव्रती ही रहता है। महान आचार्योंने "निः शल्यो व्रती" शल्य रहितको ही व्रती कहा है शल्योंका वर्णन भी कियाजाचुका है वहींसे जानना चाहिये।

इस तरहसे संक्षेपसें मध्यम श्रावकका वर्णन करके अब उत्तम श्रावकका स्वरूप बतलाया जाता है। ऊपर कहे गये जघन्य और मध्यम पाक्षिक श्रावकोंके व्रत या क्रियाओंको अच्छी तरह ज्ञान पूर्वक पालन करता हुआ बाईस प्रकारके अभक्ष्योंका जिसके भली प्रकार त्याग होता है वह पूर्ण पाक्षिक श्रावक कहलाता है। सिद्धान्त शास्त्रोंमें इसको ही उत्तम पाक्षिक श्रावक कहा गया है।

नत्वाश्रीशांतितीर्थेशं, लोकालोकप्रकाशकम् ।
वक्ष्ये द्विदलदोषाश्च, गृहस्थानां हिताय वै ॥१॥

अर्थ—मैं व्याख्यानकर्त्ता लोक और अलोक के जानने वाले श्री शांतिनाथ भगवान को नमस्कार करके गृहस्थ लोगों के हितार्थ द्विदल के दोषों का वर्णन करता हूं।

ये द्विदल दोष दोष पूर्वाचार्यों द्वारा कथित हैं। साथ ही २२ अभक्ष्यों का भी दिग्दर्शन कराया गया है।

जिज्ञाओं के चित्त में ध्यान रहे कि मैं इंगलिश पढा-हुआ नहीं हूं परन्तु इंगलिश पढे लिखे व्यक्तियोंसे मेरा मिलने मिलाने का संयोगरूप व्यवहार जरूर रहा है इसलिये यहां पर जो इंगलिश वाक्य (अहाने) दृष्टान्त दिये गये है वे मेरे उन लोगोंसे सुने सुनाये हैं। दृष्टान्त इसतरहसे हैं। Wealth js lost nothing jslost वेल्थ इज लास्ट समथिंग इज लास्ट।

अर्थ—मनुष्यका यदि धन विनाश होजावे तो समझना चाहिये कि उसका कुछ भी नाश नहीं हुआ Health is lost something is lost हेल्थ इज लास्ट समथिंग इज लास्ट अर्थ—अगर मनुष्य का स्वास्थ्य खराब होगया तो समझना चाहिये कि उसकी कुछ सामान्य हानि हुई है। When character is lost every thing is lost व्हेन करे-

क्टर इज लास्ट एवरी थिंग इज लास्ट।

अर्थ—अगर मनुष्यका शील सदाचार एवं चारित्र [संयम] विनष्ट हो जावे तो समझना चाहिये कि उसका सर्वस्व [सभी] विनाशको प्राप्त होगया उसके पास कुछ भी नहीं रहा।

अयि ! जग जालमें फँसे हुए प्राणियो ! व मोह रूपी मदिरासे मदोन्मत्त हो ! इतने ज्यादा बेखबर एवं बेहोश होरहे हो कि तुम्हें स्वस्वरूप परिज्ञानकी रंचमात्र भी जिज्ञासा नहीं होती, होश में आओ अपनी शक्ति एवं सामर्थ्यको पहिचाननेके लिये प्रयत्नशील होओ। इन्द्रियोंको विषय वासनाओंकी ओर बेलगाम दौडनेवाले इस मनरूपी घोडेको वशमें करो, बाह्य विषयोंसे हटकर थोडी अन्तरकी ओर दृष्टि करो और फिर जरा अपनी सत्ताको भी तो देखो कि वह क्या है। उसका क्या स्वरूप है ? क्या तुममें उसके [स्वरूपकी] वास्तविक झलक पाइ जाती है ? यदि उसकी ओर रुचि झलक नहीं पाई जाती तो ऐसा क्यों ?

तुम मानव हो, तुममें सदसद्विवेकशालिनी बुद्धि पाई जाती है, अतः तुम्हारा कर्तव्य है कि ऐसा सुयोग पाकर ऊपर लिखित प्रश्नोंके उत्तर प्राप्त करनेकी चेष्टा

करो, और देखो यदि उसके विपरीत तुम्हारी प्रवृत्ति होरही हो तो सन्मार्गपर चलनेके लिये अपने आपको तैयार करो।

बहुत लम्बे समयसे शरीरको ही आत्मा मान, तुम उसके भरण पोषणमें लग रहे, उसको पुष्ट बनानेके लिये भक्ष्याभक्ष्यका कुछ विचार न करते हुए व मिथ्योपदेशके फंदेमें फंसकर मांस, मदिरादिका सेवन करते रहे। शरीर-पुष्टिकारक वस्तुओं व सामग्रियोंके बटोरनेमें अपने आपको व्यस्त व दुखी करते रहे, परिणाम यह हुआ कि पापकर्म रूपी शृंखलाओंसे बंध गये, जिसके फलस्वरूप संसार सागरमें गोते लगाते फिरे, आज कर्मयोगसे मानव पर्याय पाई है, अतः अपने स्वरूपको प्राप्त करनेकी चेष्टा करो।

इसकी प्राप्तिके लिये जहां अन्तरंग शुद्धि अर्थात् राग-द्वेषादि भावोंके कम करने व निवृत्ति करने आदिकी आवश्यकता होती है, वहां बाह्यशुद्धिका भी कम महत्व नहीं है, बाह्य शुद्धि अन्तरंगकी शुद्धिके लिये सहायक होती है, यह तथ्य तो निर्विवाद रूपेण निर्णीत है। यदि ऐसी बात नहीं होती तो दुनियांवाले, निम्न लिखित बात बात न कहते।

श्लोक—

यादृशं भक्षयेदन्नं बुद्धिर्भवति तादृशी ।
दीपो भक्षयति ध्वांतं कज्जलं च प्रसूयते ॥

अर्थ—जैसा अन्न खाता है बुद्धि उसी तरहकी होजाती है जैसे दीपक अंधकारका भक्षण करता है तो कज्जलको ही उगलता है कहा भी है —

दोहा—

जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन्न ।
जैसा पीवे पानी, वैसी बोले वानी ।

इससे यह तो कहा जासकता हैं कि मानसिक विचारों पर भोजनका वहुत ज्यादा असर होता है, किन्तु ऐसा कहकर हम और वाह्य कारणोंका जैसे सफाई स्वच्छता से रहना समीचीन पुस्तकोंकी ओर चित्त लगाये रखनाभी आदिका निषेध नहीं करना चाहते हैं ।

नीतिकारों के " मन एव मनुष्याणां कारणं बंध-मोक्षयोः " इस वाक्यपर जब लक्ष्य देते हैं, तव तो आहारका और ज्यादा महत्व बढ जाता है, कारण कि मानसिक विचारोंसे ही मानव कर्मबंधनवद्ध होता और उन्हींके परिवर्तित होनेपर वह बंधनमुक्त होजाता, इस तरह मानसिक विचारही उत्थान व पतनके लिये कारणीभूत हैं ।

जबकि मानसिक विचारोंका यह माहात्म्य है, तो उनमें परिवर्तन कर देनेवाले आहारका कितना महत्व नहीं होना चाहिये। अतः इस प्रकरणमें अभक्ष्य, भक्ष्य पदार्थोंके विषयमें कुछ कहा जायगा। इसका निर्णय होजाने पर सहजही आहारमें सात्विकता आसकती है, जिससे कि मन सद्विचारोंकी चिंतनामेंही लगा रहकर अपने आपको पापकर्मोंसे दूर रख सकता है तथा अभ्यास करते २ क्रमशः शुभोपयोगसे इस शुद्ध आत्मस्वरूपके चिंतवनमें अपने आपको परिणत कर सकता है।

अच्छा तो अभक्ष्य इस शब्दपर विचार करनेपर सहजही अर्थ निकल आता है, कि वे पदार्थ या वस्तु जो खाये योग्य नहीं अभक्ष्य कहलाते हैं।

अभक्ष्यता कई कारणोंसे हो सकती है, संभव है कि किन्हीं पदार्थोंके सेवन करनेसे अनन्त स्थावर जीवोंका घात होता हो, तथा त्रस द्वीन्द्रियादिक जीवोंका घात होता हो, तो वे खाने योग्य नहीं होते हैं। इसी प्रकार जो मनको मोहित कर विवेक को नष्ट करने वाले [मदिरा-आदिक] पदार्थ हैं वे सेवन करने योग्य नहीं। जो अनिष्ट हैं, तथा अनुपसेव्य हैं, अर्थात उच्च कुलीन पुरुषोंके द्वारा उपेक्षणीय हैं जो उपयोगमें नहीं लाये जाते हैं, वे त्याज

या अभक्ष्य कोटिमें गर्भित हैं, इसप्रकार और भी कारण हैं, जिन से पदार्थ अभक्ष्य माने जाते हैं।

भक्ष्य पदार्थोंकी अपेक्षा अभक्ष्यकी संख्या यद्यपि वहुत है, फिरभी कुछ ऐसे कारण हैं जिनको लक्ष्यमें रखनेपर अभक्ष्य पदार्थोंकी सहज ही व्यावृत्ति होजाती है। अभक्ष्य जो कि जन साधारणमें प्रायः "बाइस अभक्ष्य" के नामसे प्रचलित हैं, उनके नाम निम्नलिखित हैं।

वाईस अभक्ष्योंके नाम नीचे गाथाओंमें वतलाये गये हैं—

यत पंजुम्बरी चउविगई हिमविषकरये अशव्य मिट्टीये।
रयणिभोयण गांचिय वहुवीया अणंतसंधाणं ॥
घोलवडा वायंगणं अणमाणि फल फले याणि च।
तुच्छ फलं चलियरसं वज्झहि वज्झाणि विविसं ॥

कवित्तछंद—

ओरा घोरवरा निशि भोजन, वहुवीजा वैंगन संधान।
पीपरवर ऊंवर कठूमर पाकर जो फल होंय अजान।
कंदमूल मांटी विष आमिष मधु माखन अरु मदिरापान।
फल अतितुच्छ तुषार चलितरस जिनमत ये बाइस अखान॥

अर्थ—(१) ओला (२) द्विदल (३) रात्रीभोजन [४] वहुवीजा [५] वैंगन (६) अथानी, मुरब्बा [७] पीपरफल

(८) वडफल (९) ऊमरफल (१०) कटूमरफल (११) पाकरफल (१२) अजानफ़ल (१३) कंदमूल (१४) मांटी (१५) विप (१६) मांस (१७) शहद (१८) मक्खन (१९) शराव [२०] अतिसूक्ष्मफल (२१) वर्फ और (२२) चलितरस जैनमतमें ये वाईश अभक्ष्य कहे गये हैं।

(१) ओला—पानीवरसाकें साथ जो कर्कपत्थर (वर्फ) गिरता है उसको ओला कहते हैं। कोई २ देशमें उनको गड़ेभी कहते हैं। वे ओले अनछने पानीके जमे हुए होनेसे उनमें अनंतकाय जीव होते हैं। उनका भक्षण करनेसे असाध्य रोग और अनंत जीवोंकी हिंसा करनेका पाप लगता है इससे त्यागने योग्य हैं।

[२]. घोरवडा -(द्विदल) जिस पदार्थको पहिले घोर यानि घोलकर रख दिया जाता है रखनेसे उसमें खट्टापन आजाता है इसीसे उसको घोर कहते हैं।

प्रश्न— उसमें खट्टापन क्यों आजाता है ?

उत्तर— वह पदार्थ घोला जाता है और दिये हुए मर्यादाके वाहार बहुत समयतक उसी हालतमें रक्खा रहता है इससे उसमें संडाद आजानेसे खट्टापन आजाता है वह खट्टापन बिना जीवोंकी उत्पत्ति हुए आ नहीं सकता है उस लसदार घोरके पकवान वनाये जाते हैं तब उसमें जितनें जीव पैदा हुए थे सब मर जाते हैं।

इसलिये उसको घोर कहिये बहुतसे त्रसकायिक जीवोंकी जो किलटों सरीखे प्रत्यक्ष दीखते हैं हिंसा हो जाती है अतएव वे घोर' कहे जाते है ऐसे पदार्थ अहिंसासे प्रेम करने वाले प्राणियोंको कदापि भक्षण नहीं करने चाहिये।

प्रश्न—इस तरह के कौन २ से पदार्थ छोडना चाहिये ? सो कहो ?

उत्तर—ऐसे पदार्थ प्रत्यक्ष में तो जलेबी दहीवडे आदि हैं।

प्रश्न—कृपाकर इनका स्वरूप खुलाशा कहिये जिससे इनके छोडनेकी इच्छा पैदा हो ?

उत्तर—इनका खुलाशा इस तरह है—कि जो ऊपर जलेबी बतलाई है वह जलेबी मेंदाको गलाकर बनाई जाती है। पहिले सामको मेंदामें पानी डालकर उसका घोर बनाकर रख दिया जाता है रातभर उसी पात्रमें रक्खी रहती है जो मर्यादा के बिलकुल बाहर होजाती है उसमें बहुत बारीक उसी रंगके शरीरधारी असंख्याते जीव पैदा हो जाते हैं सबेरे उसको खूब फैंटा जाता है जब उसका घोर उठकर तैयार होजाता है तब उसकी जलेबी बनती है इस तरकीब के बिना जलेबी बनही नहीं सकती है।

प्रश्न—यह घोर क्या पदार्थ है ?

उत्तर—जब २ जलेबी बनाने की इच्छा होती है तब मैंदा एक बर्तनमें गलादी जाती है। जब मैंदा गल जाती है तब उसके गलनेसे मैंदामें चिकनापन और खट्टापन आजाता है तभी वह जलेवी मिष्ट और स्वादिष्ट बनती है।

प्रश्न— वह चिकनापन और खट्टापन कैसे हुआ सोभी कहो ?

उत्तर— मैंदा गलाई सो गलनेसे या सडनेसे मैंदामें खट्टापन पैदा होजाता है तथा उसके अंदर पैदा हुए जीवोंके मरनेसे चिकनापन पैदा होजाता है। जब जलेवी बनाई जाती है तब वह लथपथ जीवों से भरीहुई मैंदाको गर्म गर्म घृतसे भरी हुई कडाही में छोडदी जाती है तब जो मैंदा सडी थी (यानें उठाई हुईथी) सो गर्म घीमें पडनेसे उसमें के तमाम त्रसकायिक जीव मरजाते हैं। कोई इस बातको प्रत्यक्ष देखना चाहे तो हलवाईकी दूकान पर जाकर देख सकता है। उस मैंदामें से अंदाजन एक तोला मैंदा उठाकर साफ किये हुए मलमलके कपडेपर रखकर उसपर धीरेसे पानी डाल जायतो आपको इस कपडेपर चलती फिरती लटें नजर आजांयगी। प्रत्यक्ष हिंसाके कारणको देखते हुए फिरभी न छोडो तो दुर्भाग्य और होनहारकी बलवत्ता है ऐसा मनुष्य तो जैनधर्मके बिलकुल बाहर है। इस तरहके पापसे ही यह जीव संसारकी चारों

गतियोंमें चक्कर काटता है। और अनंत कालतक अनेक प्रकार के दुःख उठाता है कारण ये है कि जिन्हा इन्द्रियके वशीभूत होकर मनुष्य अपने कर्तव्यको नहीं पहिचानता है और थोडेसे स्वादके लिये घोर पाप सेवन करता है। सारा संसार विषयोंके आधीन है जिन्हा इन्द्रियकी गुलामी करता हुवा अखाद्य वस्तुओंके त्याग करनेसे वहिर्भूत रहता है। जिसका संसार निकट आजाता है जिसको शाश्वतिक सुखके मिलनेका समय समीप आजाता है वह हरएक पदार्थको सेवन करनेके पहिले उसकी परीक्षा करकेही उसको ग्रहण करता है।

इसलिये धर्मात्मा भाइयोंको चाहिये कि जलेकी सरीखे अभक्ष्य पदार्थका दूरसेही परिहार करें।

अब द्विदल विषयक विचार करते हैं—

द्विदल—

जिन पदार्थोंके दो समान भाग हो जाते हैं, ऐसे पदार्थोंका दूध, दही, या छाछसे मिलाकर खाना द्विदल सेवन करना कहलाता है। ऐसे पदार्थोंका सेवन जीव हिंसाके लिहाजसे मना (निषिद्ध) है। इसी तरह काष्टान्न का भी दूध, दही, वा छांछके साथ खाना महान् पापार्जनकारी है।

इसी विषयको लेकर आचार्योंने निम्म लिखित रूपसे वर्णन किया है।

श्लोक—

गोरसेन तु दुग्धेन, दध्ना तक्रेण सूरिभिः।
द्विदलान्नं सुसंपृक्त, काष्ठं द्विदलमुच्यते ॥१॥
द्विदल भक्षणं ज्ञेय मिहामुत्र च दोषकृत्।
यतो जिव्हायुते तस्मिन्, जायन्ते त्रसराशयः॥२॥
पाक्षिकश्रावकैर्नूनं, हातव्यं द्विदलं सदा।
यद् भक्षणे फलं तुच्छं, पापं भूरि च दुःखकृत् ॥३॥

आचार्यने कहा किस ग्रंथमें किस प्रकरणमें लिखा है हमने देखा नही कहींसे उठाया हैं।

इन्द्रवज्रा—

आमेन पक्वेन च गोरसेन।
मुद्गादियुक्तं द्विदलं सुकाष्ठम् ॥
जिव्हायुतिं स्यात् त्रस जीव राशिः।
सम्मूर्छिमा नश्यति नात्र चित्रम् ॥

अर्थ— आचार्योंके द्वारा-दूध, दही, या छाछमें मिलेहुए द्विदलान्न ऐसे अनाज जिनके कि बीजमेंसे दो समान विभाग हो जाते हैं जैसे मूंग, चना, मटर, अरहर, आदि। तथा काष्ट मेथीदाना, लालमिर्चके बीज भिंडी

तोरई चोलाफली, सेम आदिकके बीज द्विदल कहे जाते हैं।

तूं उस द्विदलके साथ जिव्हाका संबंध होनेपर अर्थात् उसमें मुहकी लारके मिलने पर त्रस जीवोंकी एक बडी भारी राशि पैदा हो जाती है, अतः द्विदलके भक्षण यद्यपि थोडी देरके लिये जिव्हा इंद्रियकी तृप्ति होजाने रूप अल्प-फलकी प्राप्ति होती है। फिर भी एक बडी भारी त्रस जीवों की राशिको खाजानेसे महान पापका बन्ध होता है।

इस लिये ऐसे द्विदलके खानेका पाक्षिक श्रावकोंको अवश्यही त्याग करना चाहिये। आगेके नैष्ठिक आदि श्राव-कोंकी तो कहना ही क्या वे तो इसके त्यागी होते ही हैं।

गोरसके साथ चाहे वह पका हुआ हो या कच्चा हो मिला हुआ जो मूंग आदि जो द्विदलान्न एवं काष्ठ होता है उसको जिव्हाके साथ सम्पर्क होनेपर उसमें सम्मूर्च्छन जन्म से पैदा होने वाली त्रस जीव राशि पैदा हो जाती है। अतः द्विदल सेवनसे महती त्रस जीवराशि नष्ट होती है, और महती हिंसाका भागी होना पडता है, इसमें कोई शककी बात नहीं है।

भावार्थ—द्विदलके दो भेद हैं, एक काष्ठ द्विदल, दूसरा अन्न द्विदल, काष्ठसे उन पदार्थोंका गहण किया जाता है,

जिनमें तेल नहीं निकलता है, जैसे मैथीदाना, या लाल-मिर्चके बीज, भिंडी, (?) तोरई, ककडी, खरबूजा, कद्दू, गंवारफली, आदिके बीज जिनमें साहजिक दो समान भाग पाये जाते हैं, इन पदार्थोंको यही गोरस (दूध, दही, छाछ), में मिलाकर खाया जाय तो वह काष्ठ द्विदलका सेवन कहलायगा।

इसी तरह ऐसे अन्न जिनके सहजसेही दो समान भाग पाये जाते हैं। और आसानीसे दो समान भाग हो जाते हैं, जैसे मूंग, उडद, चना, मटर, चवला आदि इनको कच्चे या पक्के छाछ, या दही, दूधके साथ मिलाने पर द्विदल हो जाते हैं। इसको भी उपयोगमें लाने पर महान पापका बंध होता है। अतः हे पाप भीरू आत्माओं! जब तुम्हें यह ज्ञात हो गया कि द्विदलमें दूध, दही, छाछके साथ सम्बन्ध होकर मुखमें रखने मात्रसे अनेक त्रस जीव पैदा हो जाते हैं, फिर भी क्या जिव्हेन्द्रियके थोडेसे मजेके लिये आंख मीच कर यह अनर्थ करते रहोगे? ध्यानमें रक्खो कि तुम्हारी जरासी लालसाकी तृप्ति होनेके खातिर असंख्य त्रस प्राणियोंका घात हो जाना निश्चित है एसी निर्दयताके एवं असावधानीके फल स्वरूप तुम्हें दुर्गतिमें जाकर अनेक दुख भोगने पडेंगे।

अभी तक तो आगम प्रमाणकी सहायतासे द्विदलमें

जीव पाये जाते हैं, इस बातको प्रतिपादित किया है, अब प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा यह बतलानेकी चेष्टाकीजायगी कि द्विदल सेवनसे त्रस जीवोंके घातका पाप कैसे लगता है।

आप लोगोंने देखा होगा कि जैसे आदमी तोता मैना आदि प्राणियोंको पालते हैं, वैसेही कुछ आदमी, तितर पालते हैं, इस तितर नामक पक्षीका ऐसा स्वभाव हुआ करता है कि वह कीटाणुओंको ज्यादा चावसे खाता है, अपेक्षा अन्य पदार्थोंके गर्मी और ठन्डमें तो जाकर वे (पालने वाले) जङ्गलमें जा दीमक आदिके कीटाणुओंको चुगा लाते हैं, किन्तु पानी बरसनेके कारण जंगलमें तो जा नहीं पाते, अतः घरपर ही छाछ व वेसनको घोलकर कडी बना लेते हैं, कडी बनने पर उसमें वे थूक देते हैं, फिर उस कडीको वह जमीनके ऊपर डाल देते हैं और उसको टोकनीसे ढक देत है कुछ समय पश्चात् उसमें कीडे (लटें) बिलबिलाने लगती हैं। तब वे पालने वाले अपने तितरोंको चुगनेके लिये छोड देते हैं।

इस प्रत्यक्ष प्रमाणसे भी आपलोगोंको दृढ विश्वास हो गया होगा कि व्दिदल [गोरस] दूध, दही, छाछमें मिले हुए मूंग आदि या काष्ट द्रव्यके साथ रसना इन्द्रिय संबंधी लारके संबंध पर अवश्य ही त्रस जीव राशि उत्पन्न हो जाती है। क्या अब भी इस बातका निषेध किया जा

सकता है द्विदलके सेवनसे महान् पापका बंध होता है।

वही आगे एक कविने और भी कहा है—

Do not injure the ant which is
the carrier of grain .
for it has life
and life is dear to all

डू नॉट इनजुअर दी अंन्ट विच इज
दी केरियर ऑफ ग्रेन
फॉर इट हैज लॉइफ
एण्ड लॉइफ इज डीअर टु ऑल।

उन चींटियोंको, जो अनाज ढोया करती हैं, मत सताओ, क्योंकि इनमें जीवन है और जीवन सब को प्यारा है।

Eating is to sustain life and meditate
How long didst thou live
To what purpose killest thou Dasa Darius

इटिंग इज टू ससटैन लॉइफ एण्ड मेडिटेट
हाउ लॉग डिडस्ट दाउ लिव
टू वाट परपज किल्लेस्ट दाऊ देरियस
"दस धारिनस"

भोजन करना जीवन रखने और ध्यान (तपस्या) करने के लिये है। तू कितने लम्बे अर्से (समय) के लिये जीवित रह चुका है। तू किस लिये "दश प्राणधारियों को" मारता है।

जब यह बात निर्णीत सी होगई है तो ए दया धर्मके पालन करनेवालो द्वीदल सेवनका परित्याग कर अपना आत्महित क्यों नहीं करते? जरूर इसपर ध्यान देना चाहिये मैं जान रहा हूं कि मेरे सामान्य कथन से जिन्होंने सागर-धर्मामृत पढा होगा, उन्हे विरोधसा प्रतीत हो रहा होगा, कारण कि मैने तो कहा है कि दूध, दही व छाछमें चाहे यह छांछ व दही गर्म दूध को जमाकरकी हो या ठण्डे दूधको जमाकर की हो द्विदल अन्नादिकके मिलानेसे द्विद-लका दोष लगता है। किंतु सागरधर्मामृतमें तो यह लिखा है कि कच्चे दूधमें व कच्चे दूधसे तैयार हुए दहीमें व छांछमें दो दल वाले (फाड) अन्न मिलानेसे द्विदलका दोष लगता हैं न कि पक्के गोरसमें द्विदल अन्न मिलानसे।

सागर धर्मामृतके पांचवे अध्यायके १८ वें श्लोक जो कि निम्न लिखित है।

श्लोक

आम गोरससंपृक्तं द्विदलं प्रायशोऽनवम्।
वर्षास्वदलितं चान्न पत्रं शाकं च नाहरेत्॥

स्पष्ट रूपसे लिखा किः—

कच्चे दूधमें अथमा कच्चे दूधसे तैयार हुई छाछ व दहीमें मिला हुआ द्विदल वाला अन्नदोष व पापको करनेवाला है अतः उसे नहीं खाना चाहिये इसीतरह जो पुराना

द्विदल अन्न है उसेभी नहीं खाना चाहिये। वर्षा ऋतुमें विना दला हुआ द्विदल तथा जिसमें पत्ते हों ऐसे हरे शागभी नहीं खाना चाहिये।

इस प्रकार उपरिलिखित कथनको लक्ष्यमें रखनेपर मेरा कथन कुछ ज्यादतीको लिये हुये सा प्रतीत होरहा होगा किन्तु वास्तविकताका ज्ञान होनेपर मेरा विश्वास है कि सब वचन युक्ति युक्त प्रतीत होने लग जांयगें।

भव्यात्माओ! इस वातको तो आप लोग अंगीकार करेंगे कि जिनागम व जैन सिद्धांतके उपदेष्टा सर्व सत्व हितकारक धर्मप्रवर्तक, वीतराग सर्वज्ञ युक्ति व आगमके अविरोधी कथन करने वाले परम पूज्य श्री अरहंत देव हैं। उनके केवलज्ञान रूपी सूर्यमें त्रिलोकवर्ती समस्त पदार्थ व उनकी त्रिकालवर्ती समस्त पर्यायें हाथ पर रखे हुए आंवलेके समान प्रतिविम्बित होती रहती हैं। जब ऐसी स्थिति है फिर यह मन्तव्योंमें नानात्व कैसा? जिसकी आधार सिखा सत्य व अहिंसा हो उसमें हिंसोत्पादक द्विदलका विधान कैसा! प्रत्यक्ष रूपेण जब जीवोंकी उत्पत्ति द्विदलमें, जो कि पक्के अथवा कच्चे गोरसमें द्विदल अन्न मिलानेसे बनता है थूकके मिलाने पर देखी जा सकती हैं जैसा कि तीतर चुगाने वालोंके उदाहरणमें कह दिया गया है फिर यह विवाद ग्रस्तता कैसी। इसलिये शिथिलाचारका पोषण,

अहिंसाका प्रबल समर्थक प्राप्त कैसे कर सकता है ?

इसको सुनकर आपमेंसे कोई खडा हो तपाकसे पूंछ सकता है कि तो क्या इसका यह निष्कर्ष निकाला जाय कि सागार धर्मामृतका कथन युक्ति संयत नहिं है ? यह अथवा ऐसा तो नहिं कहा जा सकता हैं कि जिन पूर्व ग्रन्थोंका आलंबन लेकर पं. आशाधरजीने अपनी रचना रची वे सिथिलाचार पोषक या तो दिगम्बर जैन ग्रन्थही नहि थे, या फिर संभव है कि वे उन (पंडितजी के) पूर्व पाये जानेवाले श्वेतांबर जैन ग्रन्थ हों। अर्ष आचार ग्रंथोंमें तो शिथिलाचारके लिये रंचमात्रभी स्थान नहिं पाया जाता। और फिर इतनाही, जैसा यह कथन श्वेताम्बर ग्रंथोंके आधारसे पाया जाता है। वैसाही एकाध जगह और भी वर्णन पाया जाता है।

६७। अपने आर्ष ग्रन्थों में ही द्विदल खानेका निषेध किया हो ऐसी बात नहीं है, शरीर शास्त्रसे विशेष संबंध रखनेवाले आयुर्वेद के ग्रंथभी द्विदल सेवनके विषयमे ऐसाही अभिमत व्यक्त करते हैं।

रसायन सार प्रदीपमें लिखा है कि—

शीतोष्णं गोरसे युक्तमन्नं सार्धद्विकफलम्
तस्मात् भक्ष्यमाण मेकं रोगोत्पत्तिः प्रजायते ॥

जो पुरुष शीत अथवा उष्ण गोरसमें मिश्रित द्विदल का सेवन (भक्षण) करता है उसके रोगोंकी उत्पत्ति हो जाती है।

यह तो हुई आयुर्वेद द्वारा आर्ष वचनोंकी पुष्टी, अब उन श्वेतांम्बर ग्रंथोंका उल्लेख कर देना चाहता हूं, जिनकी रचना सागारधर्मामृत से पहले हो चुकी थी, व जिनमें उष्ण गोरसमें मिश्रित द्विदल सेवनका विधान किया है। यद्यपि इतना होनेपर भी निश्चित रूपेण यह नहीं कहा जा सकता कि सागारधर्मामृतका कथन इन ग्रंथोंसे लिया गया है। किन्तु यह अनुमान किया जा सकता है चूंकि दोनोंके कथनमें शाम्य पाया जाता है, अतः संभव है कि पूर्व रचित श्वेताम्बर ग्रन्थोंकी जिनमें द्विदल सेवन का विधान पाया जाता है, छाया इस ग्रंथपर पडी हो, श्वेताम्बराचार्य श्री जिनदत्त सूर्य रचित संदोह दोहावलीमें निम्न लिखित कथन पाया जाता है।

[गाथा]

" उक्कालियम्मितक्के विदलक्खे वे, विणात्थि तद्दोसो "

[उकाली हुई गर्म की हुई] छाछसे बने हुए द्विदल सेबन करनेमें कोई दोष नष्ट हो जाता है।

इसी तरह श्री प्रबोधचंद्र विरचित " विधिरत्नकर-

ण्डिका जो कि श्वेताम्बर आचार ग्रंथ है उसकी पाठिकामें भी है कि—

उत्कालितेऽग्नितनाऽत्युष्णी कृत्ते तक्रे गोरसे उपलक्षणात् दध्यादौ च द्विदलं मुग्दादि तस्य क्षेपस्तस्मिनपि सति किं पुनः द्विदलभक्षणानन्तरप्रलेहादि इत्यपरोऽर्थः नास्ति तद्दोषो द्विदल दोषो जीवविराधनारूपः।

उकाले अर्थात् अग्निसे गर्म किये हुए गोरसमें उपलक्षणसे दही, छाछ आदिमें मूंग आदिमें दो दालवाले अन्नके मिलानेपर द्विदल जन्य जो जीव विराधना रूप दोष है, वह नहीं लगता है। अर्थात् ऐसे द्विदलके साथ जिन्हा इन्द्रियका सम्पर्क भी हो जाय फिर भी जीव विराधनाका दूषण नहीं लगता।

हमारे ऊपर लिखित कथन— सागारधर्मामृतका कथन उससे पूर्व रचित श्वेताम्बर शास्त्रोंसे मिलता-जुलता है, अतः संभव है कि उस पर इन ग्रथोंकी छाप पड़ी है? उसीकी पुष्टि सागारधर्मामृतके अध्याय पांचवेंके २१-२२-२३ वें श्लोकमें वर्णित कथनसे भी हो जाती है। ऐसा कथन तो प्राचीन दिगंबराचार्योंके ग्रन्थोंमें अभी तक देखनेको नहीं मिला, जो भी आचार्य ग्रंन्थोंका स्वाध्याय करते हुए दृष्टि गोचर हुआ, उससे जो इसकी [सागारधर्मामृत-

कथित कथन की] पुष्टि नहीं होती, वे तो इससे प्रतिपक्ष रूपही आदेश देते हैं।

दिगंबराचार्य प्रणीत आचार शास्त्रोंके कथनानुसार गाय भेंस, बकरी, आदि दूध देनेवाले पशुओंके "थन" दूध दुहनके पहले धो लेना चाहिये। यदि नहीं धोये जायगें तो बछडे के दूध चोंखने के कारण वह निकला हुआ दूध जूठा हो जायगा, अतएव उचित हो जानेसे अपेयही रहेगा।

इसी तरह दूधके विषयमें भी यह विधान पाया जाता है कि दुग्ध दोहने के बाद उसे ४८ मिनिटके पहिले अन्तर मुहूर्तमेंही छान लेना चाहिये। छाननेके बाद उसे इतना गर्म करलेना चाहिये जिससे कि उसके "थर" अर्थात् मलाई आजावें ऐसा क्यों करना चाहिये? इसके लिये कारण बतलाते हुए उन्होंने कहा है कि यदि ४८ मिनिट से ज्यादा समय तक विना गर्म किया हुआ रखा रहेगा तो उसमें उसी सरीखे अनेक त्रस जीवोंकी उत्पत्ति हो जावेगी, जिससे न तो वह पीने योग्य रहेगा और न गर्म करने योग्यही रहेगा। जब दूध उपयोगकेही अयोग्य हो गया तो उससे जमाया हुआ दही व किया हुआ छाछ क्योंकर काममें लाने योग्य रह जायगा अर्थात् वह भी अभक्ष्य कहलायगा।

वर्तमानके डाक्टर लोगोंकाभी यही कहना है कि ४८ मिनिटके बाद दूधमें (Germs) कीटाणु, पैदा होने लगते हैं। अतः ऐसे दूध आदिका सेवन नहीं करना चाहिये कारण कि ऐसा करनेपर भयंकर रोगोंके पैदा होनेकी संभावना है। यदि इस कथनसे जब सागरधर्मामृतके कथनकी तुलना आप लोग करेंगे तो स्वयं ही समीचीनता व असमीचीनता का परिज्ञान हो जायगा।

इसतरह उन सबको सुनकर यह स्वीकार करने को आप लोग तैयार होगये होंगे. कि अमर्यादित अथवा मर्य्यादित दूध, दही व छाछमें द्विदल अन्नका सेवन करना जीव रक्षाके ध्यानसे महान् अनर्थकारी है।

कुछ सज्जन, जो एन्द्रियक विषय सेवनकी ओर ज्यादा झुके हुये है वह कहेंगे कि इस विचारके अनुसार तो जिनके बराबर दो दल अर्थात् (भाग) हो जाते हैं ऐसे मूंग चना उडद आदि अन्नको, जिनमेंसे तैल निकलता ऐसे बादाम. पिस्ता चिरोंजी, मूंगफली आदि द्रव्योंको छोडकर तथा काष्ट द्रव्य जैसे मैथीदाना, भिन्डी, तोरई, ककडी, खरवूजा, कदू आदिके बीजोंको दही छाछ आदि के साथ सेवन नहीं कर पावेंगे। जब यह बात होगई तब दहीवडे रायता आदिका सेवन करनातो बंद ही होगया फिर कैसे काम चलेगा।

भव्य प्राणियों ! धर्मात्मा लोगोंको चाहिये कि इंद्रिय विषयोंके इतने अधिक वशीभूत न होवें ! इंद्रिय विषय भोगोंके पीछे अन्धे हो अपने आपको पाप पंकमें नहीं फंसाना चाहिए, उन्हें तो वास्तविक निराबाध अतिन्द्रिय आत्मीक सुखके लिये सतत प्रयत्न शील बने रहना चाहिये । और आप लोगोंमेंसे किन्हीं सज्जनको रायता आदिके सेवनके विषयमें आपत्ति हो तो यह ध्यान रहे कि द्विदल सेवनका दोष, तुरैया कदू आदिके बीजोंको गोरसमें मिलाने पर होता है । बीजोंके निकाल देनेपर नहिं बीज रहित तोरई भिंडी आदिको गोरसके साथ सेवन करनेमें द्विदल सेवनका दोष नहीं ।

इसी प्रकार दहीबडे तथा पितोड बताये गये हैं अर्थात यह भी द्विदल दो फाड वाले अन्नादिकों को गोरसमें डालनेसे और उसका भक्षण करनेसे द्विदलका दोष लगता है किन्तु खटाईतो इमली-नीबू केथ आंवला, कोकम, काचरी कमरख आदि कई प्रकारकी होती है, अर्थात् इन चीजोंकी खटाईमें बडे, पितोड दो दालकी चीजें बनाकर खानेसे व्दिदलका दोष नहीं होता । यहांपर दूध दही छाछ के खानेको निषेध नहीं किया किन्तु उन्हें दो फाडवाली चीजोंमें मिलाकर नहीं खाना चाहिये क्योंकि ऐसा करनेसे व्दिदलका दोप होता है ।

इस प्रकार द्विदलके विषयमें जो शंका हो सकती थी उसका उल्लेख व समाधान कर द्विदल त्याग विषयक प्रेरणा थी। आगेके विवेचनमें इसी विषयके पोषण करने वाले आचार्य वाक्योंका उल्लेख कर विषयको और स्पष्ट करनेका प्रयास किया जा रहा है।

विद्वद्बोध रत्नमाला प्रदीपमें लिखा है कि—

गोरसे तक्रे द्विदलं सेवनीयं कदापि न।
शीतमुष्णं विवर्जेन दोषो द्विदल संभवः॥
द्विदलं नैव भोज्यं स्यात् मन्थदध्ना च गोरसैः।
रसनया तत् स्पर्शेन घोरदोषोभिजायते॥
गोरसे ननु शीतादौ संपृक्तं द्विदलं जिनैः।
प्रोक्तं मुद्गदादि काष्ठं वा द्विदलं भूरि दोषकृत्॥

भावार्थ— जिसके समान दो भाग होजाते हैं, ऐसे द्विदल अन्नको तथा काष्ठादि द्रव्यको शीतादि ठण्डे अथवा गर्म दूध, दही, छाछ आदिमें मिलाकर जीभसे नहीं छूना चाहिये, कारण कि ऐसा करनेसे महान् दोष होता है। व्दिदल में गोरस में मिले हुए मूंग आदि अन्न में जिस पशुका वह दूध, दही या छाछ होता है, उस जाति के कीटाणु जिव्हाके संपर्क होते ही पैदा हो जाते हैं। कुछ समय बाद वहीं नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार द्विदल सेवन से जहां त्रस हिंसा का पाप लगता है यही मांस भक्षणका

दूषण लगता है। अतः जिनेन्द्र देव ने कहा है कि व्दिदल का सेवन नहीं करना चाहिये।

पंडित स्यामराय कृत, जैनसार चिन्तामणिः-

गोरसभक्त संजुतं, घोर दोष हवदि य।
जीवं हवदि य रसणया सपरसेण ॥ १२१ ॥

अर्थ-गोरस कहिये दुग्ध, दही, छाछ (मट्ठा) इनमें भक्त कहिये दोफाड वाले अनाज जैसे चना, मटर, मसूर, उडद, मूंग मोठ, कुलथी आदि जिन पदार्थोंकी दो दाल हो जावे, ऐसे अनाजके साथ मिलाकर नहीं खाना, कारण इनके साथ मिलाकर खानेसे इन पदार्थोंका जिव्हाके साथ संबंध होते ही उसमें घोर दोष उत्पन्न हो जाता है।

प्रश्न—घोर दोष कैसा और घोर दोष किसे कहते हैं सो समझाईये ?

उत्तर—घोर दोष उसे कहते हैं कि जिस जानवरका वह दुग्ध है, दो दाल होनेवालें पदार्थोंको मिलाकर जिव्हा पर धरनेसे उस जिव्हाकी लारका संबंध होतेही वैसे कीटाणु तुर्त पैदाहो जावेगें और मर जावेंगे। इसी हीको घोर दोष कहते हैं, ऐसा जिनेन्द्र भगवानकी आज्ञा में चलनवाले संयमियोंने कहा है।

संयमसार प्रदीप के ५ वें अध्याय में लिखा है कि-

द्विदले भक्ते काष्ठे गोरसेऽशीत शीतलः ।
उष्णमुष्णं च वर्जित, दोषा व्दिदल जागरः ॥९३॥

विवरणाचार अध्याय ६ में—

गोरसे तक्रे पादाम्बौ, भक्ते काष्ठे समागमे ।
रसनया स्पर्शणाशु, दोषो द्विदलसर्जनः ॥२०३॥

अनुभव विलास पं. रेदुकृतं—

द्विदल भक्त काष्ठेषु, त्याज्यः शीतोष्ण गोरसः
रसनायाः स्पर्शेन स्यादाशु सम्मूर्छनोद्भवः ॥ २०७ ॥

भावार्थ—उपरि लिखित श्लोकोंके समान इनका भी यही अर्थ है, कि कच्चे अथवा पके हुए दूध, दही छांछ में जिसके दो फाड होजाते हैं, ऐसे अनाजोंको काष्ठादि किरानोंको मिलाकर खानेमें जीव हिंसाका दोष होता है। कारण कि ज्योंही उस मिश्र पदार्थका रसनासे स्पर्श होता है उसमें शीघ्र सम्मूर्छन त्रस जीवोंकी उत्पत्ति होजाती है। अतः वह त्याज्य

श्री दिलीपसेनकृत अनुभवसारमें भी इस विषय की ले निम्न लिखित कथन पाया जाता है।

(श्लोक)

आमेन पक्वेन च गोरसेन, मुद्गादि युक्तं द्विदलं सुकाष्ठं ।
जिन्हायुतं स्यात्त्रसजीवराशिः, सम्मूर्छिमा नश्यति संप्रयोतन

शीतादि गोरसे युक्त, मन्नं सार्द्धं द्विकं फलम् ।
द्विदलं रसना स्पृष्ट, जायन्ते त्रस राशयः ॥

अर्थ—इन श्लोकोंमें भी द्विदल का चाहे वह पक्के या कच्चे दूध, दही, या छाछमें मूंगादि अन्नादिके मिलानेसे बनाया गया हो, उपयोग नहीं करना चाहिये। इसी बातका समर्थन किया गया है।

श्री सोमसेन भट्टारकने भी त्यागने योग्य वस्तुओं को गिनाते हुए द्विदलका भी नामोल्लेख अपने प्रद्युमन्न चरित्र १२ वें अध्यायमें किया है। वें लिखते है कि:—

नवनीतं सदा त्याज्यं कंदमूलादिकं यथा ।
पुष्पितं द्विदलं चैव, धान्यम् नन्तकायिकम॥१४५॥

अर्थ—जैसे कंदमूल आदिक सेवन करने योग्य नहीं है उसी प्रकार अनन्त कायवाले नवनीत (नेनु मक्खन) द्विदल, जिसमें फूलन पढ गई हो ऐसे पदार्थ, तथा सडे हुए धान्य भी त्यागने योग्य है)

स्वर्गीय पं. पन्नालालजी गोधा अधिष्ठाता उदासीनाश्रम इन्दौरने भी स्वरचित मरकत विलासमें इसी विषयको ले संस्कृत क्रियाकोप के श्लोकोंका उल्लेख किया है ?

द्विदलै विदलानी यात्कथितं च जिनेश्वरः ।
तद्विधापि च ज्ञातव्यः त्यजन्सुश्रावको भवेत ॥
काष्टा काष्ठपो विंदले, त्यजनं क्रियते वुधैः ः

येन द्विधा त्यजितं, जिन वाक्यं तेन पालितम् ॥
द्विदलं दधि निष्ठीवं क्षीर तक्रं त्रियोऽपि च ।
एकत्री मिलिते यत्र, जीवा पंचेन्द्रियाः मताः ॥

अर्थ—दुग्धादि द्रव्यों में द्विदल पदार्थों के मिश्रणसे विदल बन जाता है " ऐसा श्री जिनेन्द्रभगवान ने कहा है । उसे दो प्रकारका (१) काष्ट वनस्पति बीज जन्य (२) अकाष्ठ द्विदलान्न जन्य समझना चाहिये । इन दोनों प्रकारके विदलोंको छोडनेपरही यह मानव, श्रावक बन सकता या कहला सकता है विद्वानोंके द्वारा काष्ठा काष्ठ जन्य विदलोंका त्याग किया जाता है । जिसने दोनों प्रकार के बिदलो का त्याग कर दिया, समझना चाहिये कि उसने सच्चे अथ मे जिन आदेशका पालन किया है बात यह है कि द्विदल दही लार द्विदल दूध व लार, द्विदल छाछ व लार इन तीनों प्रकार के पदार्थोंके मिलाने से उसमें पंचेन्द्रिय जीवोंकी उत्पत्ति हो जाता है । अतः ऐसे जीव घातक पदार्थ का सेवन नहीं करना चाहिये ।

अभीतक के विवेचन से आप लोगोंने यह जान लिया होगा कि आगम के कथनसे और आयुर्वेद की दृष्टिसे व डाक्टरों के अभिमत से भी द्विदल असेवनीय है अब यही संक्षेपमें, अन्य मतावलंबियों का क्या अभिमत है यह भी और बतला देना चाहता हूं ।

गोरसं मांस मध्येतु मुद्गादिषु तथैव च ।
भक्षमाणं कृतं नूनं, मांस तुल्यं युधिष्ठरः ॥
(प्रभाप पुराण)

मांस तथा मूंग आदि द्विदलान्नों के साथ दूग्ध गोरस का सेवन नहीं करना चाहिये । यदि इनके साथ भी गोरस का सेवन किया तो हे युधिष्ठर! समझना चाहिये कि मांस ही खाया है ।

श्रीमद् भागवत् महातमय अध्याय श्लोक नं. ४६
द्विदलं मधु तैलंच, गरिष्टान्नं तथैव च ।
भाव दुष्टं पर्युषितं, जह्यान्नित्यंतकथाव्रती ॥ ४६ ॥

व्रती को चाहिये कि वह द्विदल, मधु, तेल गरिष्ट अन्न तथा भाव इष्ट और वासी चीजको नहीं खावे ।

इतने विवेचन के हृदत हो जाने पर यह शंका होना स्वभाविक सी प्रतीत होती है कि जिनके सिद्धान्तों एवं आचार शास्त्रोंकी आधार भूमि जीवरक्षा (अहिंसा है) जो अपने आपको अहिन्सा सिद्धान्तके अनुयायी होनेका दावा करते हैं उनकी द्विदल त्यागके प्रति इतनी उपेक्षा क्यों?

इनके लिये, हमारी समझमें दोही कारण जंचते हैं । सर्व प्रथम तो वर्तमान कालानमानवोंमें भौतिकता खासकर इन्द्रिय लंपंटताके प्रति ज्यादा आकर्षण पाया जाता है । वे आतमा परमात्मा आदिकी वातों पर ध्यान देना समयका

अपव्यय समझते हैं। पुण्य और पापका ख्याल करना पागलों की दुनियांमें विचरना समझते हैं, गरज यह कि वे इन्द्रिय विषय भोगों को जुटाना और उनपर सेवन करना मात्र ही अपना जीवनका ध्येय बनाये हुये है। ऐसी अवस्थामें जिव्हेइन्द्रियके विषय सेवनके लोभमें पड़ यदि उच्छखल प्रवृत्तिका प्रसार होने लगे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

दूसरे जो अपने आपको शिक्षित समझते हैं, वे हठवाद की गहरी दलदलमें फंसकर अथवा कुछ श्लोकोंमें उल्लिखित अभिमतको अपना आदर्श व श्रद्धेय मन्तव्य बतलाते हुये उसकी ओर अपनी जिव्हेन्दिय सम्बन्धी लोलुपताकी पूर्ति करते हैं, ओर उसका पोषण करते हुये दूसरी अबोध जनता को द्विदल सेवनके लिये प्रेरित करते हैं, या उकसाते हैं अथवा यों कहिये कि उसके लिये प्रोत्साहन देते हैं। लेकिन भव्य, मुमुक्षु, पापभीरू विचार शील जनताको चाहिये कि वह अपने हिताहितका ख्याल करके तथ्यातथ्यका निर्णय कर और उनके अनुसार अपनी प्रवृत्ति कर जिससे कि आत्महितके साथ ही साथ जीव रक्षा भी हो सके।

कुछ तर्कशील व्यक्ति यह भी तर्कणा कर सकते हैं, कि "गोरस" एक सामान्य शब्द है फिर उसका मात्र दूध, दही व छाछ ही अर्थ क्यों किया जाता है। और उनके

साथ ही काष्ठा काष्ठान्न सेवनमें दोष क्यों बताया गया है? घी, जोकि गोरससे ही तैयार होता है, उसके साथ द्विदलान्न व काष्ठ पदार्थोंके सेवनमें दोष क्यों नहीं कहा गया?

इसके उत्तर स्वरूप तो हमारा यही कहना है कि लौकिक एवं अलोकिक दृष्टिसे, आगम कोष, व्याकरणादि (शब्द शास्त्रोंके) लिहाजसे गोरस शब्दके द्वारा दूध दही व छाछका ही ग्रहण होता है। चुंकि अब शब्द विपयिक चर्चा चल पडी है, अतः शब्दके विषयमें कुछ कह देना अप्रासांगिक नहीं होगा।

निम्न लिखित वृत्ति के द्वारा शब्द शास्त्रके प्रणेता आचार्योंने शब्दके चार भेद बतलाये हैं।

शक्तंपदं तच्चतुर्विधं, कचिद्यौगिकं, कचिदूढं क्वाचि-द्योगिरूढं क्वचिदयौगिकरूढम्।

तथाहि—यत्रावयवार्थ एव बुद्धतेतद् यौगिकम्। यथा पाचकादि पदं। यत्रावयवशक्ति नैरपेक्ष्येण, समुदाय शक्ति मात्रेण बुध्यते तदरूढं। यथा गोमण्डलादिपदं। यत्रतु अव यव शक्ति विपये समुदाय शक्ति रप्यस्ति, तद्योगरूढम् यथा पंकजादिपदं। तथादि पंकजपदंमवयवशक्त्यां पंकजनिकर्तृत्व रूपमर्थ बोधयति, समुदाय शक्त्या च पद्मत्वेन रूपेण पदं

बोधयति, न च केवलयावयव शक्त्या कुमुदे प्रयोग, स्यादिति वाच्यं रूढि ज्ञानस्य केवल यौगिकार्थ ज्ञाने, प्रतिबंधकत्वादिति प्राञ्चः

यत्रावयवार्थ रूढ्यर्थयोः स्वातंत्र्येण वोधः

तद्योग रूढं यथोद्भिदादि पदम्। तत्रहि उद्भेद कर्तातरु गुल्मादि रपि वुध्यते याग विशेषोऽपीति।

सिद्धान्त मुक्तावली के शब्द खण्ड से।

अर्थ—जिसमें व्याकरण, कोष, आगम और लौकिक व्यवहार द्वारा शक्ति ग्रह होता है उसे पद कहते हैं प चार भेद हैं।

(१) यौगिक पद
(२) रूढपद
(३) यागरूढ
(४) अयौगिक रूढ

जिसका व्याकरण की, धातु, प्रकृति प्रत्ययादि द्वारा अर्थ निश्चित हो उसे यौगिकपद कहते हैं, यह ध्यान रखना चाहिये कि इन पदोंमें रूढीकी कोई अपेक्षा नहीं रहती।

जहां व्याकरण की अपेक्षा न की जाय तथा जो लोक में या शास्त्रोंमें किसी अर्थ विशेषमें रूढ होकर उस अर्थको द्योतन करे, ऐसे शब्दोंका योगरूढि कहते हैं, जैसे गोमण्ड-

लादिपद । यह शब्द गायोंके समूह "अर्थ के द्योतनमें रूढ है" गच्छतीतिगौ" इस रुप जो व्याकरणसे अर्थ निकलता है उसको लक्ष्यमें न रखते हुए मात्र गायोंके समूह" रूप लोग प्रसिद्ध अर्थको ही द्योतन करता है ।

जिनका प्राकरर्णिक अर्थ व्याकरण द्वारा कुछ दूसरा निकलता हो तथा जो कोप आगमादिमें किसी दूसरे अर्थमें रूढ हो ऐसे शब्दोंको योगिक रूढ कहते हैं, जैसे पंकजपद। यह व्याकरण शास्त्रके अनुसार "पंकाज्जायते इतिपंकजम" एसी व्युत्पत्तिको वतलाते हुये जहां कमल रूप अर्थको द्योतन करता है वहीं कीचडमें पैदा होनेवाले घास काई आदि भी पंकज शब्दके द्वारा ग्रहीत होते हैं। किन्तु कोप व आगमके अनुसार पंकज कमलरूप अर्थको ही द्योतन करनेमें रूढ है ।

जिन शब्दोंका अर्थ व्याकरण व रूढि इन दोनोंके द्वारा निश्चित किया जाता है । उन शब्दोंको अयौगिरूढ कहते हैं जैसे उद्भिदपद । भूमिंउद्भिनतीतिउद्भिद।" अर्थात् जो भूमिको मेदें उन्हें उद्भिद कहते हैं, जैसे वृक्ष लता आदि ।

इस प्रकार शाब्दिक भेदोंके स्वरूपके विवेचनसे यह मालूम होगया होगा कि गौरस शब्द योगरूढ है । "गवां-रसः गोरसः इस प्रकारकी व्युत्पत्तिके अनुसार गोरस पदका अर्थ केवल दूध ही निकता है । किन्तु यह अर्थ आगमके अनुसारं पूर्ण रूपेण संगत नहीं वैठता । अतः "गोरस"

शब्द लोक, कोष, व आगमके अनुसार दूध, दही, छाछ, अर्थमें रूढ है,। अतः व्याकरण शास्त्रके अनुसार यह शब्द योगरूढ है, और इसके द्वारा "घी" रूप अर्थका ग्रहण नहीं होता हुआ मात्र दूध, दही, व छाछका ही ग्रहण होता है।

अमरकोषके अध्याय ९ वैश्यवर्गमें श्लोक नं. ५३ में लिखा है कि:—

दण्डाहतं कालेशयमरिष्टमपि गोरसः।
तक्रं ह्युदश्विन्मथितं पादाम्ब्वर्धाम्बु निर्जलम्॥

इस गोरस शब्दमें "घी" का ग्रहण न करते हुए वह दूध, दही, छाछमें ही रूढ है।

सागारधर्मामृतकी टीकामें भी गोरस शब्दकी टीका करते हुए लिखा है कि:—

गोरसेन क्षीरेण दध्ना तक्रेण च।

इस प्रकार गोरस पद, दूध दही, छाँछको ही द्योतन करने में निबद्ध है। घी रूप अर्थ नहीं निकलता है। गोरसके द्वारा दूध, दही, व छाछको ही ग्रहण किया है, इस बातको सैद्धांतिक दृष्टांतोंद्वारा आचार्योंने दिखलाया है।

"आत्मनो"! शुभाशुभशुद्धभाववत् एवं बहिरात्मान्तरात्मपरमात्मवच्चेति, दुग्ध, दधि तक्रात्मके गोरसे ज्ञेयम्।

भावार्थ– जिस प्रकार आत्माके तीन भाव होते हैं शुभभाव अशुभभाव, शुद्धभाव इन तीनों भावोंमें से दो यानि शुभ अशुभ भाव तो संसारके कारण हैं और, शुद्धभाव (वीतराग भाव मोक्षमार्गका कारण है, अर्थात् कर्म नाश करनेवाला है।

इसी प्रकार दूध दही व छाछ रूप दो गोरस विकारों में द्विदलान्न या काष्ठपदार्थोंका मिश्रणकर भक्षण करनेसे द्विदलका दोष लगता है। तथा जिस प्रकार शुद्धभाव संसारके कारण नहीं होते, उसी प्रकार घीमें द्विदल अन्नादिका मिश्रण करनेसे द्विदलका दोष नहीं लगता।

(दूसरा दृष्टांत)

जीवके वहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा, इस प्रकार तीन भेद कहे गये हैं। इनमेंसे वहिरात्मा और अंतरात्मा जैसे संसारवर्ती हैं, वैसे परमात्मा मोक्ष-मार्गी है।

उसी प्रकार दूध, दही, रूप गोरस विकारोंमें द्विदलान्नादि पदार्थोंको मिश्रणकर सेवन करनेसे दोष उत्पन्न होता है, तथा परमात्माके समान घी रूप पदार्थमें द्विदलान्नादि पदार्थोंको मिलाकर सेवन करनेमें कोई दोष उत्पन्न नहीं होता।

हे आत्मसुधार प्रेमी सज्जनो ! इस प्रकार धर्मोपदेश-का श्रवणकर उसका मंनन करके जरा शांत चित्त होकर यह तो सोचनेका प्रयत्न करो, कि इस अनंत संसारमें, इन्द्रिय विषय रूपी भयानक भँवरोंमें फंसकर कितने वार गोते लगाये, अर्थात् जन्म मरणके दुःख उठाये और अभी भी विषय लोलुपताके चक्करमें अलक्ष्य स्थानसे कितने दूर हुए जा रहे हो। मजा व आनन्दकी मृतमरीचिकाके धोकेमें आ इन्द्रिय विषयोंमें ही शक्तिका अपव्यय क्यों कर रहे हो ? तुम सुखाभासको सुख समझ व्यर्थही त्रस जीवोंका आंख वंद कर घात करनेमें लगे रहकर जीवन को पानीकी तरह क्यों बरबाद कर रहे हो ?

जरा चेतो, होशमें आओ, अपने हितका ख्याल करो जिसमें हिंसा होती है, उसमें पापका वंध होता है, ऐसे द्विदल आदि पदार्थोंके सेवन करनेसे दूर रहो। उनका त्याग करदो और अपनी संयत वृत्ति रखते हुए सतत आत्मो-न्नति करनेमें सचेत बने रहो। इसीमें सच्चा हित व लाभ है।

यहांतक जो कथन किया उसका सारांश इस प्रकार यह निकला कि द्विदलको दूध दही व छाछके साथ अन्नादिक हो या काष्ठादिक हो नहीं खाना चाहिये। अलग २ व्यवहारमें आवे, सो भी इस प्रकार कि पहिले

दूध दही छांछका सेवन कर फिर कुल्ला कर द्विदलका मेल मिलावे। व्रती पुरुष पहिले दूध, दही छाछका सेवन कर फिर अच्छी तरहसे जल पीकर अपने मुंहको और हाथोंको छन्ना (गरना) से यथार्थ पोंछकर बादमें द्विदल पदार्थ अन्नादिक हो या काष्ठादिक हो उसका मेल मिलावें पहिले जो अन्नादिक या काष्ठादिक भोजनमें आगये हों तो पश्चात दूध, दही, छाछका सम्पर्क नहीं मिलावे, क्योंकि दो फाडवाले पदार्थोंका अंश दातोंमें रहही जाता है। इसलिये दूध दही छांछका पीछे संबंध मिलाकर खाया जायगा तो द्विदलका दोष आवेहीगा, इसलिये ख्याल रखकर प्रवृत्ति करना विद्वत्ताका और धर्म रक्षणका अंग है।

(३) निशि भोज ! बाईस अभक्षोंमें से एक है। जैसा कि शब्दसे ही ज्ञात होता है कि इसके सामान्य रूप से रात्रिमें भोजन करना रूप अर्थ निकलता है।

आचार्योंने जहां रात्रि भोजन (आहार करने) के त्यागकी प्रेरणा की है वहीं उन्होंने यह भी स्पष्ट रूपेण कह दिया है कि भव्य प्राणियो ! रात्रि भोजन त्यागसे रात्रिमें भोजन नहीं करना इतना मात्र अर्थ नहीं है, किन्तु इसमें लिखित दोनों प्रकारके भोज्य पदार्थोंका त्याग भी गर्भित है।

अर्थात् (१) रात्रिके समयमें तैयार किए हुए भोजनों को न खाना और (२) दिनमें तैयार किये हुये भोजनको रात्रिमें न खाना, इसका सुन आप लोगोंमें से वहुत साधारण जनोंके हृदयोंमें यह शंका पैदा हो सकती है, या यह कहा जा सकता है कि दिनमें सोधकर बनाये हुये भोजनको रात्रि में खानेसे क्या दोष है ? जो इनके त्यागके लिये प्रेरणाकी जाती है ?

किन्तु आप लोगोंका ऐसा तर्क करना युक्ति व सिद्धान्त सम्मत नहीं है। देखो ! रात्रिमें जिन पदार्थोंसे भोजन तैयार किया जाता है उनका किसीभी प्रकारसे सोधन या उनमें से सूक्ष्म जीव निवारण नहीं किया जा सकता है। सूर्यके प्रकाशके कारण पैदा न होने वाले अनन्ते सूक्ष्म त्रस जीव साहजिक रूपसे रात्रिमें पैदा हो जाते हैं, जिनका कि निवारण करना दुशक्य ही नहीं, अपितु असम्भव भी है। ऐसी हालतमें रात्रिमें भोजन करने वाले व्यक्ति चाहे वह भोजन दिनका ही बना हुआ क्यों न हो, जीवहिंसाके पाप से क्यों कर मुक्त (बच) हो सकते हैं। यही बात रात्रिके बने हुये भोजनको दिनमें खाने वालेके प्रति कही जा सकती है।

ऐसी दृष्टि हो जाने पर कोई व्यक्ति चाहे कि हम बाजारमें हलवाई आदिके यहांसे कोई चीज लेकर खा लेवें,

तो यह नहीं बन सकता, कारण कि इस प्रकारकी दृष्टि रखनेवाले शायद ही कोई हलवाई होते होंगे, उन्हें तो मात्र अपने पैसे सीधे करनेसें प्रयोजन रहता है। उनकी तरफसे धर्म और स्वास्थ्य चाहे बचे या डूबे उन्हें उससे कोईभी प्रयोजन नहीं रहता।

अतः जो पूर्णरूपेण अभक्ष्य पदार्थोंके त्यागी हैं, वे बाजारकी हलवाई आदिकी बनी हुई चीजोंका सेवन न करें। ऐसी परिस्थितिमें ही व्रतका सुचारू रूपसे परिपालन हो सकता है।

(४) बहुबीज—

ऐसे पदार्थ जिनमें बहुतसे बीजे पाये जाते हैं, ऐसे फल वगैरह अभक्ष्य कोटिमें गर्भित हैं, उनका सेवन नहीं करना चाहिये। पोश्ता (खशखश दाने) बीजे वाले केला आदि बहुबीजामें गर्भित हैं।

गुरुउपदेश श्रावकाचार व दिलाराम विलासमें भी ऐसा कथन पाया जाता है।

बहुबीजे फलोंकी पहिचानके विषयमें ऐसा उल्लेख पाया जाता है, कि जिन फलोंके बीजोंमें खडी धारी हो किन्तु आडी न हो वे फल बहुबीजोंमें कहे (माने) गये हैं। जैसे कि पोश्ता (खशखश दाने) अतः ऊपर लिखित विशेषता जिन २ फलोंके बीजोंमें पाई जाती हो, वे सब बहुबीजे फल

होते हैं इसलिये त्याज्य हैं। कोई अरण्ड ककडी (पपीता) को भी इसीमें गर्भित कहते हैं।

(५) बेंगन—

भटा, बटाटे बेंगन, प्रायः एकसे फल हैं, चूंकि इनमें चलते फिरते रेंगते हुए द्वीइन्द्रिय जीव जैसे लटादिदे खने में आते हैं अतः ये सेवनीय नहीं है इनको छोडना चाहिये यद्यपि किन्हींका ऐसा मत है– जैसे कि [पं. आशाधरजी ने सागारधर्मामृत अध्याय ३ में श्लोक नं० ४) में ऐसा अभिमत प्रकट किया है इन्हे देख शोधकर खाया जा सकता है, किन्तु हमारी समझसे जबकि स्पष्ट रूपसे उसमें चलती फिरती हुई सफेद २ लटें पाई जाती हैं तब तो वे असेवनीय ही है।

कुलीन घरानोंमे इनका सेवन पूर्व परम्परासे निपिद्धही हैं। ऐसाही कथन इतर धर्मावलम्बियोंके यहां भी ये चीजें निषिद्ध एवं असेवनीय माने गये हैं। अतः शिथिलाचारका पोपक यह श्लोक पं. आशाधरजीने किस दृष्टिको लेकर कहा है, कुछ समझमें नहीं आता।

(६) संधान—

अचार अथवा मुरब्बा आदि करीव २ मिलते जुलते शब्द हैं। ये निम्बू, मिर्च, आंवला, आम, करोंदा, कमरख आदि पदार्थोंसे तैयार किये जाते हैं।

इनमेंसे किन्हींकी मर्यादा चार पहरकी और किन्हींकी आठ पहरकी हुआ करती है। इस मर्यादाके बाद उनमें सूक्ष्म असंख्याते जीव पैदा हो जाते हैं।

अतः जो प्राणी इनका सेवन करते हैं उनका दूहरा नुकसान हुआ करता है, प्रथम तो कीटाणुवाले पदार्थोंका सेवन किया जाता है, अतः वह स्वास्थ्यके लिये हानि कारक होता है।

दूसरे उनके सेवनसे असंख्य सूक्ष्म जीवोंका बध होता है, मांस भक्षणके दूषणकी भी संभावना है, अतः मुमुक्षुओं को चाहिये कि वे ऐसे अमर्यादित पदार्थोंका सेवन नहीं करें।

(७–८–९–१०–११) मे पंचउदम्बर फल— १ वड, २ पीपल, ३ ऊंमर, ४ कठूमर, ५ पाकर, इन पांचों फलोंको जैनधर्ममें सर्वथा इनको असेवनीय कहा गया है। ठीक ही है कि जिस धर्मकी आधार शिक्षा अहिंसा है, वह क्यों-कर त्रस जीवोंसे युक्त उपरि लिखित फलोंके सेवनके लिये अनुमति दे सकता है।

यदि इन्हें सूखे कच्चे या पके खाओ तो सूक्ष्म व स्थूल त्रस जीवों के घातका पाप लगता है, यदि पडे हुए सूखे खायें जाय तो भी खानेसे राग युक्त परिणामवाला जीव हिंसाका भागी हैं। अतः प्राणियों को चाहिये कि वे उपरि निर्दिष्ट पंच फलों का सेवन न करें,

जिससे कि दोनों प्रकारकी द्रव्य हिंसासे बच जावे। पंच उदम्बर फलोंमें त्रस जीव राशि पाई जाती है, इस बातकी पुष्टि निम्न लिखित आगमवाक्यसे भी होती है।

स्थूलाः सूक्ष्मास्तथा जीवाः सन्त्युदम्बरमध्यगाः।
तन्निमित्तं जिनोद्दिष्टं पंचोदम्बरवर्जनम्॥

क्योंकि ऊंमर कठूमर आदि पंच फलोंके मध्यमें बहुत से स्थूल जीव व सूक्ष्म जीव पाये जाते हैं, इस कारणसे जिनेन्द्र भगवानने पांच उदम्बर फलोंका सेवन करना मना किया है। जिनेन्द्र भगवानकी आज्ञा भी सेवनके लिये अनुमति नहीं देती फिर उनका कैसे सेवन किया जा सकता है?

(१२) अनजान फल—

जो पदार्थ या फल ज्ञात नहीं है उसको एकदम विना जाने ही सेवन नहीं करना चाहिये, संभव है कि उसका सेवन स्वास्थ्यके प्रतिकूल हो, अतः चाहे वह दूसरेको ज्ञात क्यों न हो, फिर भी उसका स्वरूप स्वयं समझकर भी हानि लाभ सोचकरही उसका सेवन करना चाहिये।

[१३] कंदमूल—

जो पदार्थ जमीनके भीतरही भीतर अपने अवयवोंकी

अवस्थाको पूर्ण करे उन्हें कंदमूल कहते हैं। जैसे आलू, घुईयां, अरबी, सक्करकन्द, [सकला] रताल्र, मूली, गाजर लहसुन, प्याज, [कांदा] अदरख आदि। चूंकि ये पदार्थ अनंत कायिक हैं, अतः भक्षणीय नहीं हैं।

शरीर व आत्मपरिणामोंको लक्ष्यमें रखकर इन पदार्थोंके सेवन करनेके विषयमें सोचा जाय तो भी इनको उपयोगमें लाना अनुचित है। चूंकि ये पदार्थ, पृथ्वीके नीचेही नीचे, तयमें अंधेरेमें जहां कि सूर्यका प्रकाश नहीं पहुंच पाता, अपने अवयवोंकी वृद्धि व पूर्णता संपादित करते रहते है, ऐसा होनेसे ये पदार्थ जब सेवन किये जाते हैं तब स्वयं तामसीवृतिके कारण, सेवन करनेवालेको तामसीवृति वाला बना देते हैं। परिणाम स्वरूप आत्मीक विवेक परिणतिमें बाधा पहुंचती है, प्राणी अपनी परिणातिको दूसरे पर पदार्थोंकी ओर लगा देता है, जिससे कि उसे अशुभ कर्मोंका बंध होने लगता है।

अशुभ कर्मोंसे क्या होता है? यह बात सूर्य प्रकाशवत् स्पष्टही है। यह जीव विचारा! जन्म मरण रूप संसारमें गोते लगाता फिरता है। अतः अच्छा तो यही है कि इस प्रकार आत्माके अहित करनेवाले पदार्थोंका सेवनही नहीं किया जाय।

मूलाचारमें मुनियोंके आहार सम्बन्धी चौदह मल दोषोंका वर्णन करते हुये तो यहां तक लिखा है कि "मुनि भोजनमें या भोजनके साथ यदि कंदमूलको देखे तो आहार छोडकरके चला जावे।" इन सबका यही मतलब है कि कन्दमूल छोडना श्रेयस्कर है।

(१४) माटी (मिट्टी)—

बहुतसे प्राणी मिट्टी खाते हैं। बहुतसे उसके द्वारा दातोन आदि करते हैं। लेकिन उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिये, कारण कि मिट्टी जबतक जमीनसे मिली रहती है तबतक वह अनन्तकायिक हुआ करती है। ज्यादा क्या कहें, मिट्टीका एक कणिका भी अनन्त कायिक है, तत् सम्बन्धी जीव वधका दूषण लगता है। मिट्टी खानेसे पेटमें कीडे पैदा हो जाते हैं, जिससे बडे २ रोगोंकी उत्पत्ति हो सकती है इसलिये मिट्टी नहीं खाना चाहिये।

(१५) विष—

इस शब्दके द्वारा जो भी पदार्थ आत्माकी परणतिको या उसकी बुद्धिको विकारी बना देता है, जैसे जहर (पॉयझन) गांजा, चरस, तमाखू आदि। विष शब्दसे यहां विशेष रूपसे उन पदार्थोंको लिया गया है जो जीव घातमें सहायक या निमित्त होते हैं। संखिया,

अफीम, तेजाब, एसिड आदि पदार्थ विष शब्दमें ही अन्तर्निहित है।

ऊपर लिखित पदार्थ शुद्ध करके वैद्यों द्वारा रोगादिकको दूर करनेके लिये उपयोगमें लाये जाते हैं तो अभक्ष्य नहीं है। उदाहरणके लिये संखिया जोकि जहर है, ले लीजिये। यदि यह चीज वैद्यों द्वारा रोगको दूर करने केलिये शुद्ध करके उपयोगमें लाई जावे तो ऐसी दशामें अभक्ष्य नहीं है।

किन्तु यही चीज कषायवश आत्म वधके विचार से खा जावेतो अभक्ष्य है। कारण स्पष्टही है। इसके सेवनसे जीव (प्राण) घात होता है किन्तु शरीर छूटनेके पहिले इतने आर्त एवं वेदनायुक्त परिणाम होते हैं जिनसे कि आत्मिक शांति एकदम भाग जाती है, आत्म परिणाम मलीन हो जाते हैं और इस जीवके अशुभ कर्मोंका आश्रव होने लग जाता है जिससे कि नर्क तिर्यंच जैसी गतिमें जन्म-मरणके दुःखोंको भोगता फिरता है।

अतः आत्म हितेच्छु प्राणीको चाहिये कि वह कभी भी आत्मवधको लक्ष्यमें रख विषका सेवन नहीं करें।

(१६) आमिष—मांस

द्वीन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय तकके जीव जंगम कहलाते हैं, उनके नाश होने पर या उनका प्राणापहरण होने पर

मांस बनता हैं, अतः उसके सेवन करने वाले व्यक्ति हिंसाके पात्र होते हैं। यहां यह कहा जा सकता है कि-वह मांस जिसमें जीव वध न हो ऐसे अपने आप मरे हुये गाय, भैंस, बकरी, हिरण, मुर्गा, खरगोस आदिके मांस सेवन में तो कोई दूषण नहीं है, कारण कि इसमें हिंसा नहीं की गई है, सो ऐसी तर्कणा, मात्र जिन्हा लोलुपताको ही सिद्ध करती है। दृष्टिमें न आनेवाले अनेकोंही सूक्ष्म जीव उस मांसपिंडमें बिल-बिलाते रहते हैं, अत उस मांसपिंडकेभी सेवन करनेसे हिंसाका दूपण, जिससे कि नीच गतियोंमे रुलना पडता है, लगता है मांस भक्षणकेलिये जिनकी जीभ लप-लपा रही है, वे कह सकते हैं कि उस कच्चे मांसपिंडके खानेमें दूषण है, अगर उसे पका लिया जाय तो उसमें जीव नहीं रहेंगे, फिर यदि उसका सेवन किया जाय तो क्या आपत्ति है?

विषय लोलुपताके वशमें डूबे हुये बन्धुओ! पकाने पर मांसपिंडमें जीव नहीं रहते यह मात्र मनोकल्पना है, अरे! उसमें उसी तरहके अनन्तेही सूक्ष्म जीव पैदा होते रहते हैं, और मरते रहते हैं। यहां तक कि जिस प्राणीका वह मांस रहता है उस जातिके लब्ध्यपर्याप्तक पंचेन्द्रिय जीवभी उसमें पैदा होते रहते हैं। अतः पाप भीरु आत्माओ! विषयासक्तिको तिलांजलि दो, इस प्रकारके अहित कारक

अफीम, तेजाब, एसिड आदि पदार्थ विष शब्दमें ही अन्तर्निहित है।

ऊपर लिखित पदार्थ शुद्ध करके वैद्यों द्वारा रोगादिकको दूर करनेके लिये उपयोगमें लाये जाते हैं तो अभक्ष्य नहीं है। उदाहरणके लिये संखिया जोकि जहर है, ले लीजिये। यदि यह चीज वैद्यों द्वारा रोगको दूर करनेकेलिये शुद्ध करके उपयोगमें लाई जावे तो ऐसी दशामें अभक्ष्य नहीं है।

किन्तु यही चीज कषायवश आत्म वधके विचार से खा जावेतो अभक्ष्य है। कारण स्पष्टही है। इसके सेवनसे जीव (प्राण) घात होता है किन्तु शरीर छूटनेके पहिले इतने आर्त एवं वेदनायुक्त परिणाम होते हैं जिनसे कि आत्मिक शांति एकदम भाग जाती है, आत्म परिणाम मलीन हो जाते हैं और इस जीवके अशुभ कर्मोंका आश्रव होने लग जाता है जिससे कि नर्क तिर्यंच जैसी गतिमें जन्म-मरणके दुःखोंको भोगता फिरता है।

अतः आत्म हितेच्छु प्राणीको चाहिये कि वह कभी भी आत्मवधको लक्ष्यमें रख विषका सेवन नहीं करें।

(१६) आमिष—मांस

द्वीन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय तकके जीव जंगम कहलाते हैं, उनके नाश होने पर या उनका प्राणापहरण होने पर

मांस बनता है, अतः उसके सेवन करने वाले व्यक्ति हिंसाके पात्र होते हैं। यहां यह कहा जा सकता है कि–वह मांस जिसमें जीव वध न हो ऐसे अपने आप मरे हुये गाय, भैंस, बकरी, हिरण, मुर्गा, खरगोस आदिके मांस सेवन में तो कोई दूषण नहीं है, कारण कि इसमें हिंसा नहीं की गई है, सो ऐसी तर्कणा, मात्र जिन्हा लोलुपताको ही सिद्ध करती है। दृष्टिमें न आनेवाले अनेकोंही सूक्ष्म जीव उस मांसपिंडमें बिल-बिलाते रहते हैं, अतः उस मांसपिंडकेभी सेवन करनेसे हिंसाका दूषण, जिससे कि नीचि गतियोंमें रुलना पडता है, लगता है मांस भक्षणकेलिये जिनकी जीभ लप-लपा रही है, वे कह सकते हैं कि उस कच्चे मांसपिंडके खानेमें दूषण है, अगर उसे पका लिया जाय तो उसमें जीव नहीं रहेंगे, फिर यदि उसका सेवन किया जाय तो क्या आपत्ति है ?

विषय लोलुपताके वसमें डूबे हुये बन्धुओ! पकाने पर मांसपिंडमें जीव नहीं रहते यह मात्र मनोकल्पना है, अरे! उसमें उसी तरहके अनन्तेही सूक्ष्म जीव पैदा होते रहते हैं, और मरते रहते हैं। यहां तक कि जिस प्राणीका वह मांस रहता है उस जातिके लब्ध्यपर्य्याप्तक पंचेन्द्रिय जीवभी उसमें पैदा होते रहते हैं। अतः पाप भीरु आत्माओ! विषयासक्तिको तिलांजलि दो, इस प्रकारके अहित कारक

पदार्थोंका सेवन मत करो।

शारीरिक हितकी दृष्टिसेभी विचार किया जावे तो मांस सेवन अति हानिकारक है। यदि विकृत मांसका सेवन हो जाये तो यह शरीर अनेक रोगोंका घर बन जाये। इतनाही क्यों, कभी २ तो जीवनके लाले भी पड जाते हैं। जो व्यक्ति इस दृष्टिकोणको ले कि मांस सेवनसे शक्ति वा रक्तकी वृद्धि होगी सो यह भी मात्र भ्रम है। मांसकी अपेक्षा तो, फल, फूल, दूध, घी आदिके सेवन करनेसे अधिक शक्ति संचित होती है, इस लिहाजसे भी मांस सेवन अनुपकारी है।

आगमकी दृष्टिसे विचार करें तो भी मांस सेवन उचित नहीं ठहरेगा, एक इंच लम्बी मांसकी डलीमें जहां बहुतसे सूक्ष्म निगोदिया जीव पाये जाते हैं, वही उसमें निम्न लिखित जीव पाये जाते हैं, वही उसमें निम्न लिखित नौ प्रकारके ३१५०० जीव पाये जाते हैं

३५०० विध्याणु	३५०० पुद्गलाणु
३५०० गच्छाणु	३५०० रोगाणु
३५०० चन्द्राणु	३५०० चित्राणु
३५०० मालाणु	३५०० शलाकाणु
३५००	३१५०० कुलयोग

इस प्रकार मांस चाहे जिस हालतमें हो, उसमें उस

तरहके अनेकों जीव पाये जाते हैं।

इतर संप्रदायोंमें भी मांस भक्षण बुरा बताया गया है। वैष्णव धर्म ग्रन्थोंमें तिल या सरसों बराबर भी मांस सेवन करना घोर नर्ककी यातनाओंको देनेवाला बतलाया गया है।

इस्लाम धर्ममें भी मांस खाना निषिद्ध है किन्तु किया क्या जाय ? जिन्हालोलुपियों द्वारा सब धर्म ग्रन्थ ताकमें रख दिये गये हैं।

जो मांस सेवनका पूर्ण त्यागी होना चाहता है उसे चाहिये जिन भोज्य पदार्थोंमें चमडेका संसर्ग पाया जाता है उन्हें सेवन न करें, जैसे चमडेकी मसकका पानी चमडेके पात्रमें रखा घी तैल हींग आदि पदार्थ।

(१७) मधु

आजकलकी भाषामें इसे शहदके नामसे पुकारा जाता है। इसको बहुतसे जन उपयोगमें लाते हैं किन्तु उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिये, कारण कि एक तो उसकी उत्पत्ति ही बडी घिना पैदा करनेवाली है। दूसरे उसमें बहुतसे सूक्ष्म जीव पाये जाते हैं। जिनका यदि शहद सेवन किया जावे तो घात हो जाता है।

यह सुन आप लोग शहदकी उत्पति कैसे होती है अवश्य जानना चाहते होंगे। आगेके विवेचनमें उसी

पर प्रकाश डाला जा रहा है।

बंधुओ! यह शहद मधु मक्खियोंके छत्तेमेंसे निकलता है मधु मक्खियां दिनभर उपवनों या जंगलोंमें घूम २ कर अपने मुखमें रस संचय करती रहती है। उस संचित रसको जहां उनका छत्ता रहता है, जाकर उगलती है। बस वही मधु कहालाता है इस प्रकार मधुमें जो कि मक्खियोंका वमन मात्र होता है। झूटन नामका दोष आजाता है।

जब यह मक्खियां अंड रखती हैं तो उसी छतें में जहांपर मक्खियां रस उगलती हैं, टट्टी पेशाब आदि करती हैं। मलमूत्र कितने घिनावने पदार्थ होते है यह सबको विदितही है।

इस प्रकार अशुद्धतासे परिपूर्ण उस छत्तेको तोडकर नीच लोग शहद निकाला करते हैं। इतना ही नहीं उस छत्तेको दबाकर निचोडते हैं। जिससे कि उसमें रहनेवाली बहुतसी मक्खियां अकालमें ही मृत्युका ग्रास बन जाती हैं।

वर्तमानमें यद्यपि छेद करके शहद निकालनेकी एक और पद्धत्ति चल पडी है, जिससे कि शहदके छत्तेको निचोडना नहीं पडता है फिर भी यह समझ रक्खो कि उस पदार्थमें हमेंशा ही बहुतसे सूक्ष्म सम्मूर्च्छन जीव पैदा होते रतहे हैं, व मरते हैं। अतः मृतक जीवोंके कलेवर

से परिपूर्ण अशुचि विनावना जो पाप रूप पदार्थ (मधु) है उसे पाप भीरुओंको कभी भी सेवनमें नहीं लाना चाहिये।

[१८] मक्खन—

यह पदार्थ भी मांस, मधुके समान अभक्ष्य है। यहांपर घी नामक पदार्थ पूर्व अवस्था है व छाछके विलौने पर तैयार होता है। यहां इस प्रश्नका उठना स्वभाविकही है, कि जब घी भक्ष्य है तब मक्खन जो कि उसकी पहली अवस्था है, वह अभक्ष्य क्यों है? और यदि मक्खन अभक्ष्य है तो घी जो कि उससे तैयार होता है, वह भक्ष्य– खाने योग्य क्यों माना गया?

इसके लिये विशेष कुछ न कहते हुए, मात्र इतना कहना है कि वह घी, जोकि छाछसे निकले हुए मक्खनको अवधिके अन्दर [जिस समय निकला उस समयसे ४८ मिनट तकके अन्दरही] तपाकर निकाला गया हो वही वस्तुतः खानेके योग्य है। निकालनेके समयसे लेकर ४८ मिनट तक मक्खनमें कोई खराबी नहीं होती, अवधिके बाद उसमें कीडे पैदा होने लग जाते हैं, उस हालतमें दवाई आदिके लिये उसका सेवन किया जा सकता है।

कोई यह कहे कि हम प्रतिदिन मर्यादाके भीतर ही मक्खन तैय्यार कर खावेंगे तो ऐसा करना संयम व

आत्महितके लिहाजसे उचित नहीं, नवनीत अर्थात् लोनी न केवल जीव हिंसा कारक है प्रत्युत यह विशेष कर काम वासना पैदा करनेवाली और विकृति कारक है इसलिये सेवन करनेके अयोग्य है, अतः आत्माका अहित न हो जाय, वह अपने सन्मार्ग पर ही लगा रहे, ऐसे विचारवाले पुरुषोंको चाहिये वह मक्खनका सेवन न करें।

(१९) मदिरापान—

जिसे संस्कृतमें मद्य, उर्दूमें शराब, इंगलिश में वाइन (Wine) व साधारण भाषामें इसे शराब पीना कहते हैं यह एक नशीली चीज है। इसे नशीली बनानेके लिये जिससे यह बनती है उन पदार्थोंको (महुआ गुड आदिको) सडाया जाता है, जब उनमें कीडे बिलबिलाने लगते हैं, तब उनका अर्क निकाला जाता है और उसको ही शराब कहते हैं। आप लोग सोच सकते हैं कि उस अर्कको निकालते समय उन जीवोंकी क्या दशा होती होगी, जो उसमें बिलबिलाते रहते हैं, बिचारे उन प्राणियोंके जीवन के साथ होली खेली जाती है और असमयमें ही बिचारे अपने जीवनसे हाथ धो बैठते हैं। इस प्रकार मदिरा सेवन करनेवालोंको सोचना चाहिये कि वे मदिरा नहिं अपि तु असंख्य जीवोंका जीवन तत्वही हरण करते रहते हैं।

मदिरा जहां शारीरिक हानि पहुंचाती है वहीं यह मानव बुद्धिमें महान विकारोंको पैदा कर देती है। मानव मदिराके वस हो अपनी शुध बुधको खोकर गलियों २ में दर२ की ठोकरें खाता फिरता है। क्रोध, मान, माया, लोभ, आदिके परिणाम बुद्धिको प्राप्ति होते हुए इस जीवको कहींका न रखते हुए गहन संसार सागरमें डुबो देते हैं। मदिरापायीको कुछ भी विवेक नहीं रहता है वह मांको स्त्री और स्त्रीको मां आदि बकने व समझने लगता है। इतना वे सुध व असमर्थ हो जाता है नालियों तकमें पडा रहता है, कुत्ते पेशाब करते हुए चले जाते हैं। मद्यपायी पुरुषको इसी तरहकी और भी अनेक विपत्तियोंका सामना करना पडता है। अतः जिससे तन बुद्धि धनका नुक्सान न हो बुद्धि व शरीर ठिकानेसिर रहकर अपना काम करते रहें ऐसे मद्यपानके असेवनको कर अपने आत्महित करनेमें सदा तत्पर बने रहो।

इस विषयमें ज्यादा कुछ न कह जो एक मद्य बिन्दु के विषयमें कथन पाया जाता है, उसे और बतलाये देता हूं इस मद्यकी एक बिन्दुमें भी इतने जीवोंके कलेवर का तत्व रहता है कि यदि वे जीव शरीर धारणकर भ्रमण करें तो वे सबके सब इस जंबूद्वीपम नहिं बन सकते हैं। इस प्रकार पापकी खान, बहु जीव विघातमी मदिरा द्रव्य

को भव्य जीवोंको कभी भी सेवन नहीं करना चाहिये। इसके कारण जहां इस लोकमें अनेक विपदाओंका सामना करना पडता है वहीं परलोकमें जाकर नरकादि स्थानों में अनेक दुखोंको भोगना पडता है, अतः इसका सेवन करना छोडो।

[२०] तुच्छफल–

जो फल पूर्ण रूपसे विकाश नहीं कर पाते हैं ऐसी छोटी अवस्थावाले फलोंको अति तुच्छफलके नामसे पुकारा जाता है। जैसे छोटी ककडी, केरी, तोरई, भिन्डी, गिलकी आदि। ऐसा कहा या पूंछा जा सकता है कि इन पदार्थोंके सेवनमें क्या दूषण है जो इनका त्याग कराया जाता है?

वढतीकी ओर अक्सर जिसके कि कभी पूर्ण रूपेण अवयवोंकी वृद्धि नहीं हुई है, ऐसे तुच्छ फलके आश्रित अनन्ते ही निगोदिया जीव रहते हैं, अतः तुच्छ अवस्थामें जिसका सेवन किया जायगा उसमें अनन्ते ही सूक्ष्म निगोदिया जीवोंका घात होगा। वडे होजानेपर सप्रतिष्ठत प्रत्येक न होता हुआ वह अप्रतिष्ठित प्रत्येक होजाता है, तव वैसी अवस्थामें अल्प घात व वहुफल होनेके नाते भक्षणीय माना जा सकता है।

अतः पापसे सदैव डरने वाले व्यक्तियोंको तुच्छ फल नहीं खाना चाहिये।

(२१) तुषार–

शीतकालमें विशेष ठंड पडनेपर पाला पड जाता है, उसी समय पानी आदि जम जाते हैं। आचार्योंका कथन है कि इस प्रकार ठंडसे जमे हुये जलादिकका सेवन नहीं करना चाहिये, कारण कि वह जल अनछना व अमर्यादित होनेसे अनेक जीवयुक्त हो सकता है। उन जीवोंकी हिंसाका दूषण न लग जाय, अतः तुषारयुक्त पदार्थका सेवन नहीं करना चाहिये।

(२२) चलित रस–

जिस पदार्थकी जो मर्यादा बताई गई है उससे पहले ही उसका सेवन करना उचित है, अवधि बीतजाने पर वह पदार्थ चलित रस [ऐसा पदार्थ जिसका कि स्वाभाविक स्वादरस विगड गया हो] माना जाने लगता है। माना कि जब साधारणमें प्रचलित परिभाषासे उस परिभाषाका विरोध सा प्रतीत होगा। किन्तु सर्वज्ञ व सर्वदर्शी कथित या उपदिष्ट वचनोंमें हम छद्मस्थोंका ननु नच करना युक्ति युक्त नहीं।

अवधिके बाद पदार्थमें चलित नामक विकृति हुई या नहीं, इसका परिज्ञान करानेवाला हमारे यहां कोई यंत्र नहीं है। उसके अभावमें क्योंकर हम सर्वद्रष्टाके वचनोंमें अवि-

श्वास कर सकते हैं ?

इस सब विवेचनको सुन यह शंका उठ सकती है कि किसी ग्रन्थमें तो अभक्ष्यके पांच भेद हैं, और किसीमें २२ इन दोनोंमें किसको सत्य मानें ?

इसके उत्तरमें तो यही कहना है कि दोनोंही सत्य हैं। जो अभक्ष्य के पांच भेद–

१ अल्पफल वहुघात २ प्रमाद ३ त्रसघात ४ अनिष्ट ५ अनुपसेव्य।

वतलाये गये हैं उनमें ही उपरि वर्णित २२ अभक्ष्य गर्भित हैं। चाहे सीधे पणसे हाथ लम्बा करोगे तव भी हाथ सीधा नाक तकही जावेगा, अथवा द्राविडी प्राणायाम कर हाथको नाकतक लम्बा करनेकी कोशिशकी जावेगी तो घुमाव देकर नाक तक हाथ पहुंचाया जावेगा। आखीर वात एकही है, सामान्य और विशेपका ही अन्तर है। इन पांच अभक्ष्योंका त्याग करो तो उपरि वर्णित वाईस अभक्ष्योंका ही त्याग करना होजाता है। अतः कोई उलझाव या गडवडीकी वात नहीं है।

अन्तमें कुछ ज्यादा विवेचन न करते हुए हमतो आत्महितचिंतक भव्यात्माओंसे यही कहेंगे कि यदि वास्तवमें मनुष्य पर्याय पाकर कुछ उससे लाभ उठाना चाहते हो तो भावनाओंको उन्नत वना देखभाल शुद्ध

आहारका सेवन करो, और अभक्ष्य पदार्थोंका त्याग करो और धीरे २ अन्तरोन्मुख दृष्टिकर अपने अंतिम लक्ष्य की प्राप्तिमें सफल होओ।

गृहस्थोंको निम्न लिखितबातों पर अवश्य ध्यान देना चाहिये—

१. स्त्रियोंको मासिकधर्म (रजोदर्शनका) पालन ठीक २ रीतिसे करना चाहिये।

२. सौर सूतक और पातककी रीति जैनधर्मके अनुकूल ही पालन करना चाहिये।

३. खाने पीनेकी सामग्रीके सम्बन्धमें यथायोग्य पूरा ध्यान रखना चाहिये।

४. अपने षटकर्मोंके पालन करनेका भी पूरा ध्यान रखना चाहिये।

प्रश्न—इन चारों प्रकारके कर्त्तव्योंका ठीक २ संक्षेप रूपमें खुलाशा कीजिये?

उत्तर—जैनधर्ममें इन चारों कर्त्तव्योंपर पूरा ध्यान देनेके लिये शास्त्रकारोंका उपदेश है और वह उपदेश इस प्रकार है—

स्त्रियोंका मासिकधर्म—

त्रिपक्षे शुद्धयते सूती रजसा पंच वासरे।

अन्यशक्ता च या नारी यावज्जीवं न शुद्धयते ॥१॥

अर्थ-प्रसूता [जिसको सन्तान पैदा हुई है] ऐसी स्त्री तीन पक्ष अर्थात् ४५ वें दिन शुद्ध होती है। रजस्वला (मासिक धर्म) वाली स्त्री पांचवें दिन शुद्ध होती है। जो गृहस्थ स्त्री पर पुरुष रत हुई हो अर्थात् व्यभिचारिणी स्त्री हो वह जीवन पर्यन्त शुद्ध नहीं होती है। ऐसा सिद्धान्तका वाक्य है।

प्रश्न—आपने गृहस्थ स्त्रियोंकी शुद्धिका मार्ग तो बतला दिया अब आर्यिकाकी शुद्धिका क्या मार्ग है सो भी बतलाइये ?

उत्तर-आर्यिकाओंके लिये वीरनन्दी आचार्यने आचारसारमें तीनही दिन अपवित्रताके बतलाये हैं, उसका खुलाशा वर्णन संयम प्रकाशमें किया है वहां से जानना चाहिये।

प्रश्न-गृहस्थ धर्म पालन करनेवाली स्त्रियोंको मासिक धर्मका पालन कैसे करना चाहिये सो स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर-गृहस्थ स्त्रियोंको चाहिये कि वे अपने मासिक धर्मके समय तीन दिनतक एक अलग एकान्त स्थानमें ही रहें, ऐसी जगहमें जहांपर किसीका भी आना जाना न होता हो। वे अपने खाने पीनेके वर्तन वा ओढने विछानेके कपडे भी अलग ही रक्खें। उन तीन दिनोंमें दूसरे

पुरुषोंका मुंह भी न देखें। क्योंकि दूसरे पुरुषोंके मुंह देखनेसे मासिक धर्म दूषित होजाता है।

पूर्वाचारियोंने मासिक धर्मवाली स्त्रियोंको फोटो लेने के केमरेका दृष्टांत देकर समझाया है-जिस प्रकार केमरे के सामने कोईभी पदार्थ आजावे उसका फोटू [प्रतिबिंब] जैसी हालतमें हो खिंच जाता है। उसी प्रकार मासिक धर्म के समय स्त्रीकी हालत होती है—वह स्त्री इन दिनोंमें जैसे पुरुषका मुंह देख लेती है वैसीही संतान पैदा होती है। कभी २ देखा गया है कि किसी २ संतानकी आकृति उसके मा बापसे बिलकुल भिन्न दर्जेकी होती है उसका कारण भी यही है।

मासिक धर्मके समय तीन दिन और तीन राततक तो अशौच पालना चाहिये इन दिनोंमें मासिक धर्मवाली स्त्रीको न तो झाड़ू देना चाहिये न लीपना पोतना चाहिये, न वर्तन मांजना चाहिये और न कपडे धोना, पीसना, कूटना, पानी भरना, गोवर थापना, शृङ्गार करना चाहिये। चौथे दिन स्नान करके सबसे पहिले अपने पतिका मुंह देखे। अगर पति घरपर न हो तो दर्पणमें (आरसीमें) अपने आपके मुहको देखे। पांचवें दिन रसोई (चौंकेका कार्य) करे। परंडे (घिनोंची) का पानी छाने और मन्दिरमें भगवानके दर्शन करने जावे। परन्तु ध्यान

रहे कि ये वर्णन उन स्त्रियोंके लिये है जिनका मासिक धर्म नियमित चलता हो। जिनका मासिक धर्म अनियामित हो उनको अपनी स्थितिके अनुसार काम करना चाहिये।

कितनीही स्त्रियोंका मासिक धर्म अधिक दिनों तक चलता रहता है उनको आचार्योंने बीमारीकी हालतमें गिना है। यदि किसी स्त्रीको मासिक धर्म १७ दिनके पहले हो जावे तो वह स्त्री एक दिनमें शुद्ध हो जाती है, ऐसा माना गया है अगर १८ वें दिनके पीछे रजोदर्शन होवे तो उस स्त्रीको पूर्ण मर्यादा जो ऊपर बतलाई गई है पालना चाहिये मासिक धर्मके समय भगवानका स्मरण, जाप्य, स्तुति समायिकादि मुखाग्र पाठ सब कुछ कर सकते हैं। परन्तु धीमे स्वरसे करना चाहिये। विशेष जोरसे नहीं करना चाहिये।

प्रश्न—भगवानकी स्तुति, जाप्य आदि धीरेसे क्यों किया जाय इसका क्या रहस्य है?

उत्तर—मासिक धर्मके समय, स्त्रियोंके शरीरके परमाणु इतने गंधे हो जाते हैं जिनका प्रभाव दुर्वल पदार्थों पर बहुत पडता है। जैसे–पापड, वडी, पकोडी तथा किसी २ की निकली हुई माता की बीमारी आदि शीघ्र बिगड जाती हैं। उसके शरीरका प्रभाव तो अलग रहा शब्दका प्रभाव भी ऐसी चीजों पर भी पड जाता है इसीसे धीरे २ बोलनेका

मार्ग वतलाया गया है।

प्रश्न–यदि जाप्य और स्तुति करने तथा स्मरण करने का ऐसा प्रभाव पडता है तो वतलाइये जिसके घरमें दो ही आदमी हैं उनमेंसे स्त्री तो मासिक धर्ममें हो और दूसरा कोई जीव सख्त बीमार हो उस समय उसको भगवानके नाम सुनानेकी पूर्ण आवश्यकता है तो उस समय उसको वह स्त्री भगवानका नाम न सुनावे? उसकी हालत बिगडने देवें? उस समय क्या करना चाहिये सो कहिये?

उत्तर–आपका कहना ठीक है। मार्ग दो प्रकारका वतलाया गया है। (१) राजमार्ग (२) अपवादमार्ग।

(१)-राजमार्ग तो यही है कि ऐसी हालतमें उस स्त्री को भगवानका नाम जरूर सुनाना चाहिये, क्योंकि भगवान का नाम सुननेसे बीमारका भला होता है। परन्तु–

(२)–दूसरा अपवाद मार्ग बतलाता है कि जब तक कोई दूसरा आदमी इस कामको करने वाला मिल सकता है उस स्त्रीको नहीं करना चाहिये। यदि कोई दूसरा आदमी नहीं हो तो उस स्त्रीको नाम सुनानेमें कोई आपत्ति नहीं समझनी चाहिये। क्योंकि शास्त्रोंमें भी ऐसा कहा गया है कि–

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा।
ध्यायेत् पंच नमस्कारं सर्वपापैर्विमुच्यते ॥१॥

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्परमात्मानं स वाह्याभ्यंतरे शुचिः ॥२॥
अपराजितमंत्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशकः ।
मंगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः ॥३॥

अर्थ—कोई भी व्यक्ति चाहे अपवित्र हो या पवित्र हो अच्छी हालतमें हो या बुरी हालतमें हो यदि पंचनमस्कारमंत्रका ध्यान करता है तो संपूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है। कोई भी व्यक्ति चाहे अपवित्र हो या पवित्र हो किसी भी अवस्थाको प्राप्त हो यदि वह परमात्माका स्मरण करता है तो वह बाह्य और आभ्यंतर दोनों रूपसे पवित्र हो जाता है। यह अपराजित (पंच नमस्कार) मंत्र संपूर्ण विघ्नोंका नाश करने वाला है। संपूर्ण मंगलों (पाप नाश करने वालों) में प्रथम मंगल (पाप नाश करने वाला) माना गया है। जैनधर्ममें जैनियोंकी इस प्रकारकी मान्यता है परमात्माके स्मरण करनेसे तो जीवका कल्याण ही होता है। कोई २ हटी पुरुष इस कार्यको अनुचितही कहते हैं परंतु उनकी ऐसी मान्यता शास्त्र विरुद्ध है।

सौर सूतक और पातक—

जन्मके समयको सौर कहते हैं, मरणके समयको सूतक और हत्या कर्मको पातक कहते हैं।

प्रश्न–जैन धर्मके ऐसे अनेक ग्रंथ हैं जिनमें ऐसा कोई आर्ष ग्रंथ नहीं देखा जिसमें इस प्रकारके सौर सूतक और पातकका व्यवहारी जीवोंके लिये कथन किया गया हो। त्रिवर्णाचारादि ग्रंथोंमें जरूर मिलता है जो त्रिवर्णाचार सतरहवीं शताब्दीका है, तो क्या हमारी इस जैन समाजमें पहिले ऐसी पृथा चालु न होकर ये नई पृथा देखा देखी चालू हुई है। ये पृथा तो जैनेतर लोगोंकी अपेक्षासे होनी चाहिये ? जैन धर्मके भी किसी ग्रंथमें ऐसा लेख है क्या सो कहो ?

उत्तर–तुम्हारा प्रश्न बहुत योग्य है। दिगम्बर जैन संप्रदायके ग्रंथोंमें ऐसा मिलता है सो सुनो-पहिले आदिनाथ पुराणमें कहा है कि भरत चक्रवर्तीके रणवासमें तो पुत्र उत्पन्न हुवा और उसी समय भगवान आदिनाथ स्वामी को केवल ज्ञान उत्पन्न हुवा। उस अवस्थामें भरतचक्रीने सबसे पहिले समोसरणमें जाकर भगवानकी पूजन की।

दूसरे सुखमाल चरितमें लिखा है कि जब सुकमाल कुमारका जन्म हुवा तब सबसे पहिले सुभद्रा सेठानीने मंदिरमें जाकर भगवानकी पूजन की थी।

तीसरे प्रद्युम्नकुमार चरितमें लिखा है कि जब श्रीकृष्ण नारायणकी पटरानी रुक्मणी महारानीके प्रद्युम्नका जन्म हुवा तब नारायण श्रीकृष्णने अपने मंत्रीको हुक्म दिया

कि भगवानके मंदिरमें जाकर पूजन करो चैत्यालयोंमें खूब शोभा कराओ। ऐसा कथन ग्रंथोंमें मिलेता है सो ग्रन्थोंको खोलकर समझ पूर्वक क्यों नहीं पढ लेते हो जिससे संदेह दूर हो जायगा।

प्रश्न—हमने ग्रंथ वांचे और पढे हैं पर शंका ये है कि ये पृथा कबसे और कैसे चली सो समझाइये ?

उत्तर—यह पृथा इस तरह चली कि दिगम्बर जैनियों के मंदिरोंमें काम करनेवाले पुजारी (ब्राह्मण व्यास) रहते हैं और वे लोग ऐसा मानते हैं क्योंकि उनके धर्ममें ऐसी मान्यता है कि सौर सूतकमें भगवानको नहीं छूना चाहिये। वे यह नहीं समझते कि धर्ममार्ग क्या है। उन्हींका धर्म विषयक सहवास रहनेसे उनके पास जब कोई सौर सूतकवाला गृहस्थ आता है तो वे समझा देते हैं कि आपके यहां पुत्र पुत्रीका जन्म हुवा है इसलिये आप भगवानकी पूजन नहीं कर सकते हैं। इस विषयमें कितने ही प्रांतोंमें तो यहांतक प्रचार होगया कि जब तक सौर न उठ जाय भगवानका मुखारविंद भी नहीं देखना चाहिये। जिनकी प्रतिज्ञा दर्शन किये बिना भोजन न करनेकी होती है वे भी प्रतिज्ञाभंग दोषके भागी बनाये जाते हैं। ब्राह्मणही जब शास्त्रवक्ता और पूजक रहते थे जैनी लोग शास्त्र-स्वाध्यायसे दूर रक्खे जाते थे तो उनको ये तो कुछ मालूम

नहीं हो पाता था कि इस विषयमें जैनाचार्योंकी क्या आज्ञा है वे पुजारी ही समझा देते थे कि इस समय दर्शन पूजन करना ठीक नहीं है। अब तो लोगोंमें रूढी पड गई और लोग अपने दर्शन पूजनसे परहेज करने लगे। जहां इस सिद्धांतके प्रचारक वक्ता और पुजारी रह रहे हों वहां उनकी आज्ञा के पालक होनेही चाहिये।

प्रश्न—यह तो बताओ कि जबतक हमारे यहां इस बातका थोडा बहुत अस्तित्व न पाया जायगा तबतक ऐसी पृथा कैसे चालू हो सक्ती है ?

उत्तर—हमारे दि. समाज में सौर जरूर मानी गई है परंतु वह दोष प्रसूता स्त्रीको ही माना गया है उसके अन्य कुटुम्बियों को नहीं लगा करता है।

प्रश्न—ऐसा क्यों इसका भी खुलासा होना चाहिये ?

उत्तर—जब स्त्रीका पुत्र पुत्रीका जन्म होता है तब जो योनिके आकार जन्मस्थान है वह बच्चोंके जन्म लेनेसे फट जाता है क्योंकि उसके फटे बिना बच्चा बाहर कैसे आसकता है ? उसके फटनेसे जब बालक पैदा होता है उस समय उस बाईको बडी तकलीफ होती है बालकके साथ उस स्त्रीके पेटसे बालक और जाली तथा खून सब ही एक साथ निकलते हैं बादमें खून बराबर निकलताही रहता है उसीसे प्रसूता स्त्री को ४५ दिन तकका सौर जन्य दोष माना गया है उसके

कुटुम्बियोंको नहीं परन्तु रूढी ऐसी पडगई है कि दस दिनतक सभी मानेते हैं ।

प्रश्न—आपका कहना ठीक जच गया वास्तवमें ऐसाही हुआ है परन्तु मरण समयका सूतकतो जैनियोंमेंभी बारह दिनोंका माना जाता है वह कैसे ?

उत्तर—यहभी गलत फहमी है इसका भी हाल सुनों जब किसीके घरका कोई व्यक्ति मरजाता है तब सब लोग मिलकर उसको जलानेके लिये श्मसानमें लेजाते हैं वहां उसको जलाते हैं तब उस अर्थीमें आग लगानेवाला पुरुषही उस पापका भागी होता है ।

प्रश्न—वही पापका भागी क्यों बनता है ?

उत्तर-वह पापका भागी इसलिये बनता है कि जब उस शरीरमें वह जीव जो पूर्ण अवयवोंका स्वामी था निकल चुकता है उसके निकल चुकनेके बाद अन्तमुहूर्त उपरांत उसी जातिके पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छन अनंत जीव उत्पन्न होने लगते हैं, सो जब वह मुर्दा जलाया नहीं जाता उसमें अगण्य जीव उत्पन्न हो जाते हैं जबतक मुर्दा जलाया जाता है तो उसीके साथ उस शरीरमें पैदा हुए अगण्य जीव जल जाते हैं इसलिये जो आगी लगानेवाला कुटुम्बिजन है उसको उन तमाम जीवोंके मारनेका

पाप लगताही है। ऐसे व्यक्तियोंको स्मशान भूमिसे आनेबाद शील, संयम, तप पूर्वक कुछ समय विताना चाहिये जिससे कि उस तरहके पापका मार्जन होजावे।

पीछे जिसे उठावना कहते हैं और जो क्रिया जलाने के तीसरे दिन की जाती है उस दिन उस मुर्देकी राख जो स्मशान भूमिमें रहती है इकट्ठी करके कोई सूखी जगहमें डाल दी जाती है और वहांसे आनेबाद पवित्र जलसे स्नान करके शुद्ध कपडे पहिनकर तमाम पंचोंके साथ मंदिरमें जाता है मंदिरमें जाते समय लौंग बदाम आदि द्रव्य लेजाकर चढाया जाता है गंधोदक लिया जाता है शांति पाठ बोला जाता है ये सब किया की जाती है। यह क्रिया भी मुर्दाको जलानेमें जो पाप किया जाता उसके परिहार करनेके लिये प्रायश्चित रूप होती है।

यहां विचार करना चाहिये कि जब तीसरे दिन घर की द्रव्य लेजाकर चढाई जा सकती है तो फिर आगेके दिनोंका सूतक कैसा? बारह दिनका सूतक मानना तो यथार्थ दूसरोंकी देखा देखी रूढीही पड गई है। न कि कोई धर्म है।

जब हमारे यहां मानस्तंभ चंडालके पूजन करनेके लिये बनाया जाता है जिसमें प्रतिमाभी जरूर रहती है चाण्डाल वहां आकर पूजन करता है तब वह

श्रावक जो उठावना करता है उस चाण्डालसे भी पतित होजाता है जो निरन्तर संज्ञी पंचेन्द्रियोंका हनन करता है ? आश्चर्य है कि नीच गोत्री अधमकर्मी चाण्डाल पूजन कर सकता और उच्च गोत्रमें उत्पन्न श्रावक पूजन नहीं कर सकता। यह रूढी नहीं और क्या है ? एक कविने ऐसा कहा है कि—

देखा देखी साधे योग, छीजे काया बाढे रोग ॥

इस कहावतमें जैन लोग भी बदल गये हैं।

प्रश्न—आपका कहना यथार्थ है परंतु लोक व्यवहार भी कुछ महत्ता रखतां है ? इसलिये उसका विचारभी हम गृहस्थोंको रखना पडता है इसालिये वस्तुस्थिति तो जो कुछ है सो है ही परंतु व्यवहारमें सूतक किस प्रकार मानना चाहिये ? सो भी बतलाइये।

उत्तर—खैर सुनो ! यथार्थ तो जो कुछ था कह दिया गया मगर आजकल दूसरोंके अनुकरण रूप जो कुछ देखादेखी चल रही है वह भी करनी पडती है और वह इस प्रकारसे है—

तुमको जबतक दूसरा आर्ष वचन न मिले तबतक इस रीतिपर चलना चाहिये जो नीचे बतलाई जाती है। बुद्धिबोधक ग्रंथमें भी ऐसाही बतलाया गया है परंतु मूल थोडासा मूलाचारके पिंड शुद्धि अधिकारमें इस तरह

कहा है कि-

सूदी सुडी रोगी मदयणपुंसय पिसायणग्गो य।
उच्चार पडिय दव्वं तरुहिखेसी समणी अंगमक्खीया॥४९

टीका--सूतिः या बालं प्रसवते-जनयति। मृतकं मृतकं स्मशाने परिक्षिप्यागतो यः स मृतक इत्युच्यते। मृतकसूतकेन यो जुष्टः सोपि मृतक इत्युच्यते।

इस प्रकार सूतक विषयक कथन मिलता है। जिसका खुलाशा वर्णन इस तरह किया गया है-

सूती माने बालकको जन्म देनेवाली स्त्री। मृतक-माने जो स्मशानमें मुर्दाको क्षेपकर आया हो अथवा मृतकके सूतकसे जो युक्त हो जिसके घरका कोई मरा हो वह व्यक्ति।

इसका खुलासा विद्वज्जन बोधकसे-

सूतकं वृद्धिहानिभ्यां दिनानि दश द्वादशाः
प्रसूतिस्थानं मासैकं सूती पंचचतुः दिवाः॥

अर्थ-वृद्धि-अर्थात् जन्मका सूतक (क्यों कि बालक के जन्म लेनेसे घरमें एक व्यक्तिकी बढती हो जाती है इसलिये इसको वृद्धि शब्दसे कहा है) हानि-अर्थात मरण का सूतक [क्यों कि मरण हो जानेसे घरमें एक व्यक्ति की हीनता होजाती है इसीसे इसको हानि शब्दसे कहते हैं] सो यथाक्रमसे दश और बारह दिनका

माना गया है। जहांपर बच्चा पैदा होता है उस स्थान का सूतक एक माहका माना गया है तथा प्रसूता स्त्रीका सूतक ४५ दिनका माना गया है। र्थात इतने दिनोंके बाद पूजन करने योग्य वा दान देने योग्य हो जाती है।

प्रव्रजिते मृते बाले देशान्तरे मृते रणे।
सन्यासे मरणे चैव दिनैकं सूतकं भवेत्॥

अपने कुलका दीक्षित क्षुल्लक ऐलक वा मुनि अथवा अपने घरका छोटा बालक एक वर्ष तकका, तथा कोई देशान्तरमें मरा हो या रण संग्राममें मरा हो या संन्यास मरण किया हो तो इन सबका सूतक एक दिन का होता है।

इसीका खुलासा करते हैं—

तृतीये पादे स्यात्पूर्णं चतुःपादे षष्ठे भवेत्
पंचमे पंच दिनानि षष्ठे चतुरहाः भुवि॥
सप्तमे तृतीयं दिनमष्टे पुंस्यहोरात्रिकम्।
नवमे प्रहरद्वयं दशमें स्नानमात्रिकः

अर्थ—मरणका सूतक तीसरी पीढीतक तो पूर्ण अर्थात् बारह दिनका होता है चौथी पीढीमें छह दिनका पांचवी पीढीमें पांचदिनका, छट्ठी पीढीमें चारदिनका. सातवीं पीढीमें तीन दिनका आठवीं

पीढीसें एक दिन रातका, नवमी पीढीसें दो पहरका (६ घंटेका), दशमीं पीढीसें स्नान मात्रसे शुद्ध हो जाता है।

विशेष—एक वर्ष तकके वालकका सूतक एक दिन रातका मानना चाहिये। एक वर्पसे ऊपर आठ वर्ष तकके वालकके मरणका सूतक तीन दिनतक इससे ऊपरकी उमरवालेका सूतक १२ दिनका मानना चाहिये।

गर्भपातके पातकका कथन—

यदि गर्भविपत्तिः स्यात्स्रवणं चापि योपिताम्।
यावन्मांसस्थितो गर्भस्तावद्दिनानि सूतकम॥

अर्थ— स्त्रियोंके जितने मासके गर्भका पात होवे (गर्भस्थ वालक गर्भसे गिर जाय) उतनेही दिनोंका सूतक मानना चाहिये।

दासीदासस्तथा कन्या जायते म्रियते यदि।
त्रिरात्रं सूतकं ज्ञेयं गृहमध्ये तु दूषणम्॥

अर्थ—दासी दास वा कन्याकी अपने घरमें प्रसूति हो या इनका मरण हो तो तीन दिन तकका सूतक मानना चाहिये अपने घरके वाहरका सूतक नहीं लगता है। कन्या शब्दसे अपनी विवाही हुई लडकी समझनी चाहिये।

अश्वी च महिपी चेटी गौः प्रसूता गृहांगणे।
सूतकं दिनमेकं स्याद्गृहवाह्ये न सूतकम्॥

अर्थ-जो दासी दास वा कन्याके या घरकी पशु घोडी, भैंस वा गाय अपने घर के आंगन में प्रसूता हुई हों तो उसका सूतक एक दिनका मानना चाहिये यदि अपने घर से बाहर जन्मे तो न सौर है और न सूतक है। इसी अर्थके साथ कुछ विशेपता बतलाने वाला दूसरा श्लोक कहते हैं—

अश्वी च महिपी अजा गौः प्रसूता गृहांगणे।
सूतकं दिनमेकं स्याद्गृहबाह्ये न सूतकम्॥

अर्थ—घोडी, भैंस, बकरी और गाय यदि अपने घर के आंगनमें व्यावें तो एक दिनका सूतक है यदि अपने घरके बाहर व्यावें तो फिर सूतक नहीं लगता है।

प्रश्न-कौनसे पशुका दूध व्याने बाद कितने दिन तक अभक्ष्य रहता है?

उत्तर—इस प्रश्नके उत्तरमें श्लोक कहते हैं—

महिष्याः पाक्षिकं क्षीरं गोक्षीरं च दशोदितम्।
अष्टमे दिवसेऽजायाः क्षीरं शुद्धं न चान्यथा॥

अर्थ—व्याने बाद भैंसका दूध १५ दिन तक गायका १० दिन तक और बकरीका आठ दिन तक अभक्ष्य रहता है उसके बाद भक्ष्य हो जाता है। पहिले नहीं।

जातदंतशिशोः नाशे मातरं दशाह सूतकम्।
गर्भस्रावे तथा पाते पितरं च दिनत्रयम्॥

अर्थ–निकल आये हैं दांत जिसके ऐसे बालकके मरने पर माताको दश दिनका सूतक लगता है किन्तु चाहे गर्भ-स्राव हो या पतन हो तो माता पिताको तीन दिनका सूतक रहता है।

इस प्रकार सूतकका खुलाशा वर्णन करने पर भी कितने ही ग्रन्थकार गोत्रके लोगोंको पांच दिनका सूतक बतलाते हैं। परन्तु गोत्रमें तो सिर्फ दश पीढी तक तो ऊपर बतलाये अनुसार सौर सूतक होता है आगे तो संभवता ही नहीं है। क्योंकि गोत्र तो बहुत बडा होता है। गोत्र कहां तक मानना चाहिये यह समझमें नहीं आता।

खाने पीनेकी सामग्रीका स्वरूप—

पूर्वाचार्योंके कथनके अनुसार ऋतु प्रत्येक अष्टाह्निकाकी पूर्णिमाके बाद आने वाली एकमसे मानी जाती है जैसे–

ग्रीष्मऋतु– चैत्रवदी एकमसे अषाढ सुदी पूर्णिमातक
वर्षाऋतु श्रावणवदी एकमसे कार्तिकसुदी पूर्णिमातक
शरदऋतु– मागसिरवदी एकमसे फाल्गुनसुदी पूर्णिमातक ऋतुओंका फेरबदल मानागया है।

इन समयोंमें वस्तुओंकी हीनाधिक मर्यादा मानी गई है।

निमकको सदासचित्त माना गया है, वह भी सेंधानमकको सचित्त माना है। न कि सामरका वा खारा योडा

या काला निमकको क्योंकि ये सब नमकतो अभक्ष्यही माने गये है। ये नमक अनछने पानीसे बनाये जाते हैं। सेंधानमक पत्थरकी तरह पहाडोंसे निकाला जाता है वह अकृत्रिम वस्तु है। पहाडोंमें खदानोंसे खोदा जाता है इससे शुद्ध है।

इसकी मर्यादा भी पीसे वा बांटे बाद दो घंडी अर्थात् ४८ मिनटकी ही होती है ज्यादा नहीं होती है, पानी छाने बाद फिर ले लिया जाता है; परंतु यह पदार्थ पीसे बाद ४८ मिनटतक ही मर्यादित रहता है। पीछे अभक्ष्य हो जाता है। इसको ६ घंटा रखना होतो हल्दी मिलाकर पीस लेवे तो इसकी मर्यादा बढ सकती है अन्यथा नहीं बढ सकती है। इसको इकट्ठा पीसकर कभी नहीं रखना चाहिये इसकी चनेके बराबरकी कंकरीयें बनाकर धर लीजांय तो जी चाहे तब तक काममें लेते रहो।

शक्करके बूरेकी मर्यादा—

हेमन्ते तीसदिणे गियहे दिणाणि पण्णरसा।
वस्सासु अट्ठदीणं इस भणियं सव्वगोह ॥

अर्थ—शीत ऋतुमें शक्करके बूरेकी मर्यादा एक महिनेकी होती है। ग्रीष्म [गर्मी] ऋतुमें पन्द्रह दिनकी मर्यादा होती है तथा वर्षा ऋतुमें आठ दिनकी मर्यादा होती है इससे ज्यादा नहीं।

दूधका वर्णन इस तरह है—

गाय, भैंस और बकरीका जब दूध निकालना हो तब उसके थनों (बोबे) को जलसे अच्छीतरह धोना चाहिये। फिर उसे दुहकर दो घडीके भीतर २ कपडेसे छानकर इतना गर्म करना चाहिये जिससे उसमें उबाली आकर उसके ऊपर थर अर्थात् साडी आजावे ऐसे दूधकी मर्यादा आठ पहरकी होती है। ऐसे दूधको कोई समय पर ज्यादा गर्मी पडने लगजावे तब चारही पहरमें काममें ले लेना चाहिये बादमें उसके खराब होजानेकी शंका होजाती है।

दहीका स्वरूप

ऊपर बतलाये अनुसार दूध को गर्म करके उसकी मर्यादाके अन्दर जावण देना चाहिये वह जावण शुद्ध होना चाहिये। जैसे रुपयेको गर्म करके या निंबूके रसको या अमचूरका या इमलीका या पलाश (छेवले) के पत्तेका और मर्यादाके दही बडीका या दहीमें भिगोये हुए कपडेको डालकर या नारियलकी खपरियाका जावण देना चाहिये। इसके विपरीत जावण देनेसे दही अभक्ष्य होजाता है। दही की मर्यादा जावण देनेसे आठ पहरकी होती है। बादमें वह दही अमर्यादीक होजाता है। इस प्रकारके मर्यादीक दहीको विलोकर [भांकर] उसमेंसे नेंनूं (लोंनी या मक्खन) निकालकर अन्तमुहूर्तके भीतर ही उसको गर्म करके

छानलेवे। ऐसा करनेसे जो घृत उत्पन्न होजाता है वह ही शुद्ध मर्यादीक होता है। दो घडीके पीछे वह रखा हुआ नेंनूं (लोनी) तपाने योग्य नहीं रहता है। उसका बनाया हुआ घृत कैसे भक्ष्य हो सकता है।

बहुतसे स्थानोंके लोग दूध लगाकर विना गर्म किये ही रख छोडते हैं दो समयका इकट्ठा करके जमाते हैं उसको विलोकर उसका नेंनूं निकाल रख लेते हैं दो तीन वक्तका नेंनूं इकट्ठा करके तपाते और उसका घी बनाते हैं ऐसा घी तो मांसके बराबर है बिलकुलही अभक्ष्य है। ऐसे घीको वेंचनेवाले घोर पापी होते हैं उनको परभवमें घोर यातनायें भोगनी पडती हैं। कई लोग थोडेसे स्वार्थके लिये दूसरोंका धन हरण करते सो तो करते ही हैं धर्म भी हरण करलेते हैं ऐसे लोग अज्ञानी होनेके साथ पापके भयसे निःशंक होते हैं।

छाछका वर्णन—

मर्यादीक दहीमें ठन्डा पानी डालकर छाछ (मही) विलोया जावे इसकी मर्यादा छह घन्टा (दो पहर) की होती है। यदि गर्म पानीसे छाछ विलोया जाय तो उसकी मर्यादा चार पहर अर्थात बारह घन्टेकी होती है। यदि गर्म पानीसे विलोनेके वाद ठन्डा पानी डाल दिया जायगा तो उसकी मर्यादा चार पहरकी न होकर दो पहरकी ही

होती है। जैन मात्रका कर्तव्य होना चाहिये, कि प्रतिदिनके व्यवहारमें आने वाले दूध, दही, घी, छाछका उपयोग ऊपर बतलाये हुये मार्गसे ही करें। इस तरहसे पदार्थके सेवन करनेसे हिंसा मार्गसे बचकर धर्मकी मर्यादाका पालन कर शुभ कर्मोंके सम्बन्धसे भावी शुभ गतिके पात्र बन जाते है।

पानीकी मर्यादा—

मुहूर्तं गालितं तोयं प्राशुकं प्रहरद्वयम्।
उष्णं चतुष्कयामं च विशेषोष्णं तथाष्टकम् ॥१॥
एगम्मि उदगविंदुम्मज्जे जीवा जिणवरेहिं पण्णत्तो।
तेजइसरिसवमित्ती जंबूदीवे ण मायन्ति ॥२॥
षट्त्रिंशदंगुलं लम्बं तावदेव च विस्तृतम्।
अच्छिद्रं सघनं वस्त्रं गृह्यते जलशुद्धये ॥३॥
घटीद्वये गते चापि पुनरेव विशोधयेत्।
प्रातःकाले तु संशोध्य शेषं पूर्वजले क्षिपेत् ॥ ४ ॥

अर्थ—गृहस्थोंके लिये छना हुआ पानी दो घडी अर्थात् अडतालीस मिनट तक काममें लेना चाहिये। छने हुए पानीकी इतनी ही मर्यादा है। सामान्यतया गरम किये हुये पानीकी मर्यादा चार पहरकी होती है तथा भातकी तरह उकाले हुए जलकी मर्यादा आठ पहरकी मानी गई है।

प्रश्न—पानी प्राशुक कैसे हो सकता है ?

उत्तर-प्राशुक जल इस तरह किया जाता है-

नीरं तु प्राशुकं ग्राह्यं मुनिभिः शुद्धमेव तत् ।
पष्ठयंशं स्थापयेद् द्रव्यं प्राशुकं च जिनोदितम् ॥

अर्थ-जलको प्राशुक करते समय जो द्रव्य डाला जाता है जैसे-हरड, आंवला, राख, वहेडा, सो पानीके भागसे ६० वां भाग डाला जाता है जैसे ६० तोला पानीमें एक तोला द्रव्य डाला जाता है ऐसे प्राशुक जलको मुनीश्वर लोग भी ग्रहण कर सकते हैं ।

प्रश्न—हमने प्राशुक करनेकी जलकी विधि और ही प्रकार सुनी है सो कैसी है खुलाशा कीजिये ?

उत्तर-मूलाचार ग्रंथमें प्राशुक जल करनेके लिये इस प्रकार लिखा है-पिंड शुद्धि अधिकार गाथा ४७३ में कि-तिलको धोनेका, चावलको धोनेका, चनेके तुषोंको धोनेका या हर्रादि तिक्त द्रव्य डालकर प्राशुक कर लिया हो या गरमकर ठंडा कर लिया हो. जिस जलकी इस प्रकार विधि नहीं की गई हो वह जल संयमियोंके लेने योग्य नहीं होता है ।

प्रश्न—आपने तो और प्रकार वतलाई है और हमने शास्त्रोंमें और प्रकार गाथा देखी है—

तत्तं पक्कं सुक्कं आमिललवणेण मिस्सियं दव्वं ।

उत्तर-तुम्हारा कहना बहुत ठीक है यह गाथा भी जलको प्राशुक करनेकी विधि बतलाने वाली ही है। परन्तु आपने आधी गाथा हीकही है उसकी आधी गाथा और है सो सुनो-

जं जंतणय छिन्नं तं सव्वं फासुयं भणियं ।

ऊपर और नीचेकी गाथा एक ही है। यहां विचार करने लायक विषय है कि यह गाथा यह बात समझा रही है कि कोई पदार्थ तो ताता करनेसे, कोई पदार्थ अग्नि पर पकानेसे, कोई पदार्थ सुखानेसे, किसीका मसीन आदिसे छोटे २ टुकडे कर दिये गये हों, उससे कोई नमक मिरची मिलानेसे कोई अमचूर, नीबू, कैंथाकी खटाई मिलानेसे जैसे कोई पदार्थ तो निंबूका रस, आमका रस निकालनेसे कोई गन्नेके रसकी तरह कोल्हूमें पेलनेसे प्राशुक हो जाते हैं। चक्कूके द्वारा इधर उधरसे निकालनेसे नहीं होता है।

अब दो घडीकी मर्यादा वाले पदार्थोंको बतलाते हैं—

(१) निमकको सदा सचित्त माना है परन्तु बांटने वा पीसनेसे दो घडीकी उसकी मर्यादा हो जाती है आगेकी नहीं।

(२) गृहस्थोंके वापरनेके लिये छने हुए पानीकी मर्यादाभी दो घडीकी हो जाती है। इससे आगेकी नहीं।

(३) दूधको दुहनके बाद छानकर गर्म करनेसे दो

घडीकी मर्यादा हो जाती है। यहां सामान्य गर्मीसे मतलब है।

(४) नेनूं [मक्खन] को भी छाछसे अलग कर लेने बाद दो घडी तक गरम कर सकते हैं सो घी बनानेके लिये, परन्तु खा नहीं सकते हैं क्योंकि मक्खनमें छाछका सम्बन्ध रहता है और खानेसे लारका भी संबंध हो जाता है जिससे उसमें उसी रंगके जीव पैदा हो जाते हैं तथा दो घडी बाद तो मक्खनमें भी उसी रंगके त्रस जीव पैदा हो जाते हैं। आज कलके विज्ञानवादने भी इसको खुर्दवीनसे देखकर मंजूर किया है।

दो पहरकी मर्यादा वाले पदार्थ—

(१) जलमें कोई पदार्थ डालकर प्राशुक किये हुए की मर्यादा दो पहरकी होती है।

(२) गरम पानीसे छाछ बनाकर ऊपरसे ठंडा पानी डाला हो तो उस छाछकी दो पहरकी मर्यादा होती है।

[३] निमकमें कोई पदार्थ डालकर पीस लिया हो या काली या लाल मिरचीके साथ पिसा हो अथवा हर्र बहेडेके साथ हो तो उसकी म्याद दो पहरकी हो जाती हैं।

[४] पतोड, रायता इनकी भी दो पहरकी मर्यादा होती है।

चार पहरकी मर्यादा वाले पदार्थ—

रोटी, पुडी, परावटे, पुवा, मालपुवा, भजिया, बुन्दी [नुक्ती] चीलडा, सैंवैया (मेंदाके वींया) कच्चे पापड व मंगोडी, (बडी) सीरा [हलुवा] तुरत बटकर बनाई हुई लुचई जो कडाईमें तली हुई हो, बाटी बाफला, चूरमा, दूधकी रबडी। इससे ज्यादा समयकी रक्खी हुई रोटी पुडी लुचई और ऊपर बतलाई और सब चीजें अभक्ष्य होने जाती हैं में बहुतसे सूक्ष्म त्रसकायके जीव बिलबिलाने लगते हैं। जीव दया पालकोंको ये चीजें मर्यादाके बाहरकी नहीं खानी चाहिये।

आठ प्रहरकी मर्यादा वाले पदार्थ—

सुखाई हुई पुडी, तले हुए पापड़, गुनी, मीठी पुड़ी, बड़ी तली हुई, बेसनका सेव, [खारे सेव] शक्करपारे खजूर कचोरी, शक्करकी बरफी, बेसनकी चक्की, खोपरापाक शक्करकी पगी हुई बूंदी [मोतीचूर या इससे बने हुए लड्डू] मावा (खोवा) का कलाकंद, पेडे, गूंजा जिनमें सिका हुआ मावा पड़ा हुई हो, मिठाई तथा नरम शक्करकी बरफी, गांठीया, चिवडा. घेवर, फैनी, तली हुई गंवारफली, काचरी, अचार, [आंम, निंबू, आमला कमरखका] खाजा पपड़िया वगैरह।

प्रश्न—आपने पापड बतलाये सो ठीक, जब नमक अभक्ष्य

कहा तब साजी वा संचोरा (पापड खार) कैसे भक्ष्य हो सकते हैं ?

उत्तर—जैसे नमक अभक्ष्य है उसी तरह साजी संचोरा भी अभक्ष्य ही है।

प्रश्न – इस दृष्टिसे तो पापड खाना भी छोड देना चाहिये ?

उत्तर–ऐसा क्यों, पापड खाने वालोंकेलिये पापड बनानेको कई प्रकारका शुद्ध खार बहुत शीघ्र तैयार हो सकता है। जैसे- तिल्लीके वृक्षोंकी राख, राजगिरके वृक्षोंकी राख, तमाखुके डठुओंकी राख, केला और आधांझाडाके वृक्षोंकी राख, मक्कीके शींदेकी राखको शुद्ध गरम पानीमें डालकर राखको खूब मसल देने बाद जब राख पानीमें बैठ जाय तब एक बांसकी टोकनीमें वह राख सहित पानी पतले कपडे पर डाल देनेसे धीरे २ पानी दूसरे बर्तनमें नितर आवेगा उससे पापडके आटेको गूंदकर पापड बनाये जा सकते हैं। वे पापड इतने अच्छे और स्वादिष्ट बनेंगे कि आप खुश हो जावेंगे। ऐसे पापड तो मर्यादाके भीतर व्रती पुरुष भी खा सकते हैं उन्हे भी इसमें किसी प्रकारकी रुकावट नहीं हो सकती है।

प्रश्न – तेल और घीकी क्या मर्यादा है ?

उत्तर—घीका स्वरूप तो ऊपर बतलाया ही जा चुका है।

वैसे मर्यादिक घीमें बदबू आने लग जावे तब समझलो कि ये घी अभक्ष्य हो गया। कारण ये है कि उस घीमें जीव पैदा हो जाते हैं वे उसी रंगके सूक्ष्म होते हैं। और वे जीव मरते हैं तो उन्हींकी सडांद आने लगती है। घी ताजा भी हो परन्तु उसका संबन्ध ऐसे वर्तनसे हो जावे जिससे वह घी अपने रंगसे बदल जावे और बदस्वाद हो जावे तो वह घी चलित रस हो जानेसे अभक्ष्य हो जाता है। खाने योग्य नहीं रहता है। बजारु जितने घी होते हैं वे सब तो बिलकुलही अभक्ष्य होते हैं। क्यों कि उनको उत्पन्न करनेवाले दूध, दही आदि सभी अमर्यादीक पदार्थ होते हैं। और कौन २ जातिके मेल उसमें रहते है कोई ठीक नहीं है। कितने ही वक्त तो देखा गया है कि बजारु घीके अंदर छोटे २ कीडे जैसे कीडी मकोड, बर्र, मक्खी, डांस यहांतक कि चूहोंके छोटे बच्चे भी मरे हुए पाये जाते हैं ऐसे घी का खाना न केवल धर्महो बिगाडते है बल्कि स्वास्थ्यको भी चौपट कर देते हैं। हजारों तरहके रोग इन्हींके परिणाम है। जो भाई अपने स्वास्थ्यको ठीक रखना पसंद करते हैं उन्हे चाहिये ऐसे घीसे हमेशा बरकरार रहें।

तैल—तिल्लीका स्वभाव है कि फाल्गुन सुदी १५ के बाद उसमें लटें पड जाती हैं इसलिये उसके पहिलेही

तिल्लीको ठीक तोरसे देख शोधकर उसका तैल निकलवा लेवें वह तैल शुद्ध होता है। होलीके बादका तैल अशुद्ध होनेसे अभक्ष्य होजाता है। तैलभी जो आप खुद पिलवावे वह तो ठीक हो सकता है बाकी अप्रमाणीक और अभक्ष्य ही होता है। प्रत्यक्ष देखा गया है कि कितनेही तेली तिल्लीको बजारसे लाकर मामूली तोरसे फटककर घानीमें डालकर पैलकर तैल निकाल लेते हैं उस तिल्लीमें उसकी खुशबूके कारण जो कीडी आदि जानवर पहुंच जाते हैं वे तमाम पिल जाते हैं उनके कलेवरके हिस्से उस तैलमें आजाते हैं लोग देखते भालते कुछ नहीं हैं खरीद लाकर पकवान बनाकर खाते हैं वही तैल स्वास्थ्यको चौपट कर देता है। इसलिये तैलके खानेमें तैल विषयक सावधानी रखनी चाहिये।

तिल्लीके सिवाय और औरभी रामतिल्ली, सरसों, मूंगफली, पोस्ताके दाने, खोपरा आदि पदार्थ होते हैं जिनका तैल भी वर्तावमें आता है सो इन पदार्थोंके तैल के निकलवानेमें भी ऊपर लिखे अनुसार सावधानी रखनी चाहिये। तैल किसीभी चीजका निकलवावे लेकिन प्राशुक जलसे घानीको जरूर धुलाकर पोंछकर साफ करा लेवें क्यों कि तैली लोग उसको बहुत कम साफ करते हैं घानीपर घानी डालते रहते हैं सो भी भिन्न २ पदार्थोंकी, उनकी

खलीके मिश्रणसे भी जीव जन्तुओंका संबंध होजाता है। वे जीव मरते रहते हैं। उनके संसर्गसे आपकी शोधी वीनी चीजभी बेकाम होजाती है इसलिये घानीको प्राशुक जलसे खूब धुला लेना चाहिये। स्वास्थ्य और धर्मकी रक्षा करनेके लिये थोडा खर्च ज्यादा भी होजाय तथा शारीरिक परिश्रम भी उठाना पडे तो सहन करना चाहिये।

तैल तभीतक भक्ष्य रहता है जबतक वह गाढा नहीं हो जाता वा उसमें वदबू नहीं आने लगती है। जैसेही तैल गाढा होने लग जाय या वदबू आने लग जावे उसका इस्तेमाल करना छोड देना चाहिये।

दही या छाछमें राइ डालकर नहीं खाना चाहिये क्यों कि दही आदिमें राई डालनेसे त्रस जीवोंकी उत्पत्ति हो जाती है। इससे मांसका दूपण लगता है ऐसी जैन शास्त्रों की आज्ञा है।

दहीके साथ गुड या शक्करभी मिलाकर खानेसे उसमें अंतर्मूहूर्तमें त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं।

गोभीका फूल, कचनारका, केवडेका, केतकीका, गुलाबका, निम्बका फूल दवाईमें भी काममें नहीं लेना चाहिये।

जिन पदार्थोंमें फूलनसी आजाती है वे सभी अभक्ष्य

होजाते हैं । क्यों कि उनमें अनंत जीव उत्पन्न होजाते है ।

दवाइयोंकी गोलियां जो पानीसे बनाई जाती हैं उनकी मर्यादाभी आठ पहरकीही होती है । अगर निंबूके रस से बनाई गई हों तो उनकी मर्यादा तीन पांच और सात दिनकी भी बतलाई गई है ।

साबूदाना बनाया हुवा होता है इसलिये ये भी अभक्ष्यही है ।

जिसमें जालसे पड जाते हैं ऐसा कोईभी पदार्थ भक्ष्य नहीं होता है । प्रायः देखा जाता है कि अमचुर खारक, बदाम, चिरोंजी आदि ऐसे पदार्थ हैं जिनमें जालके साथ बारीक लीखें पड जाती है लोग लोभ वश उनको यद्वा तद्वा शोधकर काममें ले लेते हैं कितनेही लोग तो व्रतियोंको भी दे देते हैं ऐसा कार्य लोभसे किया जाता है परंतु ऐसा करना बिलकुल अनुचित है क्योंकि इससें घोर हिंसा करनेके पापका बंध होता है। इसलिये जाला पडा हुआ कोईभी पदार्थ भक्ष्य नहीं है ।

पिसे हुए पदार्थोंकी मर्यादा —

१ वर्षा ऋतुमें मसाला और निमक को छोडकर पिसे हुए आटे की मर्यादा तीन दिनकी होती है । मगद की मर्यादा भी तीनही दिनकी होती है ।

२ शीत ऋतुमें मगदकी मर्यादा सात दिनकी, ऐसे

ही पिसे हुए आटेकी तथा मसालेकी होती है। परंतु नमककी निश्चितही मर्यादा होती है।

३ ग्रीष्म ऋतुमें नमकको छोडकर पीसा हुआ आटा, मसाला तथा मगद्की मर्यादा पांच दिनकी होती है।

प्रश्न—वनस्पतिका क्या स्वरूप है तथा उसका बर्ताव किस प्रकार करना चाहिये? आजकल लोग हरी वनस्पतिका सेवन अष्टमी और चतुर्दशी पर्वके दिनोंमेंभी करने लगे हैं सो ऐसा करना कहांतक ठीक है? इसका खुलासा होना चाहिये।

उत्तर--सिद्धांतमें वनस्पति दो तरहकी मानी गई है १ साधारण, २ प्रत्येक।

(१) साधारण—उन्हें कहते हैं कि जिन जीवोंका आहार, आयु, श्वासोच्छ्वास एकसा हो—एक खावे तो अनंत जीव खावें,एक जन्मे तो अनंतजीव जन्म पावें, एक मरे तो अनंत मरणको प्राप्त हो जावें। अनंत जीवोंका काय एक ही होता है। इनको निगोदिया जीव कहते हैं। निगोदिया जीव दो प्रकारके होते हैं।

(१) नित्यनिगोद (२) इतरनिगोद। फिर इनके भी दो २ भेद होते हैं नित्यनिगोद वादर, नित्यनिगोद सूक्ष्म, इतरनिगोद वादर सूक्ष्म।

वादर निगोद तो आधार सहित होते हैं परन्तु सूक्ष्मनिगोदका कुछ भी आधार नहीं होता है।

नित्य निगोद—जिन्होंने अनादि कालसे आज तक दूसरी पर्याय नहीं पाई हो किन्तु एक श्वास प्रमाण कालमें अठारहबार जीवन मरणकर निगोद पर्यायको ही धारण करते रहते हैं उन्हें नित्य निगोद कहते हैं।

इतर निगोद— जिन जीवोंने निगोदसे निकलकर दूसरी पर्याय पाकर फिर निगोदकी पर्याय पाई हो उन्हें इतरनिगोद कहते हैं।

प्रत्येक—भी दो प्रकारके होते हैं (१) सप्रतिष्ठित (२) अप्रतिष्ठित।

सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित एक ही है सिर्फ भेद है तो इतना ही कि जिस वनस्पति शरीरके साथ निगोदिया जीवोंका संबंध हो वह तो सप्रतिष्ठित कहलाते हैं। और जिन वनस्पतियोंके आश्रय कोई भी निगोदिया जीव न हो उन्हें अप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं।

प्रश्न—यह भी खुलासा होना चाहिये कि इनका लक्षण एकसा कैसे है?

उत्तर—इन वनस्पतियोंका स्वरूप शास्त्रोंमें इस प्रकार कहा गया है कि यह वनस्पतियोंका बीज, मूल, अग्र पर्व, कन्द अथवा स्कन्ध जानना।

जिस वनस्पति शरीरको तोडनेसे उनके ऐसे टुकडे हो जावें जैसे मानों चाकूसे तरासे हों। जिनमें तंतू हीं

लगा रहे ये सब सप्रतिष्ठित प्रत्येक हैं।

जिनके तोडनेसे उनमें तंतू बने रहें वह अप्रतिष्ठित प्रत्येक हैं। जैसे जिन वनस्पति शरीरमें रूह, धारी, सीरी, संधी पैदा तो हो जावें मगर उनमें कडापन न होने पावे नरमता बनी रहे जैसे पुष्प, फलोंमें छोटी बढती हुई ककडी खरबूजा, आम, केला, भिंडी, तुरई, कोला, आदि ये पदार्थ पूर्ण रूपसे जब तक करडे न हों जावें तब तक ये सप्रतिष्ठित प्रत्येक ही रहते हैं। जैसे ही इनके सब अवयव ठीक ठीक करडे हो जाते हैं जब इनके आश्रयसे निगोदिया जीव नहीं रहते हैं तब वही वनस्पति अप्रतिष्ठित प्रत्येक हो जाते हैं और गृहस्थोंके भक्षण योग्य हो जाते हैं। उन्हींके लिये कहा गया है कि उसी हालतमें वनस्पतिके एक शरीरका एक ही स्वामी होता है। पहिले एक शरीरके अनंते जीव स्वामी थे इतना ही सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठितमें भेद है।

प्रश्न—इस प्रकारके वृक्षके फलोंको तोडलेने पर वे सचित्त रहते हैं या अचित्त हो जाते हैं क्योंकि आजकलकी ऐसी एक परिपाटी चालू हुई है कि क्षेरके फलोंको तोड लेनेपर वह अचित हो जाते हैं उनको अष्टमी चतुर्दशीको खानेसे फिर क्या दोष है? इसको सुनकर भोले प्राणी अपनी जीवनकी प्रतिज्ञासे भ्रष्ट होगये सो ऐसा कार्य करना उचित है सो कहो?

उत्तर—वृक्षसे फल और फूल जहांसे तोडा जाता है उसको डंठल कहते हैं उस फूल या फलके स्थानमें संधि रहती है जो फल या पुष्प वहांसे टूटता है उस संधि स्थान पर टूटनेसे जरूर अचितता है परन्तु ऐसा नहीं समझना चाहिये कि उस स्थानके समान सारा फल या पुष्प अचित्त हो जाता है। अचित्तता तो तभी होगी जब सिद्धान्तके वाक्यके अनुसार प्राशुक कर लिया जावेगा जैसा कि ऊपर बतला चुके हैं। जैसे सुखानेसे या अग्निपर पकानेसे या छिन्न भिन्न करनेसे तथा नमकादिके मिलानेसे प्राशुक होता है। यदि इन प्रयोगोंको नहीं किया जायगा तो सचित्त ही रहेगा।

प्रश्न—वृक्ष तो जब फल या पुष्प तोडलिया जाता है फिर भी अचित्त नहीं हुआ ऐसा क्यों? शास्त्रोंमें तो काटनेसे अचित्त माना है वैसे ही इसको तोड लिया है फिर क्यों अचित्त नहीं होगा?

उत्तर—देखिये वनस्पति जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना अंगुलके असंख्यातवें भाग मानी है इससे जो फल या पुष्प वृक्षसे टूटा है या तोडा गया है वह समुदाय रूपमें असंख्यात वनस्पति जीवके एक एक शरीरका पिंडरूप एक फल या पुष्प होता है। जबतक ऊपर बतलाई गई क्रिया न की जावेगी तबतक वह प्राशुक ही नहीं हो सकता है। क्योंकि

जहांसे वह फल या पुष्प तोडा गया है वह प्रदेशही प्रांशुक जरूर होजाता है पर उसके आगेके प्रदेश प्राशुक नहीं हैं। क्योंकि पुष्प और फलोंमें तो बहुत प्रदेश हैं, एक फलमें अप्रतिष्ठित प्रत्येक जीवोंके कितनेही शरीर हो सकते हैं।

प्रश्न- सचित्तसे अचित्त करनेकी जो गाथा ऊपर बतलाई गई है सो वैसा कार्य करनेसेही अचित्त हो सक्ता है। या वृक्षोंपर फल पक जाता है उनको भी पकाया हुआ कहते हैं, सो वे भी अचित्त हैं क्या ?

उत्तर—आपका प्रश्न हमारी समझमें ठीक ठीक नहीं आया फिरसे उसको खुलाशा कीजिये ?

खुलाशा-मेरा प्रश्न ऐसा है कि जैसे आमके वृक्षमें आम लग रहे हैं और वह फल उसी आमके वृक्षमें पककर गिर जाय तो वह अचित्त है कि नहीं ? क्योंकि आजकल लोग ऐसा मानने लग गये हैं कि जो फल वृक्षमें ही लगे २ पक जाते हैं उनके खानेमें सचित्तका दोष नहीं लगता है क्योंकि वह पकनेसे अचित्त हो जाता है ?

उत्तर-वृक्षकी डालीमें लगा हुआ फल वहींपर पक जाता है यह ठीक है परंतु सिद्धांतमें उसको अचित्त माना जाता तो फिर अग्नीपर चढानेकी विधि क्यों बतलाई गई है ? इससे यही सिद्ध होता है कि वृक्षपर पकनेसे अचित्त नहीं

होता है। अगर आपके कहे माफिक अचित्त होजाता तो फिर संयमी जनोंको साराका सारा (खडा) आम भोजनमें धरनेसे अंतराय क्यों माना जाता है? इसलिये जैसा शास्त्रोंमें कहा है उसी विधिसे प्राशुक होता है बाकी सब विकल्प झूठे हैं। यही बात गोमटसारकी गाथा नं. २२४ की टीकामें बतलाया है "यथा शुष्कं पक्वं ध्वस्तामललवणसंमिश्रदग्धादि द्रव्यं प्राशुकम्"

पंडित टोडरमलजी सा. लिखते हैं—जो सूख गया हो वा अग्निकर पच्या होय, वा घरटी कोल्हू इत्यादिक यंत्रकर छिन्न भिन्न किया गया होय अथवा खटाई व लूणकरि मिश्रित हुआ होइ वा भस्मीभूत हुआ होइ वस्तु ताको प्राशुक कहिये है।

प्रश्न—पत्तिका साग भक्ष्य है कि अभक्ष्य है सो कहो?

उत्तर—प्रश्नोत्तर श्रावकाचारके २४ वें अधिकारमें क्षुल्लकोंके लिये कहा है—

अनग्निपक्वमाहारं बीजकंदफलादिकम्।
पत्रपुष्पादिकं नैव निंद्यं गृह्णाति सद्व्रतिः ॥५१॥

अर्थ—व्रति क्षुल्लकोंको अग्निपर विना पकाया हुआ आहार, बीज, कंद, फल, पत्र, पुष्प, आदि निंद्य आहार कभी नहीं लेना चाहिये। इससे यह बात सिद्ध

होती है कि पत्तिवाला सागभी भक्ष्य होता है।

हां इतना जरूर है कि जब वर्षा ऋतु आती है उसमें पत्तिवाले सागमें जरूर त्रसकायके जीवोंका संसर्ग हो जाता है इसीसे वर्षाऋतुमें पत्तीका साग वर्जनीक माना गया है। इसी बातको आशाधरजीने अपने सागारधर्मामृतमें बतलाया है।

वर्षास्वदलितं चान्नं पत्रशाकं च नाहरेत्

अर्थात्—वर्षाऋतुमें अदलित मूंगादि तथा पत्रका शाक नहीं खाना चाहिये। क्योंकि उन दिनोंमें पत्रके साकमें त्रस जीवोंका संसर्ग तो रहताही है स्थावर जीवभी भारी संख्यामें पैदा हो जाते हैं जिससे भारी हिंसाके होनेका निश्चय होता है। यहांपर एक बात, और समझने लायक है सो समझ लीजिये-कि पत्तिके सागके दो भेद होते हैं १ मोटी पत्तीवाला २ पतली पत्तीवाला। जो जाडी पत्तीवाला होता है वह तो सप्रतिष्ठित प्रत्येक होता है जो पतली पत्तीवाला होता है वह अप्रतिष्ठित प्रत्येक होता है।

सप्रतिष्ठित प्रत्येक—जैसे पोदीनाका पत्ता, मूलीका पत्ता, पालकका पत्ता, लूणियाके सागका पत्ता, ये तो सेवन योग्य सर्वथा नहीं हैं इनमें अल्प फल बहुविघातका दोष पैदा होता है। इसलिये गहस्थके योग्य नहीं है। जो

गृहस्थके योग्य हो सकता है उसको नीचे बतलाते हैं—

अप्रतिष्ठित प्रत्येक— पत्तोंकी सागमें धनियाके पत्ते (कोथमीर) चनेके सागके पत्ते, मेथीकी पत्ति, बथुआ बडा और छोटा, लालरा, बाथला, चौराई इनके पत्ते ऊपर बतलाए हुओंसे पतले होते हैं इनसे जिनके पत्ते मोटे हों उन्हें गृहस्थोंको काममें नहीं लेना चाहिये।

गृहस्थको औरभी ध्यानमें रखने योग्य बात है कि पोदीनेके पत्ते चाहे वो गीले हों या सुखा लिये गये हों सर्वथा सेवनीय नहीं होते क्योंकि इसके आश्रित द्वीन्द्रीय (लटें) आदि जीव इसके संपर्कमें रहती हैं ये टाले भी नहीं टलती हैं। गीले पत्तोंसे तो लटें निकलती नहीं है जब वह पत्तियां सुखाई जाती हैं तो वे छोटी २ उसी रंगकी लटें उसीमें चिपककर मर जाती हैं इसलिये यह पदार्थ किसी हालतमें भक्ष्य नहीं है।

इनके सिवाय— गाभीका फूल, कचनारका पुष्प, केवडा कैतकीका पुष्प, नीम्बका पुष्प, इनमें हिंसा विशेष पाई जाती है इनको तो किसी भी काममें नहीं लेना चाहिए। असंख्याते जीव बसते हैं इसलिये इनका उपयोग करनेमें दया नहीं पलती इसलिये ये छोडने योग्य ही हैं।

प्रश्न—कृपाकर यह भी बतला दीजिये कि ऐसे कौन पदार्थ हैं जिनसे द्रव्य प्राशुक हो सकता है ?

उत्तर-नमक दोनों तरह की मिरच (लाल और काली) हल्दी, हर्रे, वहेडा, आंवला, अमचुर, इमली, आदि ऐसे पदार्थ जिनमें खार हो।

प्रश्न-नलका पानी पेय है कि अपेय ?

उत्तर—जैनधर्ममें तो जैनाचार्योंने उसी जलको श्रेष्ठ और बर्तने लायक बतलाया है जो छन्नासे छना हुआ हो नलका जल तो छनता नहीं है और न उसमें छानने की क्रिया ही संपन्न हो सकती है। नियम तो ऐसा है कि जो जल जहांसे लिया जाय शास्त्रोक्त प्रमाणके छन्नासे छानकर लिया जाय और जिवानी [विलछानी] उसी जलमें बडेही यतनसे पहुंचाई जावे जिससे वे त्रस जीवजो जलमें रहते हैं रक्षित रहें। नलके जलमें ये क्रिया बिलकुल नहीं निभ सक्ती है उसकी जिवानी तो वहीं मसल दी जाती है या वहीं सूख जाती है। गटरोंमें जाकर भी जीवोंका नाश हो जाता है। इसलिये नलका जल तो अपेय ही है। नलके जलको जब यंत्रमें देते हैं यंत्रमें देने के पहिले यदि छानकर फिल्ट किया जाय तो नलका पानी पेय भी हो सकता है।

प्रश्न—फिल्ट करने के पहिले तो वह जल पेय है न ?

उत्तर-जरूर, फिल्ट करनेके पहिले वह पेय होता है।

प्रश्न-फिल्ट करनेसे अपवित्र कैसे हो जाता है ?

उत्तर—सुनो-फिल्ट करनेसे वह जल इस तरह अपवित्र हो जाता है उसके कई कारण हैं। इन कारणोंको सुनो जब जलको फिल्ट करनेके लिये कार्य करते हैं तब बिना छने हुए जलको मशनिमें देते हैं उस समय उस अनछने जलमें जो बडे २ जल जन्तु जो त्रससकायिक होते हैं यंत्र के सवंधंसे सब मर जाते हैं उनका कलेवर [शरीर] उस यंत्रके द्वारा गंधे पानीके साथ अलग फैंक दिया जाता है जैसेही यंत्रसे जल छाना जाता है तब उसमें रहने वाला कूडा कचरा और कीचड अलग किया जाता है उसीमें उन जीवोंके कलेवरके मोटे अंशभी बाहर कर दिये जाते हैं परंतु उनका शरीर जब यंत्रसे मसला जाता है उसमेंका रहने वाला मांस और खून जो पीप सरीखा रहता है उसी पानीमें मिल घुल जाता है और वह पानी नलोंके द्वारा जनताको पीनेको मिलता है इसलिये वह पानी तो अत्यंत अपवित्र होता है।

अब आगे और सुनिये—ऊपर कहे हुए विकारोंको साफ किये बिना वह जल शुद्ध नहीं हो सकता है। सो उसको साफ करनेके लिये उसमें एक प्रकारका मसाला डाला जाता है और वह मसाला विलायतमें बनाया जाता है। उस मसालेमें क्या २ वस्तुएं होती है यह बिलकुल अज्ञात है संभव है उसमें भी ऐसे ही अभक्ष्य पदार्थ हों

जिससे वह भी अपवित्र ही है।

यद्यपि सरकार ऐसे मसालोंका प्रयोग हित दृष्टि को रखकर करती है ख्याल ये है कि जलमें किसी प्रकारके विषैले जानवर या और कोई पदार्थ हो तो वह दूर होजाय जिससे रियाया स्वस्थ रहे। परन्तु यह मसाला बनता अशुद्ध चीजोंसे ही है इसलिये त्याज्य ही है। क्योंकि धर्म शुद्धिकी तो वहांपर कोई गुंजाइश है नहीं इसलिये नलका जल जैनाचार्यों द्वारा तो निषिद्ध ही है।

अगर फिल्ट करनेके पहिले जलको छानकर यंत्रोंमें दिया जाय और देशी मसाले शुद्धिके लिये उपयोगमें लिये जावें तो फिर दोष नहीं भी माना जा सकता है।

आगे और भी दोप बतलाते हैं—जब वह जल यंत्रोंद्वारा शुद्ध हो जाता है तब नलों द्वारा जनताको दिया जाता है। तब उस जलकेलिये जगह जगह टंकियां बनाई जाती हैं जिनमें का भरा हुआ जल नलोंद्वारा पीनेको दिया जाता है लेकिन वे टंकिये भी उस पानीके भरे रहनेसे गंधी हो जाती हैं फिर उन टंकियों को शुद्ध करने के लिये मेहतर आदि हीन जातिवालों को हुक्म दिया जाता है और वे भंगी वगैरहही उन टंकियोंको धोकर साफ करते हैं। परन्तु उस पानीमें वे लोग ऐसे २ कार्य कर देते हैं जिससे वह पानी और भी अपवित्र हो जाता है। इससे भी वह जल

अपेय ही होता है। इसलिये दया मई धर्म वालोंके लिये वह जल सदा ही अग्राह्य ही है।

प्रश्न--इस प्रकार आपने पानीको अपेय बतलाया सो तो ठीक है परन्तु नदी, तालाब, बावडी, कुंड, कुआ, झरना का जल यंत्रों द्वारा नहीं बांधा जाता है वह तो अपने आप बंधा रहता है इसलिये ये दोष उनको लागू नहीं होता है। ऐसा दोष तो नलमें फील्ट किये हुए जलवास्ते ही अपेयपन लागू होता है। न कि अन्य जलादिके लिये।

प्रश्न-दाख, पिस्ता, चिरोंजी और गुड तथा खारकादि वर्षाऋतुमें अभक्ष्य क्यों माने गये हैं?

उत्तर---वर्षा ऋतुमें इन पदार्थोंका रूप ही बदल जाता है जैसे दाख व किसामिस इन दिनोंमें गीले हो जाते हैं जिससे उनमें त्रस जीव पैदा हो जाते हैं उसमें उसी रंगकी लटें पैदा हो जाती हैं। कितने ही वक्त तो सफेद २ बडी बडी भी खिलबिलाती लटें देखी गई हैं। पिस्ताके अन्दर चूरासा होजाता है उसमें धंधरिये व लटें पडजाते हैं और उससे पदार्थ ही बेस्वाद होजाता है। एवं चिरोंजीमें भी चूरा सरीखा होजाता है उसमें भी चलती हुई गिंडोलें देखीं गई हैं उनके बीट और उगालसे चिरोंजीमें अत्यन्त दुर्गंधि आने लगती है तथा स्वाद बेस्वाद होजाता हैं। वर्षा ऋतुमें गुडमें हवा लगते ही गीलापन होजाता हैं एवं खारककी

भी यही दशा होती है। गीली और लुजलुजी होजाती है जिससे उसमें लटें पड जाती हैं। अमचूर, खारक, चिरोजी, पिस्ता, इलायची, बदाम आदिमें जाले भी हैं लग जाते जिसमें लट तथा अंडे पड जाते हैं। ये तमाम चीजें वर्षातमें अभक्ष्य हो जाती हैं।

प्रश्न— पिन्डखजूर क्यों अभक्ष्य है ?

उत्तर—वह चटाई (सादडी) के थेलोमें भर दिया जाता है उसको बाहरसे हवा कम लगती है। गीलापन तो उसमें बनाही रहता है इससे उसमें उसी रंगकी लटें पडती ही रहती हैं और मरती रहती हैं। इसलिये ये पदार्थ गृहस्थोंके उपयोग करने लायक नहीं रहते हैं। ऐसे पदार्थोंको उपयोगमें लेनेसे श्रावकके आठ मूलगुणोंके पालनेमें बाधा उपस्थित हो जाती है अर्थात् इनके खानेसे मांस भक्षणका दोष लगता है इससे ये त्यागने योग्य हैं।

प्रश्न—जैनियोंमें ये रूढी कबसे चल पडी कि अष्टमी और चतुर्दशीको हरी शाक नहीं खाई जाती है सुखाकर खाई जाती है ? हरी सागमें एक आदमी १ हरी तुरइया जो वजनमें करीब आध पाव हो तो उसकी साग बनाकर रोटी जीम सकता है वही तुरइया यदि सुखाकर खाई जावे तो बिना एक पावके सुखाये रोटी नहीं खाई जा सकती है इस हिसाबसे तो हरीसे सूखी साग दूने प्रमाणमें हुई इस-

लिये सूखी साग खानेसे हरी साग खानेमें पाप कम लगता है और लालसा भी कम ही रहती है इससे सुखाकर खानेसे क्या लाभ है ?

उत्तर—जैनियोंमें अष्टमी और चतुर्दशीको पर्वका दिन माना है ।

प्रश्न-- अष्टमी चतुर्दशीको ही पर्व क्यों माना है और तिथियोंको पर्व क्यों नहीं माना है ।

उत्तर—हमारे यहां इन तिथियोंको ही अनादि कालसे पर्व माना है ये दोनों तिथियां पर्व रूपसे नई नहीं हैं। क्योंकि जैन धर्म भी अनादि कालीन है, इन अष्टमी चतुर्दशीकी कथा यहां पर इस प्रकार बतलाई है कि जब तक जीव चतुर्दश गुणस्थान प्राप्त नहीं कर लेता तब तक आठ कर्मोंका नाश नहीं कर सकता है, इससे आठ कर्मोंके नाश करनेस अष्टमी और चतुर्दश गुणस्थान प्राप्त करनेकी भावनासे चतुर्दशीको पर्व माना है। अथवा सातवें गुणस्थान तक तो धर्म ध्यान रहता है, धर्म ध्यान शुभ परिणति कराता है और उससे संसारमें सातावेदनी आदि प्रशस्त प्रकृतियोंका बन्ध होकर विनाशीक सांसारिक सुखकी प्राप्ति होती है। सातवेंसे आगे आठवें गुणस्थानसे श्रेणीका आरोहण होता है, जहां शुक्ल ध्यानकी परिणाति होनेसे अशुभ प्रकृतियां शुभ रूपमें बदलकर बादमें विशुद्ध परिणातिसे उन

कर्मोंका क्षयक्रम प्रारम्भ हो जाता है, सो जैसी २ शुक्ल ध्यानकी विशुद्ध परिणति फैलती जाती है उसी क्रमसे कर्म आत्मासे संबंध छोडते जाते हैं, सो आत्मा निर्मलताको धारण करता हुआ जब चौदहवें गुणस्थानमें पहुंच जाता है तब तो शेष कर्मोंको सत्तासे उखाडकर फेंक देता है। अपूर्व और अनुपम निर्मलता धारणकर हमेशाके लिये संसार मार्ग से दूर होकर शाश्वतिक सुखमें जा विराजता है। इससे ये बात पाई गई कि अष्टमी तो विशुद्ध परिणतिकी स्मृति दिलाने वाली है कर्मोंके नाश कराने वाले शुक्ल ध्यानका प्रारम्भक स्थान है, इसलिये पोरके बतौर है, और चतुर्दशी इस बातको दर्शाती है कि इस गुणस्थानमें आनेपर जीवका पुरुषार्थ जिसके प्राप्त करनेके लिये ये जीव हमेशासे प्रयत्न करता चला आ रहा है सफल हो जाता है। अब इससे आगे जीवके लिये संसारका कोई मार्ग नहीं है इससे भी ये दोनों तिथियां पर्व मानी गई हैं। यह एक तर्क संमत बात है इसमें शास्त्रीय प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

ये दोनों दिन पर्वके हैं इसलिये हमारे यहां श्रावका-चारोंमें श्रावकोंको इंद्रिय दमन करने, मनको वश करने, स्वाध्यायकी वृद्धि करने तथा आर्त रौद्र ध्यानको हीनकर धर्म ध्यानकी परिणति को बढाने वाले उपवास करनेका विधान बतलाया गया है।

परन्तु आजकल के समयमें लोगोंने उपवास करना तो बिलकुल छोड दिया है, संयमका आराधन करना तो एक प्रकारसे भूल ही गये हैं। जैनाचार्योंने तो यहां तक गृहस्थोंको उपदेश दिया है कि ऐ भव्यात्माओ! तुम अपना मनुष्य भव सफल करना चाहते हो तो संयमके बिना अपना एक क्षणभी व्यर्थ मत खोओ। यदि कुछ न बन पडे तो कमसे कम अष्टमी चतुर्दशीका उपवास रक्खो, यदि ये भी न बन सके तो हरी बनस्पतिके खानेका तो त्याग करो जो मनुष्य हरित कायका एक दिनका त्याग करता है वह अनंत जीवोंकी दया पालनेका पुण्य कमाता है। एकेन्द्रिय जीवोंकी दया पालनेका तो लोकपर बहुत असर पडता है। एक व्यक्तिने एक जैनीको हत्या करनेका आरोप लगाया जैनी गिरफ्तार होकर कोर्टमें लेजाया गया जब मुकदमा चला तो फैसला देते हुए न्यायाधीशने ये फैसला दिया कि जो जैनी एकेन्द्रिय हरित कायकी रक्षा बडी ही साव-धानीसे करता है वह बडे जानवरोंको कभी नहीं मार सकता है। देखिये ये संयम पालनेका ही परिणाम है जो सरकार भी जैनियोंकी दयाकी इज्जत करती है। एक चाण्डालने केवल चतुर्दशीके दिन ही का तो व्रत लिया था कि मैं प्राण रहते चतुर्दशीके दिन किसी जीवका वध नहीं करूंगा जिसके परिणाम स्वरूप उस चाण्डालको देवों

ने अपना पूज्य माना। भव्यो क्षणिक ऐन्द्रिक सुखके लिये अपने परमार्थको मत भूलो और अहिंसा मूलक दयामई जैनधर्मकी हितकारी आज्ञा मानकर इन पर्वोंके दिनोंमें हरितकायके भक्षणका त्यागकर महान पुण्यके भागी बनो। जिह्वालोलुपियोंके वाकचातुर्यमें आकर अपनी लीहुई प्रतिज्ञा कभी भंग मत करो।

वर्तमानका जमाना इतना विषयालोलुप होगया है कि केवल इन्द्रियोंकी गुलामी करनेमें अपना जीवन सफल समझता है। अज्ञानी जीव अपने नरभवके मूल्यको न समझकर बोलने वालोंकी चतुराईमें फसकर ५० वर्षकी ली हुई प्रतिज्ञा से च्युत होजाते हैं। एक भाईने अपनी ५० वर्षोंसे निभाई हुई प्रतिज्ञा इसलिये छोड़ीकि फलाने विद्वानने तो ऐसा कहा है कि गृहस्थको अष्टमी चतुर्दशीको हरी वनस्पति नहीं खाना चाहिये ऐसा कोई शास्त्रमें लेख नहीं है। भोले भव्यो! इतना ध्यान रक्खो कि वादविवादमें फँसनेसे तो महान पापके दलदलमे फँस जाओगे, इतना ही विश्वास रक्खो कि जो आज्ञा आचार्योंकी ऊपर लिखी गई है कि संयमके बिना एक क्षणभी व्यर्थ मत जाने दो सो इसी वचन पर स्थिर रहकर अपने नरभवको सफल करो।

प्रश्न- जैनधर्ममें जो आठ प्रकारकी शुद्धि मानी गई है उसका स्वरूप भी संक्षेपमें समझाना चाहिये और उनमे

होनेवाले लाभका भी ज्ञान हमको कराना चाहिये ?

उत्तर- शुद्धि दो तरहकी होती है (१) लोक शुद्धि (२) लोकेत्तर शुद्धि। इनमें से आप कौनसी समझना चाहते हैं ?

खुलाशा- हम तो केवल लौकिक शुद्धिको समझना चाहते हैं।

उत्तर- लौकिक शुद्धि आठ प्रकारकी मानी गई है (१) काल शुद्धि (२) अग्नि शुद्धि (३) भस्म शुद्धि (४) मृतिका शुद्धि (५) गोमय शुद्धि (६) जल शुद्धि (७) पवन शुद्धि (८) ज्ञान शुद्धि। इन शुद्धियोंके न माननेसे लोकमें हीनाचारपना माना जाता है। ग्लानि बनी रहती है भ्रष्टाचार बढ़ जाता है, धर्मके लोपका प्रसंग आता है, इसलिये इन शुद्धियोंको जरूर मानना चाहिये, क्योंकि इनको छोड़नेसे गृहस्थका काम नहीं चल सकता है। अब इनका स्वरूप कहते हैं-

१. काल शुद्धि- जैसे रजस्वला स्त्रीकी शुद्धि तीन रात्रि बीते बाद मानी गई है। देखाजाय तो शरीर तोकभी भी शुद्ध नहीं होता पर व्यवहार प्रवृत्तिमें कालसे शुद्धि माननी चाहिये।

२. अग्नि शुद्धि- किसी खाने पीनेके पात्रको जब कोई चाण्डाल या रजस्वला स्त्री छूलेती है तो उसको अग्निपर

गरम करलेने से उस पात्रकी शुद्धि मानली जाती है।

३. भस्म शुद्धि- वर्तन रोटी बनानेसे सकरे और खाने से जूठे माने जाते हैं। उन्हीं वर्तनोंको राखसे मांज लेते हैं तो वे पवित्र समझ लिये जाते हैं।

४. मृतिका शुद्धि- मलमूत्र क्षेपण करने जाने पर हाथ अशुद्ध माने जाते हैं लेकिन उनको मिट्टीसे धो लेनेपर शुद्ध मान लिया जाता है इसीको मृतिका शुद्धि कहते हैं।

५. गोमय शुद्धि- जब कभी घरमें बच्चा बच्ची टट्टी पेशाब कर देते हैं तो उस जगहको गोबर से लीपकर शुद्ध मान लिया जाता है। एक और बात है कि वैद्य विद्वानों ने रसायनसार ग्रंथमें ऐसा लिखा है कि जमीनमें मनुष्योंके चलन फिरने वा वर्तने से घरोंकी जमीनमें अनंते कीटाणु पैदा हो जाते हैं जिससे मनुष्योंके शरीर विकृत होने लगते हैं यदि वहां पर गोबर से लीप दिया जाय तो एक बलिस्त (नव इंच) तक के वे जीव वहां से चले जाते हैं और मनुष्योंको रोगादिक से तकलीफ नहीं होती है।

६. जल शुद्धि—मल मूत्र क्षेपण करनेको जानेसे, अस्पर्शको स्पर्श करनेसे, मुर्दाओंको छूने, जलाने जानेसे, वा मल, मूत्र, मरा चमडा आदिके स्पर्श होजाने पर शरीर अपवित्र माना जाता है उस समय पवित्र जलसे स्नान कर लेनेसे शरीरकी शुद्धि मानी जाती है इसीको जल शुद्धि

कहते हैं।

७. पवनशुद्धि—भूमि, पाषाण, कपाट, काष्ठादिक पदार्थ पवनसे शुद्ध माने जाते हैं।

८. ज्ञान शौच—ज्ञानमें जो पदार्थ अशुद्ध न माना जाय उसे ज्ञान शुद्ध कहते हैं।

इस प्रकार लोकमें इन आठ प्रकारकी शुद्धियोंका कथन है इनके न करनेसे लोकमें ग्लानि व निन्दा होती है। इससे इनको मानना ही चाहिए। देश भेदसे इनमेंभी भेद होजाता है कारण ये है कि धर्म सबसे ऊपर है उसमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं आनी चाहिये ऐसा ही बर्ताव करना उचित है जिससे व्यवहारमें भी बाधा न आवे और धर्मकी भी अनुकूलता बनी रहे।

प्रश्न— कृपाकर बतलाईये कि गृहस्थों के आवश्यक कर्म कितने और कौन २ है तथा कैसे पाले जा सकते हैं और उनके पालनेसे क्या लाभ है?

उत्तर— गृहस्थ कहो या साधर्मी कहो एकही बात है इनके आवश्यक कर्तव्य तीन हिस्सोमें विभक्त हैं (१) पापानि बहु पुण्यबंध (२) पापानि किंचित् पुण्यबंध (३) पापानि पापबंध।

इन तीनों प्रकारके कर्तव्योंमें दो तो अवश्य ही करने पड़ते हैं रहा सबसे पहिलेका उसको तो कोई धर्मात्मा

पुरुषही करता है।

प्रश्न— कृपया इनका थोडेमें खुलाशा कीजिये जिससे सभीकी समझमें ठीक २ आजाय?

उत्तर— सुनिये इनका थोडा २ खुलाशा इस प्रकार है-

पापाान बहुपुण्यबंधका स्वरूप-

गृहस्थ लोग पाप क्रियाओंका सर्वथा त्याग नहीं कर सकेत। गृहस्थमें रहते हुए खाने पीने, धन कमाने, मकान बनान, विवाहादि करनेके लिये अनेक प्रकारके आरंभ करने पडते हैं, जिनको करते हुए भी हिंसादिके दोष लगही जात हैं। इन्हींके साथ दोषोंको दूर करने, पुण्यबंध करने तथा अपनी आत्मोन्नति करनेके लिये शास्त्रोंमें गृहस्थोंके छह प्रकारके दैनिक कर्तव्य बतलाये गये हैं—

देवपूजा गुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट् कर्माणि दिने दिने॥

अर्थ— गृहस्थके ये छह आवश्यक कर्तव्य जरूर ही प्रतिदिनके करनेके हैं— (१) अर्हंत वा सिद्ध भगवानकी पूजा करना (२) गुरुकी भक्ति करना (३) स्वाध्याय करना (४) संयम पालना (५) तप करना और (६ दान देना। ये गृहस्थोंके दैनिक छह कर्तव्य हैं।

) देवपूजा-श्री अर्हंत व सिद्ध भगवानका पूजन करना। यदि अर्हंत भगवान साक्षात् मिलें तो उनकी सेवामें उपस्थित होकर अष्ट द्रव्यसे भक्तिपूर्वक पूजन करनी चाहिये। अन्यथा उनकी वैसीही ध्यानाकार शांतिमय वीतराग बिंब को स्थापित करके उसके द्वारा अर्हंत भगवान की पूजन करना चाहिये, हमारी आत्मापर जैसा प्रभाव साक्षात् अरहंतके ध्यानमय वीतराग प्रतिष्ठित प्रतिमाके दर्शन व पूजनसे पडता है वैसाही प्रभाव उनकी ध्यानमय वीतराग प्रतिष्ठित प्रतिमाके दर्शन व पूजनसे पडता है, प्रगट देखा जाता है कि जैसा चित्र देखनेमें आता है वैसा ही भाव देखनेवालेके चित्तमें अवश्य पैदा होता है। मन्दिर में भगवानकी वीतराग शान्तिमय प्रतिमाके देखनेसे चित्त आपही आप वैराग्य भावोंसे भर जाता है और निर्मल गुण स्मरण होजाते हैं। इससे भाव शुद्ध होते हैं। इसलिये ग्रहस्थोंको चाहिये कि वे नित्यप्रति अष्ट द्रव्यसे या किसी एक द्रव्य से भगवानकी पूजन करें।

प्रतिमाका स्थापन मात्र भावोंको बदलनेके लिये है, प्रतिमासे कुछ मांगनेकी न जरूरत है, न प्रतिमा इसलिये स्थापित ही की जाती है। देवपूजासे पापोंका क्षय और पुण्यका बंध होता है, तथा मोक्ष मार्गकी प्राप्ति होती है। दर्शन तो प्रत्येक बालक बालिका, स्त्री पुरुषको नित्य करना

चाहिये। पूजन यदि नित्य न हो सके तो कभी २ अवश्य करना चाहिये। जहां प्रतिमा या मंदिरका समागम न हो वहां परोक्ष ध्यान करके स्तुति पढ लेनी चाहिये, तथा एक दो जाप और जप करके भोजन करना चाहिये।

(२) गुरुभक्ति—गुरु शब्दका अर्थ यहां सच्चे धर्म गुरु अर्थात् मुनि महाराजसे समझना चाहिये, निर्ग्रंथ गुरु की सेवा पूजा, तथा संगति करना "गुरु भक्ति" कहलाती है। गुरु साक्षात् उपकार करनेवाले होते हैं। वे अपने उपदेश द्वारा ग्रहस्थोंको सदा धर्म कार्यकी प्रेरणा किया करते हैं, गुरु तारण तरण जहाज हैं, आप संसार रूपी समुद्रसे पार होते ह और दूसरे जीवोंको भी पार उतारते हैं। इसलिये ग्रहस्थोंको सदाभक्ति पूर्वक गुरुकी उपासना तथा सेवा करनी चाहिये।

यदि अपने स्थानमें गुरु महाराज न हों तो उनका स्मरण करके मन पवित्र करना चाहिये। तथा धर्मके प्रचारक एलक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी आदि हों तो उनकी सेवा संगति करके धमका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

(३) स्वाध्याय—तत्वबोधक जैन शास्त्रका विनयपूर्वक चौकीपर विराजमान करके भक्तिसहित समझ२कर पढना व दूसरोंको सुनाना चाहिये, यदि पढना न आवें तो दूसरोंसे

सुनकर ज्ञानको बढाना चाहिये, स्वाध्याय एकप्रकारका तप है। इसमे बुद्धिका विकास होता है, परिणाम उज्वल होते हैं इत्यादिक अनेक गुणोंकी प्राप्ति होती है।

(४) संयम —पापोंसे बचनेके लिये अपने क्रियाओंका नियम बांधना चाहिये, पांचों इन्द्रियों और मनको वशमें करनेके लिये नित्य सवेरेही २४ घंटेके लिये भोग उपभोग के पदार्थोंको अपने कामके योग्य रखके शेषका त्याग करना चाहिये, जैसे– आज हम मीठा भोजन नहीं खावेंगे, सांसारिक गीत नहीं सुनेंगे, वस्त्र इतने काममें लेंगे इत्यादि तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, और त्रस इन छह प्रकारके जीवोंकी रक्षाका भाव रखना और व्यर्थ उनको कष्ट न देना चाहिये, इसलिये ग्रहस्थोंके लिये जरूरी है कि वह नित्यप्रति संयम पालनका अभ्यास किया करें, संयम एक दुर्लभ वस्तु है संयमका पालन केवल मनुष्य गतिमें ही हो सकता है। संयमके विना मनुष्य जन्म निष्फल होता है। संयम पालनेके लिये उचित है कि हम बुरी आदतोंको छोडें, अपना खान पान पहनना आदि सादा रक्खें, चाय, सोडा तम्बाकू, बीडी, चुरट, शराब आदि नशेकी चीजें मसालेदार चाट, खोंमचे और बाजार की बनी हुई अशुद्ध मिठाई आदिका सेवन न करें। भावों को बिगाडनेवाले नाटक, सिनेमा, नाच, स्वांग, तमाशे न

देखें तथा विकार पैदा करनेवाले उपन्यास तथा कथा कहानियां न पढें।

(५) तप—से मतलब नित्य सबेरे व शाम एकान्त में बैठकर सामयिक करनेसे है। आत्म ध्यानकी अग्निमें आत्माको तपाना तप है इससे कर्मोंका नाश होता है, बडी शांति मिलती है, आत्मसुखका स्वाद आता है। आत्मबलकी वृद्धि होती है, इसलिये सबेरे शाम सामायिक अवश्यही करना चाहिये।

(६) दान— अपने और परके उपकारके लिये फल की इच्छाके बिना प्रेम भावसे धनादिका तथा स्वार्थका त्याग करना दान कहलाता है, जो दान, मुनियों, व्रती श्रावकों तथा अव्रती सम्यक्त्वी श्रेष्ठ पुरुषोंको भक्ति सहित दिया जाता है, पात्रदान कहालाता है, और जो दान दीन दुखी भूखे अपाहज विधवा अनाथोंको करुणाभावसे दिया जाता है, वह करुणादान कहलाता है, दान ४प्रकारका है—१ आहार दान २ औषधिदान ३ ज्ञानदान ४ अभय दान।

(का) आहारदान— मुनि, त्यागी, श्रावक, ब्रम्हचारी तथा लंगडे लूले, भूके, अनाथ विधवाओंको भोजन देना आहारदान है।

(ख) औषधदान— रोगी पुरुषोंको औषधि देना, उनकी सेवा टहल करना, औषधालय खोलना, औषधि दान है।

[ग] ज्ञानदान—पुस्तकें बांटना, पाठशालायें खोलना, व्याख्यान देकर तथा शास्त्र सुनाकर धर्म और कर्त्तव्यका ज्ञान कराना, असमर्थ विद्यार्थियोंको छात्र वृत्ति देना, किसी को बिना कुछ लिये परोपकार बुद्धिसे पढा देना, ज्ञान दान है, ।

(घ) अभयदान—जीवोंकी रक्षा करना, धर्म साधनके लिये स्थान बनवाना, चौकी पहरा लगा देना, धर्मात्मा पुरुषोंको दुख और संकटसे निकालना, दीन, दुखी मनुष्य, पशु, पक्षी भयभीत हों, जांनसे मारे जाते हों अथवा सताये जाते हों तन मन धनसे प्राण बचाकर उनका भय दूर करना अभयदान है।

मानवों व पशुओंके भय निवारणके लिये धर्मशाला व पशुशाला बनवाना अभयदान है।

ऊपर लिखे चारों प्रकारके दानोंमें से कुछ न कुछ नित्यप्रति करना ग्रहस्थीका नित्यप्रति दान कर्म है। सबेर करनेसे पहले आधी रोटी दानके लिये निकाले बिना भोजन न करना चाहिये। ग्रहस्थियोंको उचित है कि जो आमदनी

पैदा करे, उसका चौथाई भाग, या छठा या आठवां या कमसे कम दसवां भाग चार दान व धर्मकी उन्नतिके लिये निकाले, अपना जीवन सादगीसे बितावे विवाह आदिमें कम खर्च करे, परोपकारमें अधिक धन लगावे।

(२) अब पापानि किंचित पुण्यबंध

खण्डनी पेशणी चुल्ली उदकुम्भः प्रमार्जनी।
व्यवसाया गृहस्थस्य तेन मोक्षं न गच्छति॥

अर्थ—ओखलीमें कूटना, पीसना, पानी छानना वगैरह पांच सूनादि रूप व्यापार और व्यवसायादि रूप कार्य, इनको गृहस्थोंको किये बिना एक मिनट नहीं बन सकता है और इनमें जिधर देखो, उधर हिंसाहीहिंसा है परन्तु कोई समयके ऊपर सत्पात्रके दानका समागम मिल जावे तो वह हिंसा जन्य कार्य किंचित पुण्य बंधरूप हो सकता है इनको हेय उपादेय रूप वर्णन किया है।

(३) पापानि पापबन्ध– जिनमें पुण्यबंधही नहीं।

ये तीसरा षट् कर्तव्य गृहस्थोंके लिये अवश्य लागू है जिनको इस तरहसे कहा है।

मलं मूत्रश्च स्नाकुलि गृहिणाञ्च नित्यं क्रिया।
नृत्यवस्त्रविभूषाणां मा क्रिया पापकारिणी॥

अर्थ— मलत्यागना, मूत्रत्यागना, स्नानकरना, कुल्ला करना गीत वादित्र नाटकादि सिनेमा देखना, वस्त्र भूषण अलंकार पहिरना ये षट कर्त्तव्य ग्रहस्थोंके सब हेय रूप महान पापके कारण माने हैं सो इनको तो ग्रहस्थोंको परवश करना पडता है, जिनसे महान पापका बंध होता है फिर भी गृहस्थ इनको रुचिसे करते हैं। और ऊपर ही ऊपरका जो देव पूजादि षट कर्त्तव्योंको कोई गृहस्थ करता है जिनसे गृहस्थोंको पुण्य बंध होता है पर किया क्या जाय, यह तो कलिकालका माहात्म्य है जो करते तो हैं पापका कार्य, और उस क्रियासे चाहते इन से पुण्यफल, सो ऐसा होता ही नहीं, इससे समझना चाहिये कि आत्माओंका कल्याण इस कालमें दुस्वार है. परन्तु कोई आत्मा अपना कल्याण जरूर कर लेवेंगे, इनको विशेष देखना हो तो संयमप्रकाश नामक ग्रन्थका स्वाध्याय करें।

इन तीनों करणको करनेवाला भव्यजीव ही होता है। जीव पहिले अधःप्रवृतकरण फिर अपूर्वकरण फिर अनिवृत्तिकरणको प्राप्त करता है। इन तीनों ही प्रकारके करणोंका समय अंतर्मुहूर्त मात्र काल है। इनका पृथक् २ भी अंतर्मुहूर्त ही काल है। और वह इस प्रकार कि–सबसे थोडा काल अनिवृत्ति करणका है। उससे असंख्यात गुणा काल अपूर्वकरणका और उससे भी असंख्यात गुणाकाल अधःप्रवृत्त करणका है। इस प्रकारकी करणलब्धि सम्यग्दर्शनके संमुख हुए जीवको ही होती है। इसके होनेका उत्कृष्ट काल ज्यादासे ज्यादा अर्ध पुद्गलपरावर्तन है और कमसेकम अन्तर्मुहूर्त होता है। तब ही जीव सम्यग्दर्शनको प्राप्त कर सकता है। तीन कालमें भी टल नहीं सकता। अब ऊपर जो इस करण लब्धिके तीन भेद बतलाए हैं, उनका पृथक् २ लक्षण यहां बतलाया जाता है--

*

—००—अधः प्रवृत्तका लक्षण—००—

ध्यान रहे कि अन्तर्मुहूर्त के असंख्यात भेद होते हैं। अतीत, अनागत और वर्तमान त्रिकालवर्ती नाना जीवोंकी अपेक्षा विशुद्धतारूप परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण हैं वे

परिणाम अधःप्रवृत्तकरणके जितने समय हैं उतने ही समान वृद्धिको लिए हुए समय २ होते हैं। क्योंकि इस करण में नीचेके समयके परिणामोंकी संख्या और विशुद्धता ऊपर के समयवर्ती किसी जीवके परिणामोंसे मिलते रहते हैं। इस करणके प्रभावसे यहां पर चार प्रकारके आवश्यक होते हैं—

(१) समय २ प्रति अनन्तगुणी विशुद्धताकी वृद्धि होती है।

(२) स्थितिबंधापसरण होता है। जैसे पहिले जितना प्रमाण लिये कर्मोंका स्थितिबंध होता था उससे घटता २ स्थितिबंध होता है।

(३) सातावेदनीयको आदि ले प्रशस्त कर्मप्रकृतियोंका समय २ अनन्तगुणा बढता हुआ गुड, खांड, शर्करा, अमृत समान चतुःस्थानगत अनुभागबंध होता है।

[४] असाता वेदनीय आदि अप्रशस्त कर्म प्रकृतियों का अनन्तगुणा घटता नींब, कांजी समान द्विस्थान लिए अनुभागबंध होता है। विष हलाहल रूप नहीं होता है। अधःकरणका अंतर्मुहूर्त काल व्यतीत होने बाद अपूर्व करण होता है—